2.5

त्योपासना

एवं

वपूजा-पद्धति

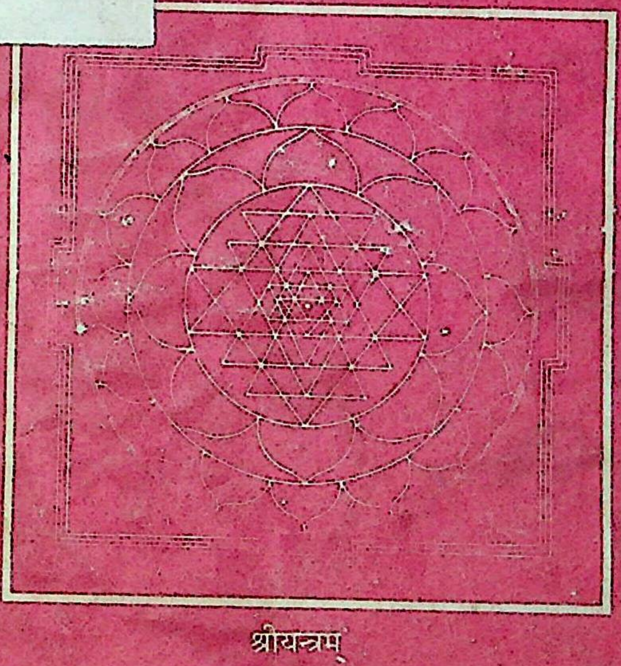

श्रीयन्त्रम्

संकलन-सम्पादन –

चिरंजीलाल शर्मा "विनो

भा. पु. पा. क. वि.

महर्षि-पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान
तिथी..........
पु.सं. 1654
भारती पुस्तकालय

॥श्रीः॥

नित्योपासना एवं देवपूजा-पद्धति

(परिवर्द्धित द्वितीय संस्करण)

महर्षि-पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान केन्द्र
तिथी..............
पु०सं०..............
भारती पुस्तकालय

संकलन-संपादन—

चिरंजीलाल शर्मा "विनोदी"

माननीया प्रज्ञा देवी जी
के कर कमलों में
सादर भेंट
वेदमित्र
[illegible]
12-5-95.

प्रकाशक—

श्री बनवारीलाल सिंघानिया

द्वारा—

जी.आई. सिंघानिया चेरिटेबल ट्रस्ट,
२२२, रामगोपाल इण्डस्ट्रियल इस्टेट,
डॉ. आर.पी. रोड, मुलुन्ड (वेस्ट)
बंबई ४०००८०

द्वितीय संस्करण— सन्-१९९३

पुस्तक प्राप्तिस्थान—

१. मेसर्स. बी.पी. ट्रेडर्स ३०/३१ कलाकार स्ट्रीट
१९-तीनमाला, कलकत्ता-७००००७
२. जी.आई. सिंघानिया चेरिटेबल ट्रस्ट,
२२२, रामगोपाल इन्डस्ट्रियल इस्टेट,
डॉ. आर.पी. रोड, मुलुन्ड (वेस्ट)
बंबई ४०००८०
३. चिरंजीलाल शर्मा "विनोदी"
चिडावा ३३३०२६

मूल्य— श्रद्धापूर्वक नित्य कर्म करना तथा दूसरों को प्रेरित करना।

मुद्रक— तारा प्रिंटिंग वर्क्स, कमच्छा, वाराणसी

विषय-सूचि

विषय **पृष्ठ संख्या**

महर्षि-पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान
तिथी
पु.सं. 1654
* भारती पुस्तकालय *

१.समर्पण
२. मंगलाचरण
३. नम्र निवेदन १
४. ऋषि, छन्द-देवता, विनयोग, तथा यंत्र, तंत्र-मंत्र रहस्य ६
५. सन्ध्योपासना का अर्थ एवं तत् सम्बन्धी मंत्रों के ऋषि-छन्द एवं देवता आदि का निर्णय १५
६. सन्ध्या करने से लाभ तथा न करने से हानि १८
७. सन्ध्या के लिये उत्तम देश और काल १९
८. कर्म लोपका प्रायश्चित्त २१
९. अशौच में सन्ध्योपासन का विचार २३
१०. सन्ध्या मंत्रों के अर्थज्ञान की आवश्यकता २४
११. सन्ध्या में दिशाका विचार २४
१२. कुश पवित्र धारण २५
१३. शिखा बन्धन तथा यज्ञोपवीत धारण २६
१४. भगवत् स्मरण और आसन शुद्धि २७
१५. आचमन २८
१६. प्राणायाम ३०
१७. मंत्राचमन, मार्जन ३२
१८. अघमर्षण ३३
१९. अर्घ्यदान ३४

२०. सूर्योपस्थान ३६
२१. गायत्रीजप ३७
२२. सूर्यप्रदक्षिणा ४०
२३. जपनिवेदन, विसर्जन, तथा एक आवश्यक बात ४१
२४. सन्ध्या मंत्रों के ऋषि-छन्द-और देवता का विचार ४२
२५. कर दर्शन, पथ्वी प्रार्थना ५४
२६. प्रातः स्मरण-गणेश वन्दना, शिवस्तुति ५५
२७. नारायणस्तुति, सूर्यस्तुति ५६
२८. दुर्गास्तुति, रामस्तुति ५७
२९. ऋषियों की प्रार्थना, पुण्यश्लोक जनों की प्रार्थना ५८
३०. नवग्रहों की स्तुति ५९
३१. शौच विधि ५९
३२. दन्त धावन विधि ६०
३३. क्षौर विधि, तैलाभ्यङ्ग विधि ६१
३४. संकल्प विधि ६२
३५. स्नान विधि ६३
३६. तीर्थावाहन, गंगाजीकी प्रार्थना ६४
३७. स्नानाङ्ग तर्पण, (घरमें न करें) ६५
३८. वस्त्रधारण विधि ६६
३९. आसन, शिखाबंधन-मंत्र, चंदन धारण मंत्र ६७
४०. तिलक धारण विधि, भस्मधारण विधि, यज्ञोपवीत धारण विधि ६८
४१. यज्ञोपवीत धारण मंत्र तथा विनियोग, जीर्णयज्ञोपवीतत्याग मंत्र,
कुशग्रहण विधि ६९

४२. कुश ग्रहण मंत्र, त्याग योग्य कुशा, जप विधि ७०
४३. माला विधि, माला प्रार्थना, देवमंत्र की कर माला ७२
४४. आचमन विधि ७३
४५. सन्ध्योपासन विधि ७५
४६. नित्यहोम विधि ९२
४७. देवर्षि, मनुष्य, पितृ तर्पण विधि ९८
४८. देव तर्पण, ऋषि तर्पण १००
४९. दिव्य मनुष्य तर्पण, दिव्य पितृ तर्पण १०१
५०. यम तर्पण १०२
५१. मनुष्य पितृ तर्पण १०३
५२. द्वितीय गोत्र तर्पण, पत्न्यादि तर्पण १०८
५३. वस्त्र निष्पीड़न ११०
५४. भीष्म तर्पण, अर्घ्यदान १११
५५. सूर्योपस्थान ११४
५६. मुखमार्जन, विसर्जन ११५
५७. समर्पण ११६
५८. बलिवैश्वदेव विधि ११७
५९. देवयज्ञ १२०
६०. भूतयज्ञ १२१
६१. पितयज्ञ १२२
६२. निर्णेजन, मनुष्ययज्ञ, गोबलि, श्वानबलि, काकबलि १२३
६३. देवादिबलि, पिपीलिकादि बलि, पितरों से प्रार्थना १२५-१२६
६४. सांकल्पिक श्राद्ध विधि, ब्राह्मणपाद प्रक्षालन फल १२७

महर्षि-पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान
तिथी......
पु०सं० 1658
भारती पुस्तकालय

६५. पितृश्राद्ध, पिताकेश्राद्ध का प्रतिज्ञा संकल्प १२८
६६. श्राद्ध में पाकका संकल्प १३०
६७. मातृ श्राद्ध, माता श्राद्ध का प्रतिज्ञा संकल्प १३१
६८. मातृ श्राद्ध में पाकका संकल्प १३३
६९. आपोशान, शयनविधि १३४-१३५
७०. देव पूजा विधि १३६
७१. वृक्षसे तुलसी ग्रहण मंत्र १३७
७२. दीपक पूजन, घंटापूजन, शंखपूजन, स्वस्तिवाचन १३८
७३. पुण्याह वाचन १३९
७४. अङ्गन्यास, पञ्चाङ्गन्यास १४२
७५. करन्यास, गणपति तथा अम्बिकापूजन १४३
७६. कलश पूजन १४७
७७. नवग्रह पूजन १४९
७८. पञ्चलोकपाल पूजन १५१
७९. दश दिकपाल पूजन १५२
८०. षोडश मातृका पूजन १५३
८१. चतुःषष्टि योगिनी पूजन, रक्षाविधान १५४
८२. ब्राह्मण रक्षा बन्धन मंत्र, ब्राह्मण तिलक मंत्र, यजमान रक्षा बन्धन मंत्र, यजमान तिलक मंत्र १५५
८३. शालग्राम पूजन १५६
८४. नैवेद्य निवेदन मंत्र १५९
८५. श्री सत्यनारायण जी की आरती १६०
८६. श्री विष्णु स्तुति १६१

तिथि........
पु०सं० 1658
भारती पुस्तकालय

८७. पुष्पाञ्जलि १६३

८८. प्रदक्षिणा, क्षमा-प्रार्थना, विसर्जन १६४

८९. चरणामृत, तुलसी, पञ्चामृत, नैवेद्य ग्रहण मंत्र १६५

९०. शिवपूजन, नन्दीश्वर पूजन, वीरभद्र पूजन १६६

९१. स्वामी कार्तिकेय पूजन, कुबेर पूजन, कीर्तिमुख पूजन १६७

९२. अभिषेक १६९

९३. शिवजी की आरती १७२

९४. शिवस्तुति (पुष्पाञ्जलि) १७३

९५. प्रदक्षिणा १७४

९६. पार्थिव शिवपूजन १७५

९७. दुर्गा पूजन १७६

९८. भैरव पूजन, देवीध्यान १७७

९९. पुस्तक पूजन, ज्योति पूजन, कुमारी पूजन १८०

१००. श्री दुर्गाजी की आरती १८१

१०१. श्री महालक्ष्मी पूजन १८२

१०२. अङ्ग पूजा (श्री लक्ष्मीजी की) १८४

१०३. अष्ट लक्ष्मी पूजन १८५

१०४. लेखनी पूजन १८६

१०५. कुबेर पूजन, तुला तथा मान पूजन, दीपावलि पूजन १८७

१०६. श्री लक्ष्मीजी की आरती, श्री सत्यनारायणाष्टक १८८

१०७. श्री महालक्ष्म्याष्टक १८९

१०८. कनकधारा स्तोत्र, भगवतीस्तोत्र १९०-१९१

१०९. श्रीराम पूजन विधि १९२
११०. श्रीहनुमत् पूजन विधि २०२
१११. श्री महामृत्युञ्जय जप विधि २१२
११२. जन्मोत्सव (वर्षगाँठ) सामान्य पूजा २१५
११३. सन्तान गोपाल मंत्र प्रयोग २१७
११४. मंगलगीत २१९
११५. श्रीगङ्गाष्टक, श्री राधाकृष्ण युगल स्तोत्र २२०
११६. देव्यपराध क्षमापन स्तोत्र २२१
११७. श्रीशीतलाष्टकम् २२३
११८. श्रीविष्णुसहस्रनाम स्तोत्रम् २२५
११९. श्रीमहामृत्युञ्जय स्तोत्रम् २४०
१२०. शताङ्गायुर्मन्त्र २४१
१२१. श्रीशिवमहिम्नः स्तोत्रम् २४२
१२२. श्रीशिवमानस पूजास्तोत्रम् २४९
१२३. श्रीरावणकृत शिवताण्डव स्तोत्रम्, शिवपञ्चाक्षर स्तोत्रम् २५०-२५१
१२४. शिवरामाष्टकम् २५२
१२५. श्रीआदित्यहृदय स्तोत्रम् २५३
१२६. श्रीअन्नपूर्णा स्तोत्रम् २५६
१२७. श्रीसूक्तम् २५८
१२८. श्रीनवग्रह स्तोत्रम् २६१
१२९. गजेन्द्रमोक्ष स्तोत्रम् २६२
१३०. श्री मच्छङ्कराचार्य विरचिता दशश्लोकी २६५

१३१. हनुमान चालीसा २६७
१३२. श्री संकटमोचन हनुमानाष्टक २६९
१३३. श्री सप्तश्लोकी गीता, चतुः श्लोकी भागवत् २७१
१३४. एकश्लोकी रामायण, गरुड़स्तुति २७२
१३५. श्रीहनुमत् स्तुतिः, अन्नपूर्णास्तुति, कालिकास्तुति, शीतलास्तुति, पीपलस्तुति, तुलसीस्तुति २७३
१३६. सरस्वती स्तुति, विष्णु स्तुति २७४
१३७. श्री द्वादशज्योतिर्लिङ्ग स्तुति, अमृत संजीवन स्तोत्रम् २७५
१३८. श्रीविष्णु अपामार्जन स्तात्रम् २८१

विविध विषय

१३९. चारवेद, चारउपवेद, दशमुख्य उपनिषद्, अष्टादशपुराण, अष्टादश उपपुराण २९८
१४०. षड्दर्शन तथा उनके प्रवर्त्तक, बीस स्मृतियाँ, पञ्चज्ञानेन्द्रियाँ, अष्टाङ्गयोग, अष्टसिद्धियाँ २९९
१४१. नवनिधियाँ, नवरस, नवग्रह, नवधा भक्ति, तीनलोक, चौदहलोक, दशदर्भ, दश महादान ३००
१४२. चारपुरुषार्थ, तीनताप, पंचकर्मेन्द्रिय, द्वादश आदित्य, सप्तऋर्षि, पंचोपचार, सप्तनदी, सप्तमोक्षपुरी, चारधाम, चारप्रकारके जीव, जिनकी प्राण प्रतिष्ठा नहीं होती उनका विवरण ३०१
१४३. कुछ आवश्यक जानकारी, अतिथिसत्कार, पवित्र पर्वत, सप्तबदरी, पञ्च केदार ३०२

१४४. पञ्चसरोवर, सप्तक्षेत्र, द्वादशअरण्य, स्त्रियों को शालग्राम पूजा निषेध, अंत्यवेला निर्देश ३०३

१४५. पूजा की सामान्य सामग्री ३०४

पञ्चपल्लव, पञ्चरत्न, पञ्चगव्य, पञ्चामृत, पञ्चधान्य, सप्तधान्य, सप्तमृत्तिका

सर्वौषधि, नव समिधा, नवरत्न, तर्पण-साँकल्पिकश्राद्ध, देवपूजा सामग्री

१४६. परमहंस पं. गणेशनारायणजी का संस्मरण ३०५-९

श्रौत-स्मार्त कर्मों के आदि प्रवर्तक ऋषि महर्षियों
के
श्रीचरणों में सादर समर्पित
यह
"नित्योपासना एवं देवपूजा-पद्धति"

विनम्रसेवक—
बनवारीलाल सिंघानिया
(चिडावा निवासी, बंबई प्रवासी)

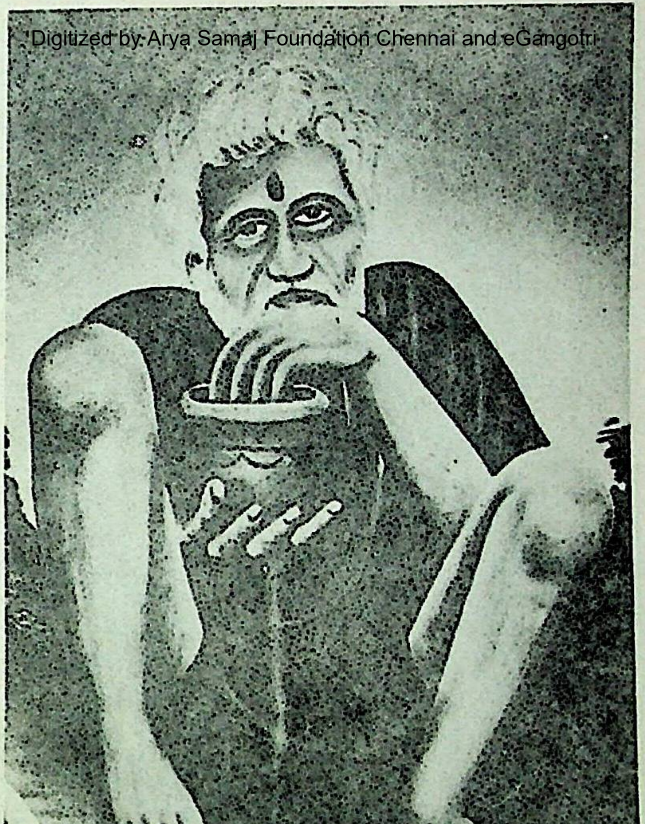

परमहंस पूज्य पं. श्री गणेश जी

निर्वाण-पौषशुक्ल नवमी सम्वत् १९६९

(दिनांक १७.१.१९१३ गुरुवार)

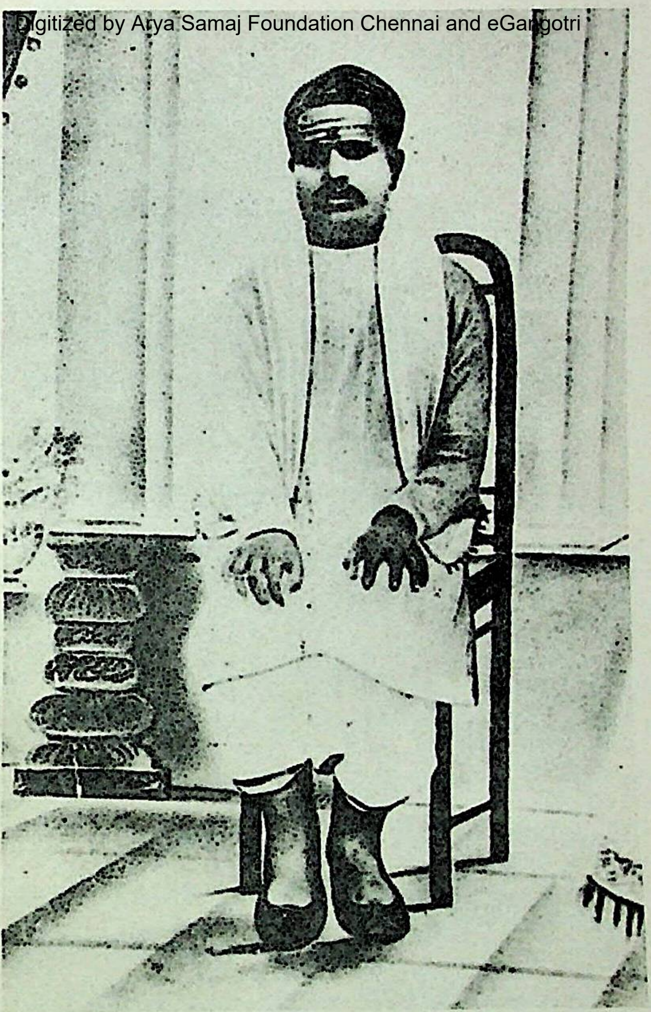

पूज्य दादाजी स्व. सेठ गुरुमुखरायजी सिंघानिया

निर्वाण—फाल्गुन शुक्ल १, सम्वत् १९७२.

(दिनांक ५.३.१९१६)

ॐ

सर्वेभ्यो देवेभ्यो नमः

मंगलाचरण

स जयति सिन्धुरवदनो देवो यत्पादपङ्कजस्मरणम् ।
वासरमणिरिव तमसां राशीन्नाशयति विघ्नानाम् ॥१ ॥
सुमुखश्चैकदन्तश्च कपिलो गजकर्णकः ।
लम्बोदरश्च विकटो विघ्ननाशो विनायकः ॥२ ॥
धूम्रकेतुर्गणाध्यक्षो भालचन्द्रो गजाननः ।
द्वादशैतानि नामानि यः पठेच्छृणुयादपि ॥३ ॥
विद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा ।
संग्रामे सङ्कटे चैव विघ्नस्तस्य न जायते ॥४ ॥
शुक्लाम्बरधरं देवं शशिवर्णं चतुर्भुजम् ।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत्सर्वविघ्नोपशान्तये ॥५ ॥
व्यासं वसिष्ठनप्तारं शक्तेः पौत्रमकल्मषम् ।
पराशरात्मजं वन्दे शुकतातं तपोनिधिम् ॥६ ॥
व्यासाय विष्णुरूपाय व्यासरूपाय विष्णवे ।
नमो वै ब्रह्मनिधये वासिष्ठाय नमो नमः ॥७ ॥
अचतुर्वदनो ब्रह्मा द्विबाहुरपरो हरिः ।
अभाललोचनः शम्भुर्भगवान् बादरायणः ॥८ ॥

नम्र निवेदन

यह सर्वदा सत्य है कि केवल मनुष्य जीवन में ही अज्ञान-ग्रन्थियों के शिथिलीकरण अथवा उन्मूलन का सामर्थ्य उदय होता है ।

श्रीतुलसीदास जी ने मनुष्य जीवन की श्रेष्ठता के बारे में लिखा है:—

बड़े भाग मानुस तनु पावा । सुर दुरलभ सदग्रन्थनि गावा ।।

मुनष्य जन्म में ही समग्र अभ्युदय एवं निःश्रेयस की प्राप्ति संभव है । वैसे मनुष्य में पूर्वजन्मों के कर्मों द्वारा निर्मित संस्कारों के साथ ही गर्भ के माता-पिता के वंशानुगत संस्कार भी होते हैं । इन में कुछ अच्छे कुछ बुरे संस्कार भी हो सकते हैं । इसी के साथही जीवन के दैनिक आचरणों द्वारा भी नित्य अच्छे बुरे संस्कारों का भी संचय होता है ।

सांसारिक प्रपञ्चों में मनुष्य धार्मिक कार्यों में संलग्न रहकर भी अनेक अदृष्ट पापों से अनजाने संबद्ध हो ही जाता है । कर्मों की गति इतनी गहन है कि उसे समझ पाना अत्यंत जटिल है । ऐंद्रियक ज्ञान अथवा लौकिक विज्ञान के आधार पर चाहे जितनी उच्च कोटि की बुद्धि का निर्माण कर लिया जाय, किन्तु उसके द्वारा केवल दृश्य पदार्थों का ही प्रत्यक्ष संभव है, नित्य परोक्ष अलौकिक तथ्यों का साक्षात् कभी नहीं हो सकता । आजकल बढ़ती हुई वैज्ञानिक यान्त्रिक धारा में बहती हुई जनता के सामने सही दिशा दिखानेवाली शिक्षा का अभाव है । हमारे बालक दिन प्रतिदिन विज्ञान द्वारा आविष्कृत पदार्थों की चकाचौंध से आकृष्ट हो कर घर के बड़े लोगों के अनुशासन में रहना पसन्द नहीं करते और बड़े लोगों में आध्यात्मिक चेतना वर्धन की सामग्री का अभाव देख कर तथा समाधान के अभाव में कोमल चित्त बालक अपनी अपरिपक्व बुद्धि को ही आधार बना कर चलता है । यह नई पीढ़ी का दोष नहीं है । नई पीढ़ी का बालक केवल प्रत्यक्ष प्रमाण ही मानने की स्थिति में शिक्षा पाता है तथा शिक्षकों की मनोवृत्ति एवं संरक्षक माता-पिता की प्रवृत्तियों से परिचित होकर स्वच्छन्द विचरण करने लगता है । इस प्रकार के आचरणों से कुछ असहाय संरक्षकों को दुःख भी होता है तथा कुछ संरक्षक इससे संतुष्ट भी देखे जाते हैं । वस्तुतः वर्तमान

की इस धारा को रोक पाना असंभव है । आवश्यकता है प्राचीन आध्यात्मिक धारा को वर्तमान धारा में मिला देने की; जिससे राष्ट्र सुपुष्ट तथा स्पृहणीय बनेगा । वर्तमान वैज्ञानिकों तथा प्राचीन ऋषि-महर्षियों में इतना भेद मानना ही पड़ता है कि वैज्ञानिक लोकोपयोगी पदार्थों का आविष्कार करते हैं, जबकि हमारे ऋषि समाज को अलौकिकता की तरफ बढाते रहे ।

मंत्रद्रष्टा ऋषियों ने धर्म अर्थ काम मोक्ष नामक चार पदार्थों में लौकिक तथा अलौकिक सत्ता को समेट कर इन की प्राप्ति ही सर्व श्रेष्ठ उपलब्धि बताई है और इसके लिये उन्होंने अपने अनुभव के बल पर नित्य-नैमित्तिक कर्मों द्वारा उपर्युक्त चारों पदार्थों की प्राप्ति संभव बताई हैं ।

धर्मशास्त्रों में भी शौच, स्नान, संध्या, तर्पण, बलिवैश्वदेव, देवपूजा आदि श्रौत, स्मार्त्त कर्मों द्वारा-मलिनता अज्ञानता, वासना, आसक्ति, अहंकार, इत्यादि आचरणों के उच्छेदन का पथ प्रशस्त किया गया है ।

अतः "तमसोमाज्योतिर्गमय" की यात्रा का प्रारंभ कर्मकाण्ड को आधार भूमि मान कर करना श्रेष्ठ मार्ग है ।

शायद उपर्युक्त तथ्यों को आधार मान कर शास्त्रों से नित्योपासना विधियों का संकलन करके विद्वानों ने सर्वसाधारण के लिये इस विषय को उपलब्ध करा के सचमुच ही स्तुत्य कार्य किया है । यदि इस विषयको सरल बना कर सर्व सुलभ नहीं किया जाता तो शायद इसका भी लोप हो जाता ।

इसी प्रकार धनिकों ने नित्योपासना विधियों को प्रकाशित करा के निःशुल्क आवंटन कराके धार्मिक जगत् का बड़ा कल्याण किया है । स्मरण रहे जैसे पूजा-पाठ, यज्ञ, आदि पुण्य कार्य हैं उसी प्रकार भूतदया, आस्तेय, अहिंसा, सत्य, समाजसेवा, नैतिकता, आदि भी पुण्य कार्य हैं ।

इसी संदर्भ में मैं बताना चाहूँगा कि मेरे निकटस्थ आत्मीय प्रियवर श्री बनवारी लाल सिंहानिया (चिडावानिवासी, बंबई प्रवासी) ने लगभग २० वर्ष पूर्व "संक्षिप्तनित्योपासना विधि" कर्मकाण्ड, ज्योतिष के विद्वान् श्री पं. मक्खन लाल जी (नवलगढ़ निवासी-बम्बई प्रवासी) द्वारा संकलित, प्रकाशित कराके निःशुल्क

आवंटन करके कर्मकाण्ड प्रेमी सनातन धार्मिक जनों का बड़ा उपकार किया। उपर्युक्त पुस्तक के समाप्त हो जाने पर बराबर माँग बनी रही, जिससे लगता है कि लोगों ने उसे पसंद किया। अतः एक दिन प्रियवर श्रीबनवारी लाल ने पूर्व प्रकाशित "संक्षिप्त नित्योपासनाविधि" का विस्तार करके कुछ नये प्रसंगों सहित देवपूजा प्रसंग का भी विस्तार करके पुनः मुद्रित कराने का प्रस्ताव मुझ से किया। प्रस्ताव सुनकर किंकर्त्तव्यविमूढ जैसी स्थिति मेरी बन गई। मैं स्वभाव से दीर्घ-सूत्री होने की अपनी कमजोरी को भलीभाँति जानता हूँ। "गृह कारज नाना जंजाला" बात के साथ ही "परकारज नाना जंजाला" की अपनी आदत से भी मुझे हिचकिचाहट रही। उम्र भी साहस नहीं करने की तरफ इशारा कर रही थी। मैं नये प्रकाशन "नित्योपासना एवं देवपूजा पद्धति" को केवल खाना पूरी करने की सोच भी नहीं सकता। दूसरी तरफ प्रियवर बनवारी लाल के आग्रह को टालना भी मेरे लिये असंभव है। अन्ततः मैंने अन्तर्द्वन्द्वसे निकल कर पुनर्मुद्रण-विस्तारीकरण एवं सम्पादन की स्वीकृति दे दी।

दिन, मास, वर्ष निकलते गये। अभिन्नहृदय प्रिय बनवारी लाल के पत्र जल्दी करने हेतु आते रहे। मेरे चिन्तन से संध्या-तर्पण की प्रकाशित पुस्तकों में पाठ भेद है, अतः इस पर विधिवत अनुसंधान करके ही आगे बढ़ने की इच्छा हुई तथा वेद- मंत्रों के ऋषि, छंद, देवता पर भी सप्रमाण अनुसंधान करने की कामना रही। वेद- मंत्रों के हिन्दी अर्थ भी सुलभ कराने की मैं चेष्टा करता रहा, लंबे समयतक इस बारे में विभिन्न प्रकाशन देखे और पढ़े। अन्वेषण करने पर पता चला कि धार्मिक जगत् की विश्व विख्यात संस्था गीता प्रेस ने क़ाशी के विद्वानों द्वारा इस विषय पर शोधपूर्ण प्रमाण उपलब्ध किये हैं। काशी के मूर्धन्य विद्वानों (अब स्व.) पूज्य चरण महामहोपाध्याय पं.विद्याधरजी गौड़, पूज्यचरण पं. मदनमोहन जी शास्त्री तथा पूज्य पं. श्री नारायणदत्त शास्त्री जी द्वारा उपर्युक्त सामग्री एकत्रित की गई थी अतः गीता प्रेस तथा पूज्य श्रीचरणों का आभार मान कर इस विषय की सामग्री का चयन उसी संदर्भ में करने का विचार बना। भगवत् कृपा से पुस्तक में नित्य कर्म के साथ ही कुछ अन्य बातों का समावेश करके तथा टिप्पणी में परिवर्त्तन संबन्धी प्रमाणों को देकर पाठभेद संम्बन्धी शंकाएँ दूर करने का प्रयास किया गया है। जहाँ नित्योपासना एवं देवपूजापद्धति में

एतद्‌विषयक प्रचुर सामग्री का संकलन किया गया है वहीं विषय के सरलीकरण पर भी ध्यान रखा गया है जिससे सर्वसाधारण भी इसे अच्छी तरह समझ सके ।

यद्यपि संध्या के मन्त्रों के ऋषि, छन्द और देवता पर तथा ऋषि-छन्द-देवता-विनियोग एवं यंत्र-मंत्र-तंत्र रहस्य विषय पर प्रामाणिक शोधपूर्ण सामग्री उपलब्ध कराने के कारण पद्धति का आकार बढ़ गया है ।

किन्तु महर्षि याज्ञवल्क्य के अनुसार— (आर्ष छन्दश्च दैवत्वं विनियोगस्तथैं-वचः । वेदितव्यं प्रयत्नेन— ॥ तथा—अविदित्वा तु यः कुर्याद् यजनाध्यापनं ज-पम् । होम मन्तर्जलादीनि तस्य चाल्पफलं भवेत्) ॥ ऋषि, छन्द, देवता का ज्ञान प्राप्त किये बिना मंत्र से यजन-याजन, अध्ययन-अध्यापन और जप-होमादि करना अल्प फल देता है । अतः विद्वानों ने इस प्रसंग के देने का आग्रह किया । मुझे विश्वास है इससे पुस्तक की प्रासङ्गिकता में अभिवृद्धि होगी ।

मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि परम आत्मीय श्री बनवारी लाल ने इतनी मंहगाई में भी उत्तम कागज, श्रेष्ठ मुद्रण के व्यय में किसी प्रकार का संकोच किये बिना आफसेट प्रणाली द्वारा प्रकाशन करके बड़ी उदारता की है । मैं धर्म प्रचार के इस पुनीत कार्य के लिये अभिन्न सखा प्रिय बनवारीलाल सिंघानिया को सपरिवार आशीर्वाद देकर परमपिता परमेश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वह संपूर्ण परिवार सहित उन्हें स्वस्थ, सुखी एवं दीर्घजीवी बनावे तथा सभी के हृदयों में शिव संकल्पों का उदय होकर उनके द्वारा धर्माचरण होता रहे । प्रस्तुत "नित्योपासना एवं देवपूजापद्धति" में आह्निक कृत्यों का यथासंभव अधिकाधिक संकलन का प्रयत्न किया गया है, जो हमारे ऋषि, महर्षियों का प्रसाद है । इसमें जो भी श्रेष्ठ है वह हमारे पूर्व आचार्यों का है, तथा जो भी भूल है वह एक मात्र मेरी अपनी है ।

काशी की सुप्रसिद्ध तारा प्रिंटिंग प्रेस के संचालक श्री रवि प्रकाश पण्डया के प्रति मैं अपना आभार व्यक्त करता हूँ, जिनका बहुमूल्य सहयोग हमें निरन्तर प्राप्त होता रहा । संकलन, संपादन, प्रूफ-संशोधन, तथा मुद्रण में जो भी त्रुटियाँ हों, उन्हें सहृदय पाठक परिमार्जित करके मुझे अनुगृहीत करेंगे ऐसी प्रार्थना है । विद्वानों से सादर अनुरोध है कि सभी त्रुटियों को— "संत हंस गुन गहहिं पय, परिहरि वारि

विकार" की भाँति गुण ग्रहण करने की कृपा करेंगे। यदि कुछ सज्जनों को भी प्रस्तुत पुस्तक के सहयोग से आह्निक कृत्यों के प्रति अभिरुचि जागृत हो सकी तो हमारा प्रयास सफल होगा। प्रस्तुत पद्धति के संकलन एवं प्रकाशन में मेरे आत्मीय चि. अरुणोदय मिश्र (सुपुत्र संस्कृत जगत् के कालजयी विद्वान्, चिडावा निवासी—काशी प्रवासी आचार्य पं. मधुसूदन शास्त्री भूतपूर्व डीन, फैकल्टी आफ दी ओरियण्टल लर्निंग का. हि. वि. वि.) एवं मेरे भागिनेय चि. शिवरतन मोरोलिया एम. ए. (इतिहास, अर्थशास्त्र, राजनीति, समाजशास्त्र) शास्त्री द्वारा भी जो सहयोग होता रहा उसके लिये मैं चि. मिश्र एवं चि. शिवरतन को अपना शुभाशीष देकर उनके मंगल की कामना करता हूँ।

सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु माकश्चिद् दुःख माप्नुयात् ॥

इस जगत् में सब सुखी हों, सब निरोग हों, सब शुभ दर्शन करें, सभी सर्वत्र आनंद करें। किसी को भी दुःख न हो, सभी मंगलमय हो।

दुर्जनः सज्जनो भूयात् सज्जनः शान्तिमाप्नुयात् ।
शान्तो मुच्येत् बन्धेभ्यो मुक्तश्चान्यान् विमोचयेत् ॥

दुर्जन सज्जन बनें, सज्जन शान्ति लाभ करें, शान्त बन्धन मुक्त बनें, और मुक्त दूसरों को बंधन मुक्त करें। (कहा जाता है कि भगवान बुद्ध जब किसी के घर से चलते तो मन ही मन ऐसा आशीर्वाद करते थे)

विनीतः—
चिरंजी लाल शर्मा "विनोदी"

रामनवमी
विक्रम सम्वत् २०५०
वाराणसी

ऋषि-छन्द-देवता-विनियोग तथा यंत्र-तंत्र-मंत्र रहस्य

'ऋषि'-(ऋष् = अपरोक्षदर्शन) जिनका अपरोक्ष दर्शन खुल गया है वे ऋषि हैं। भगवान् अनन्त हैं और उनके सृष्ट पदार्थ भी अनन्त हैं। जीव असंख्य हैं, जीवके जीवन के लक्ष्य भी असंख्य हैं और उस लक्ष्य सिद्धि के उपाय भी असंख्य हैं। भिन्न-भिन्न उद्देश्य-सिद्धि की साधन-प्रणाली विभिन्न है। जिस साधक ने जिस उद्देश्य से जिस साधन-प्रणाली द्वारा सिद्धि लाभ की है वह उस निर्दिष्ट तत्त्व का, उस निर्दिष्ट साधन-प्रणाली का, ऋषि है।

"ऋषयः मन्त्रद्रष्टारः स्मारका न तु कारकाः"।

वेद नित्य अपौरुषेय हैं। वेद भगवान् की चिद्विभूति हैं। ऋषिगण उनके स्रष्टा नहीं हैं। उन्होंने साधना के प्रभाव से चित्त शुद्धकर प्रकृति के कलेवर में भगवान के हाथ से लिखे वेदों के दर्शन किये। वे मन्त्र के सृष्टिकर्त्ता नहीं हैं—द्रष्टा अथवा स्मारक मात्र हैं।

तत्त्व नित्य है, प्रकृति का विधान भी नित्य है। जिस विधान द्वारा जिस तत्त्व का साक्षात्कार होता है वह प्रणाली भी नित्य है। ऋषियों ने साधन-बल द्वारा मन्त्र की साधन-प्रणाली का केवल आविष्कार किया—वे मन्त्र के सृष्टिकर्त्ता नहीं हैं।

'छन्द'—जिस प्रणाली द्वारा जिस छन्द से जिस भाव का कम्पन उत्पन्नकर उद्देश्य सिद्ध होता है, वह छन्द उस निर्दिष्ट साधन-प्रणाली का छन्द है।

'देवता'—देवता शब्द द्योतनार्थक व क्रीड़ार्थक 'दिव' धातु से साधित होता है। प्रकृति के विभिन्न तत्त्वों में, विभिन्न स्तरों में, चैतन्य-परमात्मा किस प्रकार प्रकाशित और लीलारत हैं, यह देवता-तत्त्व के अन्तर्गत है। भगवत्-चैतन्य के विभिन्न प्रतिबिम्ब अथवा विभूति—विभिन्न भाव के लीलाभाव—का नाम देवता तत्त्व है।

'विनियोग'—कौन साधना किस भाव से अनुष्ठित हुई एवं उससे क्या प्रयोजन सिद्ध हुआ, यह विनियोग-तत्त्व के अन्तर्गत है ।

पहले निश्चय करना होगा कि हम क्या चाहते हैं—हमारा लक्ष्य क्या है ? इसके बाद पता लगाना होगा कि यह लक्ष्य किसी के जीवन में सिद्ध हुआ है या नहीं । जिन्होंने इस लक्ष्य में सिद्धि लाभ की है वे ही इस लक्ष्य-सिद्धि के, इस मन्त्र के, ऋषि होंगे । जिस उपाय से सिद्धि लाभ की है वह होगा उस मन्त्र का छन्द । जिस स्नायुकेन्द्र में वह शक्ति निहित है, उस स्नायुकेन्द्र में प्राणवायु और मनन शक्ति को एकाग्रकर, वहाँ की सुप्त शक्ति को जगाकर, उस केन्द्र में उस शक्ति के प्रकाश तथा कार्यप्रणाली को उपलब्ध करना उस साधनप्रणाली का देवता तत्त्व कहलायेगा । तत्पश्चात् उस जाग्रत् शक्ति को उद्देश्य साधन में नियुक्त करके उद्देश्य सफल करना ही विनियोग तत्त्व है ।

पहले यह निश्चित करना होगा कि मैं यथार्थ रूप से क्या चाहता हूँ । इसके बाद उस पथ के हेतु आदर्श, सिद्ध गुरु के उपदेश, कृपा और सहायता की आवश्यकता होगी । तत्पश्चात् गुरु की आदिष्ट प्रणाली को अवलम्बन कर साधन करना होगा, तदनन्तर उद्देश्य सिद्धि अथवा उस देवता का दर्शन लाभ होगा ।

ऋषि—तत्त्वदर्शी गुरु; **छन्द**—साधन-प्रणाली; **देवता**—अपूर्व सुप्त आराध्य शक्ति, **विनियोग**—उस शक्ति को साधन बलसे जागरितकर, निर्दिष्ट रूपसे चलाकर, कार्यक्षेत्र में पूर्ण सिद्धिलाभ करना अर्थात् उद्देश्य की सफलता ।

'यन्त्र' शब्द 'यम' धातु से निष्पन्न होता है । 'यम् धातु' का साधारण अर्थ है 'संयम करना, नियन्त्रण करना, विस्तृत शक्ति को केन्द्रीभूत करना' । सूर्य की किरणें जगत् में व्याप्त हैं । इस विस्तीर्ण किरणों को केन्द्रीभूत करने पर प्रभूत शक्ति संचारित होती है जिससे अलौकिक कार्य किये जा सकते हैं—इसके अनेक दृष्टान्त जगत् में मिलते हैं । इस शक्ति को एकत्रितकर और विधानानुसार विकीरणकर इसके द्वारा भीषण परिणाम भी साधित हो सकता है यह हमें पिछले युद्ध के आणविक बम्ब के कार्यकलापसे ज्ञात होता है ।

भगवान के सृष्टि-रहस्य का चिन्तन करते समय सबसे पहले हमारा ध्यान एक बीज की तरफ जाता है जिसके भीतर एक पूर्ण परिणत वृक्ष को उत्पन्न करने की शक्ति निहित है। इसी के साथ 'सर्वं सर्वात्मकं' उक्ति का स्मरण आता है। प्रत्येक परमाणु के भीतर भगवान ने अनन्त शक्ति निहित रखी है और इस सुप्त शक्ति को जागरित, विकसित तथा कार्यक्षम करना ही समस्त साधन-भजन का उद्देश्य है। जहाँ यह शक्ति, बीजाकार रूप में निहित है और जहाँ से यह बीजशक्ति पूर्णतया प्रकटित होती है, उस आधार का नाम 'यन्त्र' है। हमारे स्थूल शरीर के—विशेषत: मेरुदंड के अन्त:स्थित केन्द्र एक-एक यन्त्र हैं। विविध केन्द्रों में मन स्थिरकर साधकगण अलौकिक शक्ति लाभ कर सकते हैं, यह बात हम किसी तरह अस्वीकार नहीं कर सकते। हम दर्शन-यन्त्र के केन्द्र में मन स्थिरकर दूरदर्शन, सूक्ष्मदर्शन, दिव्यदर्शन, लाभ कर सकते हैं, प्रकृत साधन यह स्वीकार करने को बाध्य है। भगवान का दर्शन करने के लिए यही दिव्य-दर्शन करने वाले ज्ञानचक्षु की आवश्यकता है। उनका वचन सुनने के लिए यही दिव्यश्रवण की जरूरत है। अर्थात् एक-एक अनुभूति लाभ करने के लिये, तत्तत् केन्द्रों में मन स्थिरकर, वहाँ की गुप्त शक्ति को जागरित करने की व्यवस्था देखी जाती है। सब यन्त्र पूर्णतया विकसित हुए बिना पूर्णस्वरूप को पूर्णरूप में आस्वाद करना असम्भव है। साधकगण विश्वास करते हैं कि पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण के सब यंत्र पूर्णतया विकसित थे; उनकी प्रत्येक इन्द्रिय में समस्त इन्द्रियों की शक्तियाँ विकसित थीं। 'अंगानि यस्य सकलेन्द्रियवृत्तिमन्ति', यह श्लोक इसी रहस्य पर प्रकाश करता है। अणुवीक्षण और दूरवीक्षणादि यंत्रों की सहायता से हम जैसे सूक्ष्म और दूरस्थ पदार्थ देखते हैं, इसी प्रकार योगीगण एक-एक स्नायुकेन्द्र में प्राणशक्ति को चालितकर और वहाँ मन स्थिरकर अनेक अतीन्द्रिय तत्त्व का प्रत्यक्ष दर्शन करते हैं। प्राणशक्ति को चालित करने की प्रणाली 'तंत्र तत्त्व' का विषय है और मननशक्ति को केन्द्रीभूत करने की प्रणाली 'मंत्रशास्त्र' का विषय है। निर्दिष्ट स्नायुकेन्द्र खराब हो जाने से हम दर्शन-श्रवणादि शक्ति से वंचित हो जाते हैं यह बात विज्ञानसम्मत है। साधनराज्य में

ये विभिन्न स्नायुकेन्द्र ही यंत्रविशेष हैं। विभिन्न मन्त्रसाधना के लिए—विभिन्न विषयों में सिद्धि लाभ करने के लिए— पृथक्-पृथक् केन्द्र निर्दिष्ट हैं।

मेरुदंडस्थ चक्रादि योगियों के प्रधान अवलम्बन हैं। ये साधनराज्य के यंत्रविशेष हैं। इन सब यंत्रों में प्राणशक्ति को चालितकर एवं मनको स्थिरकर अनेक अलौकिक कार्य साधित हो सकते हैं। हमारे देहस्थ विविध केन्द्र विशेषतः स्नायुकेन्द्र विभिन्न यन्त्रों में परिणत हो सकते हैं। चक्षु जैसे देखने का यंत्र है उसी प्रकार कान सुनने का निर्दिष्ट यंत्र है। इन पाँच विषयों की भाँति सूक्ष्म विषय अनुभव करने के लिए अनेक सूक्ष्म यंत्र भी हैं। दूरवीक्षण के व्यवहार में तीन तत्त्व लक्ष्य में आते हैं। प्रथम दूरवीक्षण यंत्र, द्वितीय उसकी केन्द्रगत करने की प्रणाली, तृतीय उसमें मन स्थिर करके देखना। इसमें पहला यंत्र है, दूसरा तंत्र और तीसरा मंत्र। प्राचीन ऋषियों ने पहले देहस्थ प्रधान-प्रधान केन्द्रों (यंत्रों) का आविष्कार किया। इसके बाद उन यंत्रों में प्राणशक्ति को चालितकर वहाँ की गुप्त शक्ति को किस प्रकार ज़ागरित किया जा सकता है, तंत्र तत्त्व के भीतर ये सब रहस्य विवृत किये। तत्पश्चात्, उन सब केन्द्रों में मन स्थिरकर भगवान की अलौकिक शक्ति किस प्रकार प्रत्यक्ष की जा सकती है एवं भगवल्लीला दर्शन करने की योग्यता लाभ की जा सकती है इसकी अति सुन्दररूप से व्याख्या की। कुण्डलिनी जागरण और षट्चक्रभेदादि प्रक्रिया द्वारा इन सब तत्त्वों का सुन्दररूप से समझाने की चेष्टा की। पुराणों के विविध भगवत्-धाम इन्ही यंत्रों की महिमा पर प्रकाश डालते हैं।

कालीपूजा और दुर्गापूजा के समय जो रंग-बिरंगे चित्र बनाये जाते हैं ये सब चित्र हमारे भीतर के विभिन्न यंत्रों के प्रतीक हैं। यंत्र निहित शक्ति को जागरित करने के लिए प्राणप्रतिष्ठा-बोधनादि अनुष्ठान की व्यवस्था है। हमारी पूजा के सब अवयव यंत्र-तंत्र-मंत्र की महिमा का प्रचार करते हैं। बाहर के इन यंत्रादि प्रतीकों के द्वारा भीतर के तत्त्वों में प्रवेश करने की व्यवस्था थी। अब हम भीतर के तात्त्विक भावों और योगप्रणाली को भूलकर केवल प्रतीक में सीमाबद्ध हो गये हैं एवं अनेक समय प्रकृत तत्त्व को विकृत कर देते हैं और कहते हैं कि कलियुग में देवदर्शन, इष्टदर्शनादि असम्भव हैं।

उपर्युक्त विवेचन से मालूम हुआ कि यंत्र हमारे देहस्थ—विशेषतः मेरुदंडस्थ—विभिन्न चक्रविशेष हैं। प्रत्येक चक्र में बीजाकाररूप में साधनराज्य के अनेक तत्त्व छिपे हुए हैं। तंत्र वह प्रणाली है जिसके अवलम्बन द्वारा हम यंत्रों के भीतर की गुप्त शक्ति को प्रकटकर नाना प्रकार की अलौकिक शक्ति की सहायता से सृष्टिरहस्य के—भगवल्लीलारहस्यके—ज्ञान-विज्ञानसम्मत अनेक गूढ़ रहस्यों को जान सकते हैं। यंत्र और तंत्र तत्त्व के स्वरूप को न जानने के कारण हम साधन राज्य के अनेक तत्त्वों से वंचित रहते हैं किन्तु मंत्र तत्त्व का प्रकृत स्वरूप जाने बिना तो साधन-राज्य में प्रवेश करना ही असम्भव है। इसलिए हम मंत्रतत्व के सम्बन्ध में कुछ विस्तारपूर्वक आलोचना करना चाहते हैं। मंत्रतत्त्व का प्रकृत साधक नाम और नामी का अभेद-रहस्य जानकर नामके साथ नामी को प्रत्यक्ष करने की योग्यता प्राप्त करता है। यशोदा के तुल्य मातृस्नेह से परिभावित हो जानेपर गोपाल कहकर पुकारने से ही गोपाल प्रकट होने को बाध्य हैं, यह बात मंत्रसाधक अस्वीकार नहीं कर सकता।

मंत्र—मन धातु के उत्तर ङ् प्रत्ययान्त त्रै धातु जोड़ने से मंत्र शब्द साधित होता है (मन् + त्रै + ङ् = मन्त्र)। "मननात् त्रायते यस्मात् तस्मात् मंत्र उदाहृतः"—जिसके मनन द्वारा, चिन्तन द्वारा, ध्यान द्वारा संसार-सागर से उत्तीर्ण होकर, दुःख-कष्ट से मुक्त होकर, परमानन्द की प्राप्ति होती है उसी का नाम मंत्र है। प्रत्येक मंत्रमें तीन तत्त्व निहित रहते हैं—(१) प्रणव अथवा व्याहृति—परमतत्त्व के निकट जाना, (२) बीज—परमतत्त्व का दर्शन करना, परमतत्त्व को उपलब्ध करना, (३) देवता—लौटते समय अपने सब तत्त्वों को तद्भाव से परिभावित करना। एकाक्षर मंत्र में भी ये तीनों तत्त्व पाये जाते हैं।

'प्रणव'—यह सर्वव्यापी भगवत्तत्त्व को प्रकाशित करता है। प्रणव में शक्तिमान और शक्तितत्त्व के सब रहस्य वर्त्तमान हैं। प्रणव (ॐ) के अकार-उकार-मकार शक्तितत्त्व के, काली-आदि तत्त्व के द्योतक हैं। अर्द्धमात्रा "शान्तं शिवं अद्वैतम्" की महिमा प्रकाश करती है। "अर्द्धेन एकांशेन मीन्यते परिच्छिद्यन्ते अनया इति अर्द्धमात्रा"—जिसके अर्द्ध में (एकांश में) जीवजगत् सीमाबद्ध, परि-

णत अथवा विवर्तित है (एकांशेन स्थितं जगत् इति) । यही पूर्ण अखंड अद्वय तत्त्व अर्द्धमात्रा शब्द का लक्ष्य है । जगत् के सब रहस्य एवं जगत् के अतीत रहस्य, भगवान के विश्वमय एवं विश्वातीत तत्त्व, प्रणव के भीतर निहित हैं । प्रणव के अकार, उकार और मकार के द्वारा हम स्थूल, सूक्ष्म और कारण तत्त्व भेदकर गुणातीत अखण्ड अद्वय तत्पदार्थ के निकट जाने का सुयोग पाते हैं ।

'बीज'—एक वट के बीज के भीतर जैसे एक पूर्ण-परिणत फल-फूलसे सुशोभित वट वृक्षमें परिणत होने की शक्ति निहित है, ठीक उसी प्रकार मंत्र के बीज के भीतर भी व्यक्तिविशेष के अतीत जीवन की कथा, माँ-बाप का इतिहास एवं उसके भविष्य जीवन के पूर्ण परिणति लाभ करने की सम्भावना निहित देखने में आती है ।

'देवतातत्त्व' में किस प्रकार हमारे भीतर की अन्तरेन्द्रिय, बहिरिन्द्रिय एवं देहादि के सब तत्त्वों के द्वारा भगवत्-चैतन्यको पूर्णतया परिणतकर उस विशिष्ट जीव को पुरुषोत्तम में परिणत किया जा सकता है, इसका रहस्य और इसकी सम्भावना निहित रहती है । भगवत्-चैतन्य प्रकृति के सब स्तरों में प्रतिबिम्बित होकर किस प्रकार प्रकाशित होते हैं, किस प्रकार लीला करते हैं, इस विषय का समावेश देवता-तत्त्व में है । देवता को साक्षात् करने का अर्थ है इन सब तत्त्वों में, व्यष्टि-समष्टि भाव में, भगवत्-चैतन्य को अबाधितरूप से प्रस्फुटित करना और उपलब्ध करना, एक शब्दमें साधकका देवमय हो जाना ।

प्रणवके भीतर भगवानका विश्वमय और विश्वातीत रहस्य निहित है । बीज तत्त्वसे मालूम होता है कि हमारा प्रकृत स्वरूप क्या है, हमारा भगवानके साथ क्या सम्बन्ध है, भगवानने किस उद्देश्यसे हमको सृष्ट किया है और हमारे भीतर कौन शक्ति अव्यक्तरूप में निहित हुई व्यक्तित्व लाभ करने की चेष्टा कर रही है । देवतातत्त्व से हम जान सकते हैं कि किस उपाय से हमारे द्वारा भगवान की इच्छा पूर्ण सफलता लाभ करने में समर्थ होगी ।

मन्त्र तत्त्व के साथ शब्द विज्ञान रहस्य, मन्त्र में निहित शक्तितत्त्व एवं उस शक्ति को जागरित करने का रहस्य विचारणीय है । यहाँ विज्ञानानुसार भगवत्-

विधान को जानकर और उसका पालनकर भगवद्विधानपर जय प्राप्त करने की व्यवस्था देखने में आती है—चण्डी का यह श्लोक यहाँ चिन्तनीय है—"यो मां जयति संग्रामे यो मे दर्प व्यपोहति । यो मे प्रतिबलो लोके स मे भर्त्ता भविष्यति" । शब्दविज्ञान रहस्य में शब्दब्रह्म का तत्त्व अर्थात् शब्द की परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी भाव के भीतर कारण, सूक्ष्म, स्थूल और जगत्रूप में आत्मप्रकाशका तत्त्व, निहित है । शब्दके भीतर अचिन्त्य शक्ति निहित रहती है—यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता । सपेरों के उच्चारित मन्त्र द्वारा किस प्रकार विष उतर जाता है, यह यहाँ विचारने योग्य है । यह भी मन्त्रनिहित शक्ति की महिमा का प्रचार करता है । मन्त्रनिहित शक्ति स्वाभाविक प्रणाली द्वारा आत्मप्रकाश करने की चेष्टा करती है यह हम मानने को बाध्य हैं; निमित्त कारण तो केवल शक्ति के प्रकाश में बाधा दूर कर देता है । मन्त्र केवल उच्चारण से भी कुछ लाभ हो जाता है यह स्वीकार करके ही सम्भवत: प्रचलित विश्वास है कि अश्रद्धया उच्चारित मन्त्र भी कुछ काम करता है । अजामिलके नारायण-स्मरण की कथा इसकी साक्षी है । अनजान में विष खा लेने से भी शरीरान्त हो सकता है, गङ्गा की महिमा में विश्वास न करते हुए भी गङ्गास्नान से लाभ हो सकता है, यह हम मानने को बाध्य हैं । किन्तु मन्त्र वैज्ञानिक प्रणाली द्वारा ठीक साधित हो जाने पर अत्यन्त फलदायक होता है इसमें सन्देह नहीं । गुरुदेव किस प्रकार मन्त्र में शक्ति सञ्चारकर शिष्य में शक्तिपात कर देते हैं यह रहस्य भी चिन्तनीय है । मन्त्र की अपनी अन्तर्निहित शक्ति, मन्त्रदाता गुरु की सञ्चारित शक्ति एवं मन्त्र-ग्रहीता साधक की साधन शक्ति, यह प्रधानत: तीनों शक्तियाँ सम्मिलित होकर मन्त्र-सिद्धि की पूर्णता सम्पादन करती हैं । मन्त्र-शक्ति एवं गुरु-शक्ति अनुकूल होने पर भी साधन के बिना सम्यक् फल लाभ नहीं होता । सिद्ध महात्माओं के उच्चारित शब्द में, सिद्ध पुरुषों के प्रदत्त मन्त्र में, प्रभूत शक्ति निहित रहती है—यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता ।

इसके उपरान्त मन्त्र के पुरश्चरण और मन्त्र-चैतन्य का प्रसङ्ग सुनने में आता है । मन्त्र के अर्थ और भाव को देहपुरी के सब तत्त्वों में सञ्चालितकर देहको प्रभावित करने का नाम है 'मन्त्रका पुरश्चरण ।' मन्त्र, मन्त्रका अर्थ और उसके देवता

(अनुभूति) का एकीकरण 'मन्त्र-चैतन्य' कहलाता है । मन्त्र का पुरश्चरण और चैतन्य साधित हुए बिना सिद्धिलाभ नहीं हो सकती यह बात शास्त्र-सङ्गत है ।

"मन्त्रार्थं मन्त्रचैतन्यं यो न ज़ानाति साधकः ।
शतलक्षप्रजप्तोऽसि तस्य मन्त्रो न सिध्यति" ॥

मन्त्रचैतन्य के फलस्वरूप माँ शब्द के उच्चारणमात्र से ही मातृस्नेह साधक को अभिषिक्त कर देता है । साधक तब मातृसान्निध्य अनुभवकर, माँ-मय होकर, मातृमन्त्र की चैतन्य-सम्पादन क्रिया प्रत्यक्ष करता है । भूत के भय से भूत का दर्शन, भूतग्रस्त हो जाना एवं भूत की भाँति बातें करना या काम करना—इस प्रकार के मन्त्र-चैतन्य के दृष्टान्त सुनने में आते हैं । श्रीमन्महाप्रभु नाम और नामी को एक करके मन्त्र उच्चारण करने का उपदेश करते थे । मन्त्र इस प्रकार उच्चारण होना चाहिए जिसके फलस्वरूप मन्त्र के देवता स्वयं आने को बाध्य हों । श्रीकृष्ण जब यशोदा को माँ कहकर पुकारते थे तब यशोदा का इतना सामर्थ्य नहीं रहता था कि बिना आये स्थिर रह सकें । यशोदा के मुखसे गोपाल शब्द ऐसे भावापन्नरूप से निकलता था कि उनके हृदयगोपाल तत्क्षण आकर उपस्थित होते थे । अवश्य विरह-भाव की पुष्टिसाधन के लिए लक्ष्य पदार्थ की प्राप्ति में बिलम्ब होना अलग बात है । हमारा विश्वास है कि मन्त्र यदि शुद्धरूप से उच्चारण किया जाय तो मन्त्र जाग्रत् होकर अपने लक्ष्य पदार्थ को खींचकर ला सकता है । शब्द सुप्रयुक्त होने पर अर्थात् शब्द के वैखरीभाव में यदि उसके सब तत्त्व, पराभाव पर्यन्त, निहित हों तो शब्द अमोघ शक्ति लाभ करता है । हृदय से निकली हुई टेर हृदयगत हुए बिना नहीं रुकती । शब्द जिस स्तर से उच्चारित होता है उसी स्तर तक पहुँचने में समर्थ होता है । देवता का स्वाभाविक नाम ही है मन्त्र; अर्थात् जिस नाम से बुलाने से देवता अनन्तसत्ता के गर्भ से आविर्भूत होकर भक्त की अभिलाषा पूर्ण कर देते हैं—यही देवता का आविर्भाव तत्त्व है । मन्त्र चिच्छक्ति का विशिष्ट प्रकाश है । मन्त्र चैतन्य की घनीभूत मूर्त्ति अथवा देवता का आत्मप्रकाश है । मन्त्र और देवता अभिन्न हैं । बीज ही मूलमन्त्र है—बीज में सब शक्ति निहित है ।

यदि एक अणु में निहित सुप्त शक्ति को जागरितकर अनेक महत् कार्य किये जा सकते हैं, (जैसे—आणविक बम्ब) अर्थात् देहस्थ यन्त्रों में निहित गूढ़ शक्ति को उपयुक्त साधन-प्रणाली द्वारा प्रकट करके कौन सा महत् कार्य नहीं किया जा सकता, यह अस्वीकार करना केवल मूर्खता मालूम पड़ती है। परन्तु यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि अशिक्षित और स्वार्थी लोगों के हाथ में पड़कर, कुप्रयोग के कारण, स्वार्थ सिद्धि के हेतु अतिरञ्जित होकर, साधन-रहस्य ने समाज और देश में अनेक अनर्थ पैदा कर दिये हैं। अप-प्रयोग के लिये संस्कार की आवश्यकता है, विनाश की नहीं। मन्दिर का अपव्यवहार होते देखकर यदि उसका शोधन न करके ध्वंस की व्यवस्था की जाय तो हम वञ्चित हो जायेंगे। मन्त्रसे शक्ति सञ्चार की जा सकती है, यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता। एक ही शब्द विभिन्न व्यक्ति द्वारा विभिन्न भाव से उच्चारित हुआ विभिन्न समय में विभिन्न फल उत्पन्न करता है।

सिद्ध महापुरुषों के मुख से उच्चारित शब्दों में विशेष शक्ति निहित रहती है, इसमें सन्देह नहीं। उच्चारण-प्रणाली के ऊपर भाव-प्रकाश करने की शक्ति अनुभूति जाग्रत् करने की शक्ति, निर्भर करती है, यह भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता। मन्त्र-साधन-प्रणाली का एक चुम्बक रूपी साङ्केतिक चिह्न है। कृष्णादि मन्त्र जपने के फलस्वरूप साधक कृष्णमय हो जाता है इसमें सन्देह नहीं। वर्त्तमान कलियुग में सत्य संकल्पवान लोग दुर्लभ हो गये। ऋषियों द्वारा स्थापित मान्यताओं का अवमूल्यन हो गया। संध्या-वंदन आदि कर्मों के महत्व को भी भुला दिया गया। अतः ऋषि, छन्द, देवता यंत्र-मंत्र-तंत्र-विनियोग के तत्त्व को भी लोग प्रायः भूल गये। इसीलिये ऊपर के लेख में पूजा तत्त्व के इन अङ्गों की शास्त्रीय तथा वैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। आशा है जिज्ञासु अध्येता को यत्किञ्चित् संतुष्टि अवश्य प्राप्त होगी।

सन्ध्योपासना का अर्थ

एवं

तत् सम्बन्धी मंत्रों के ऋषि, छन्द एवं देवता आदि का निर्णय

संध्योपासनामें दो शब्द हैं— संध्या और उपासना। संध्याका प्रायः तीन अर्थोंमें व्यवहार होता है—१.संध्याकाल,२. संध्याकर्म और ३. सूर्यस्वरूप ब्रह्म (परमात्मा)। तीनों ही अर्थोंकि समर्थक शास्त्रीय वचन उपलब्ध होते हैं—

अहोरात्रस्य यः सन्धिः सूर्यनक्षत्रवर्जितः।
सा तु सन्ध्या समाख्याता मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥[१]

(दक्षस्मृति)

—इस वचनमें संध्या शब्दका काल अर्थमें व्यवहार हुआ है।

सन्धौ सन्ध्यामुपासीत नोदिते नास्तगे रवौ।[२] (वृद्ध याज्ञवल्क्य)
'अहरहः सन्ध्यामुपासीत'।[३] (तैत्तिरीय)
तस्माद् ब्राह्मणोऽहोरात्रस्य संयोगे सन्ध्यामुपासते।[४]

(छब्बीसवाँ ब्राह्मण, प्रण.४, खं.५)

—इत्यादि वचनोंमें संध्याके समय किये जानेवाले परमेश्वर के ध्यानरूप प्राणायामादि कर्मोंको ही 'संध्या' बताया गया है। कालवाचक अर्थ में 'सन्ध्योपासना' शब्द का अभिप्राय है—संध्याकालमें की जानेवाली उपासना। दूसरे (कर्मवाचक) अर्थमें प्राणायामादि कर्मोंका अनुष्ठान ही सन्ध्योपासना है। सन्ध्येति

---

[१] सूर्य और नक्षत्रोंसे रहित जो दिन-रातकी संधिका समय है, उसे तत्त्वदर्शी मुनियोंने 'संध्या' कहा है।

[२] सूर्योदय और सूर्यास्तके कुछ पहले संधिवेलामें संध्योपासना करनी चाहियें।

[३] 'प्रतिदिन संध्या करे।'

[४] इसलिये ब्राह्मणोंको दिन-रातकी संधिके समय संध्योपासना करनी चाहिये।

सूर्यगं ब्रह्म (व्याসस्मृति)-इत्यादि वचनोंके अनुसार 'आदित्यमण्डलगत ब्रह्म' ही संध्या शब्दसे कहा गया है। इस तृतीय अर्थमें सूर्यस्वरूप ब्रह्म (परमात्मा) की उपासना ही संध्योपासना है।

यद्यपि आचमनसे लेकर गायत्रीजपपर्यन्त सभी कर्म संध्योपासना ही हैं तथापि ध्यानपूर्वक गायत्रीजप संध्योपासनामें एक विशेष स्थान रखता है। क्योंकि—

पूर्वां सन्ध्यां सनक्षत्रामुपक्रम्य यथाविधि।
गायत्रीमभ्यसेत्तावद् यावदादित्यदर्शनम्॥[५]

इस नरसिंहपुराणके वचनमें गायत्रीजपको ही प्रधानता दी गयी है।

ऋषयो दीर्घसन्ध्यत्वाद्दीर्घमायुरवाप्नुयुः।[६]

इत्यादि मनुवाक्यमें भी 'दीर्घसंध्य' शब्दसे दीर्घकालतक ध्यानसहित गायत्रीजप करने की ओर ही संकेत किया गया है, क्योंकि गायत्रीजप हजारोंकी संख्यामें होनेसे उसमें दीर्घकालतक प्रवृत्त रहना सम्भव है।

सन्ध्योपासना नित्य और प्रायश्चित्त कर्म भी है

—यह संध्योपासना नित्य और प्रायश्चित्त कर्म भी है। 'अहरहः सन्ध्यामुपासीत' (प्रतिदिन संध्योपासना करें) इस प्रकार प्रतिदिन संध्या करनेकी विधि होनेसे तथा—

एतत् सन्ध्यात्रयं प्रोक्तं ब्राह्मण्यं यदधिष्ठितम्।
यस्य नास्त्यादरस्तत्र न स ब्राह्मण उच्यते॥[७] (छान्दोग्यपरिशिष्ट)

---

[५] 'सबेरे जब कि तारे दिखाई देते हों विधिपूर्वक प्रातःसंध्या आरम्भ करके सूर्यके दर्शन होनेतक गायत्रीजप करता रहे।'

[६] ऋषि लोगोंने दीर्घकालतक संध्या करनेके कारण ही दीर्घ आयु प्राप्त की थी।

[७] यह त्रिकालसंध्याकर्मका वर्णन किया गया; जिसके आधारपर ब्राह्मणत्व सुप्रतिष्ठित होता है। इसमें जिसका आदर नहीं है—जो प्रतिदिन संध्या नहीं करता, वह (जन्मसे ब्राह्मण होनेपर भी कर्मभ्रष्ट होनेके कारण) ब्राह्मण नहीं कहा जा सकता।

—इस वचनके अनुसार संध्या न करने से दोष का श्रवण होने के कारण संध्या नित्यकर्म है। तथा—

दिवा वा यदि वा रात्रौ यदज्ञानकृतं भवेत्।
त्रिकालसन्ध्याकरणात् तत्सर्वं च प्रणश्यति॥ (याज्ञवल्क्यस्मृति)

अर्थात् दिन या रातमें अनजाने से जो पाप बन जाता है, वह सब-का-सब तीनों कालकी संध्या करनेसे नष्ट हो जाता है।

—इस वचनके अनुसार पापध्वंस की साधिका होनेसे संध्या प्रायश्चित्त कर्म भी है। द्विजमात्रको यथासम्भव प्रातः, सायं और मध्याह्न—तीनों कालोंकी संध्याका पालन करना चाहिये। कुछ लोगोंका विचार है कि—

नानुतिष्ठति यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम्।
स शूद्रवद् बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः॥[८] (मनु)

इस वचनमें प्रातः और सायं—इन्हीं दो संध्याओंके न करनेसे दोष बताया गया है। अतः प्रातः तथा सायंकालकी संध्या ही आवश्यक है, मध्याह्नकी नहीं। किंतु ऐसा मानना उचित नहीं है, कारण कि इस वचनद्वारा मनुजीने जो उक्त दो कालोंकी संध्या न करनेसे दोष बताये हैं, उससे उक्त समयकी संध्याकी अवश्य कर्तव्यतामात्र सिद्ध हुई। इससे यह नहीं व्यक्त होता कि मध्याह्न-संध्या अनावश्यक है, क्योंकि—

संध्यात्रयं तु कर्तव्यं द्विजेनात्मविदा सदा।[९] (अत्रिस्मृति)

—इत्यादि वचनके अनुसार मध्याह्न-संध्या भी आवश्यक ही है। शुक्लयजुर्वेदियोंके लिये तो मध्याह्न-संध्या विशेष आवश्यक है। आजकल बाजारोंमें 'क्षत्रिय-संध्या' और 'वैश्य-संध्या' के नामसे भी पुस्तकें बिकने लगी हैं, इससे लोगोंमें बड़ा भ्रम फैल रहा है। वैश्य और क्षत्रियोंके लिये कोई अलग संध्या नहीं है। एक ही प्रकारकी संध्या द्विजमात्रके उपयोगके लिये होती है।

---

[८] जो प्रातः और सायं-संध्याका अनुष्ठान नहीं करता, वह सभी द्विजोचित कर्मोंसे शूद्रकी भाँति बहिष्कृत कर देने योग्य है।

[९] आत्मवेत्ता द्विजको सदा त्रिकाल-संध्या करनी चाहिये।

संध्या करने से लाभ

जो लोग दृढ़प्रतिज्ञ होकर प्रतिदिन नियतरूपसे संध्या करते हैं, वे पापरहित होकर अनामय ब्रह्मपदको प्राप्त होते हैं[१०] । सायं-संध्यासे दिनके पाप नष्ट होते हैं और प्रातः - संध्यासे रात्रिके[११] । जो अन्य किसी कर्मका अनुष्ठान न करके केवल संध्याकर्मका अनुष्ठान करता रहता है, वह पुण्यका भागी होता है । परन्तु अन्य सत्कर्मोंका अनुष्ठान करनेपर भी संध्या न करने से पाप का भागी होना पड़ता है[१२] । जो प्रतिदिन स्नान किया करता है तथा कभी संध्याकर्मका लोप नहीं करता, उसको बाह्य और आन्तरिक—दोनों ही प्रकार के दोष नहीं प्राप्त होते, जैसे गरुड़ के पास सर्प नहीं जा सकते[१३]

संध्या न करने से हानि

जो संध्या नहीं जानता अथवा जानकर भी उसकी उपासना नहीं करता, वह जीते-जी शूद्रके समान है और मरनेपर कुत्तेकी योनिको प्राप्त होता है[१४] । जो विप्र संकट प्राप्त हुए बिना ही संध्याका त्याग करता है, वह शूद्रके समान है । उसे प्रायश्चित्त का भागी और लोकमें निन्दित होना पड़ता है[१५] । संध्याहीन द्विज

---

[१०] सन्ध्यामुपासते ये तु नियतं संशितव्रताः ।
विधूतपापास्ते यान्ति ब्रह्मलोकमनामयम् ॥ (यमस्मृति)

[११] पूर्वां सन्ध्यां जपंस्तिष्ठन् नैशमेनो व्यपोहति ।
पश्चिमांतु समासीनो मलं हन्ति दिवाकृतम् ॥ (मनु)

[१२] यस्तु तां केवलां सन्ध्यामुपासीत स पुण्यभाक् ।
तां परित्यज्य कर्माणि कुर्वन् प्राप्नोति किल्विषम् ॥ (याज्ञवल्क्य)

[१३] सन्ध्यालोपस्य चाकर्ता स्नानशीलश्च यः सदा ।
तं दोषा नोपसर्पन्ति गरुत्मन्तमिवोरगाः ॥ (कात्यायन)

[१४] सन्ध्या येन न विज्ञाता सन्ध्या नैवाप्युपासिता ।
जीवमानो भवेच्छूद्रो मृतः श्वा चैव जायते ॥ (याज्ञवल्क्य)

[१५] अनार्तश्चोत्सृजेद् यस्तु स विप्रः शूद्रसम्मितः ।
प्रायश्चित्ती भवेच्चैव लोके भवति निन्दितः ॥ (याज्ञवल्क्य)

अपवित्र होता है। उसका किसी भी द्विजकर्म में अधिकार नहीं है। वह जो कुछ भी दूसरा कर्म करता है, उसका फल भी उसे नहीं मिलता[१६]। जो द्विज समय पर प्राप्त हुए संध्याकर्मका आलस्यवश उल्लङ्घन करता है, उसे सूर्यकी हिंसाका पाप लगता है और मृत्युके पश्चात् वह उल्लू होता है[१७]।

संध्या के लिये उत्तम देश और काल

संध्याके लिये वही स्थान उपयोगी है, जो स्वभावतः पवित्र और एकान्त हो, अपवित्र या कोलाहलपूर्ण स्थानमें मनकी वृत्तियाँ चञ्चल होती हैं और हृदयमें दूषित विचार उठते रहते हैं। एकान्त स्थान एकाग्रतामें सहायक होता है, पवित्र स्थान मनमें पवित्रता लाता है और पवित्र गन्ध तथा पवित्र वायुके संयोगसे स्वास्थ्य भी ठीक रहता है, साथ ही सद्विचारोंका उदय होता है। इसलिये स्थानकी पवित्रताके सम्बन्धमें विशेष ध्यान देना चाहिये। शास्त्रोंमें संध्याके लिये निम्नाङ्कित स्थानोंका निर्देश किया गया है—पुण्यक्षेत्र, नदीका तट, पर्वतोंकी गुहा और शिखर, तीर्थस्थान, नदीसंगम, पवित्र जलाशय, एकान्त बगीचा, बिल्ववृक्षके नीचे, पर्वतकी उपत्यका, देवमन्दिर, समुद्रका किनारा और अपना घर[१८]।

स्थानके ही समान कालकी उत्तमताका भी ध्यान रखना चाहिये। प्रातःकाल सूर्योदयसे पूर्व और सायंकाल सूर्यास्तसे पहले संध्याके लिये उत्तम समय है। श्रुति भी यही कहती है—

'अहोरात्रस्य संयोगे सन्ध्यामुपास्ते सज्योतिषि आज्योतिषो दर्शनात्।'

---

[१६] सन्ध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु।
यदन्यत् कुरुते कर्म न तस्य फलभाग् भवेत्॥ (दक्षस्मृति)

[१७] यः सन्ध्यां कालतः प्राप्तामालस्यादतिवर्तते।
सूर्यहत्यामवाप्नोति ह्युलूकत्वमियात् स च॥ (अत्रि॰)

[१८] पुण्यक्षेत्रं नदीतीरं गुहापर्वतमस्तकम्।
तीर्थप्रदेशाः सिन्धूनां सङ्गमः पावनं सरः॥ (शारदा॰)
उद्यानानि विविक्तानि बिल्वमूलं तटं गिरेः।
देवायतनं कूलं समुद्रस्य निजं गृहम्॥ (आह्निकसूत्रावली)

अर्थात् 'दिन-रातकी संधिके समय संध्योपासना करे। सायंकालमें सूर्यके रहते-रहते संध्या आरम्भ करे और प्रातःकाल सूर्योदयके पहलेसे आरम्भ करके सूर्यके दर्शन होनेतक संध्योपासना करे।'

उपर्युक्त कालसे देर हो जानेपर गौण काल होता है, मुख्य नहीं रहता। मनुस्मृतिके अनुसार प्रातः संध्यामें काल-विभाग यों समझना चाहिये,—सूर्योदयसे पूर्व जबतक तारे दिखायी देते रहें, उत्तम काल है। ताराओंके छिपनेसे लेकर सूर्योदयकालतक मध्यम है, सूर्योदयके पश्चात् अधम काल है[१९]। इसी प्रकार जब सूर्य दिखाई देते रहें, उस समय की हुई सायं-संध्या उत्तम होती है। सूर्यास्त के बाद ताराओंके उदयसे पहले की हुई संध्या मध्यम श्रेणीकी है और ताराओंके उदयके पश्चात् की हुई संध्या निम्न श्रेणीकी समझी जाती है। यह सायं-संध्याका कालविभाग है।[२०]

प्रातः संध्यामें सूर्योदयके पश्चात् दो घड़ीतक गौणोत्तमकाल माना गया है और सायं-संध्यामें सूर्यास्तसे तीन घड़ी बाद तक गौणोत्तम काल है[२१]। इसी तरह प्रातः काल सूर्योदयके बाद और सायंकाल सूर्यास्तके बाद चार घड़ीतक गौण मध्यम काल माना गया है[२२]। गौण मध्यम कालतक यदि संध्या हो जाय तो काललोपके लिये प्रायश्चित्त नहीं करना पड़ता। इससे अधिक देर होनेपर कालातिक्रमणका प्रायश्चित्त करना चाहिये। प्रायश्चित्त इस प्रकर है—'ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्। ॐ आपोज्योती

---

[१९] उत्तमा तारकोपेता मध्यमा लुप्ततारका।
अधमा सूर्यसहिता प्रातः संध्या त्रिधा स्मृता॥ (मनु.)

[२०] उत्तमा सूर्यसहिता मध्यमा लुप्तभास्करा।
अधमा तारकोपेता सायंसन्ध्या त्रिधा स्मृता॥ (मनु.)

[२१] सायंकाले त्रिघटिका अस्तादुपरि भास्वतः।
प्रातःकाले द्विघटिके तत्र सन्ध्या समाचरेत्॥ (स्मृति-संग्रह)

[२२] चतस्रो घटिकाः सायं गौणकालोऽस्ति मध्यमः।
प्रातः कालेऽप्येवमेव सन्ध्याकालो उदीरितः॥ (स्मृति-संग्रह)

रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्।' यह मन्त्र पढ़कर सूर्यको चौथा अर्घ्य देना चाहिये[२३] (तीन अर्घ्य तो नित्य दिये ही जाते हैं)। दिनका पाँच भाग करनेपर तीसरा और चौथा भाग मध्याह्नकालकी संध्याके लिये मुख्य है[२४]। साधारणतया सूर्योदयके बाद अपराह्न कालतक मध्याह्न-संध्याका समय है। मध्याह्न-संध्या करनेवाले को प्रातः-संध्याके पश्चात् तुरंत भोजन नहीं करना चाहिये। ठीक समयपर मध्याह्न-संध्याका नियम पूरा करके ही करना उचित है। स्मृतिका वचन है—

स्नानसन्ध्यातर्पणादि जपहोमसुरार्चनम्।
उपवासवता कार्यं सायंसन्ध्याहुतीर्विना॥

केवल सायंसंध्या और सायंकालिक अग्निहोत्रके सिवा जो भी स्नान, संध्या,तर्पण आदि तथा जप, होम और देवार्चन आदि कार्य हैं, उनका भोजनके पहले ही अनुष्ठान करना चाहिये।

—इस वचनके अनुसार मध्याह्न-संध्या भोजनके पहले ही की जानी चाहिये। यदि कभी एकादशीव्रतका पारण द्वादशीमें करना हो और द्वादशी सूर्योदयके बाद बहुत ही कम रह गयी हो तो प्रातः और मध्याह्न-संध्या उषः कालमें ही कर लेनी चाहिये।[२५]

कर्मलोपका प्रायश्चित्त

संध्याकर्मके निश्चित कालका लोप हो जानेपर भी प्रायश्चित्त करना पड़ता है, फिर कर्मका लोप होनेपर तो कहना ही क्या है। कर्मका लोप तो कभी होना ही नहीं चाहिये। यदि कभी हो गया तो उसका स्मृतिके अनुसार प्रायश्चित्त कर

---

[२३] गायत्रीं शिरसा सार्धमुक्त्वा व्याहृतिभिः सह।
कालातीतविशुद्ध्यर्थं चतुर्थार्घ्यं प्रदापयेत्॥ (मदनपारिजात)

[२४] मध्याह्नेतु— 'अध्यर्घयामादासायं सन्ध्या माध्याह्निकीष्यते' इति दक्षवचनेन पञ्चधा विभक्त दिवस्य तृतीयभागादारभ्य पञ्चमभागारम्भपर्यन्तं तत्कालो मुख्यः।
(कातीयनित्यकर्मपद्धति पृष्ठ १८)

[२५] यदा भवति चाल्पापि द्वादशी पारणादिने।
उषः काले द्वयं कुर्यात् प्रातर्मध्याह्निकं तदा॥ (मत्स्यपुराण)

लेना उचित है। प्रायश्चित्त के विषय में जमदग्निका मत इस प्रकार है—यदि प्रमादवश एक दिन संध्याकर्म नहीं किया गया तो उसके लिये एक दिन-रातका उपवास करके दस हजार गायत्री का जप करना चाहिये[२६]। शौनकमुनि तो यहाँतक कहते हैं कि यदि किसीके द्वारा प्रमादवश सात राततक संध्या-कर्मका उलङ्घन हो जाय अथवा जो उन्माद-दोषसे दूषित हुआ रहा हो, उस द्विजका पुनः उपनयन-संस्कार करना चाहिये[२७]। यदि निम्नाङ्कित कारणोंसे विवश होकर कभी संध्याकर्म न बन सका तो उसके लिये प्रायश्चित्त नहीं करना पड़ता। राष्ट्रका ध्वंस हो रहा हो, राजाके चित्तमें क्षोभ हुआ हो अथवा अपना शरीर ही रोगग्रस्त हो जाय या जननमरणरूप अशौच प्राप्त हो जाय— इन कारणों से संध्याकर्ममें बाधा पड़े तो उसके लिये प्रायश्चित्त नहीं है[२८]।

परंतु ऐसे समयमें भी मन-ही-मन मन्त्रोंका उच्चारण करके यथासम्भव कर्म करना आवश्यक है। अभिप्राय यह कि मानसिक संध्या कर लेनी चाहिये। संध्या नित्यकर्म है, अतः उसका अनुष्ठान जैसे भी हो,होना ही चाहिये। अकारण उसका त्याग किसी भी तरहसे क्षम्य नहीं है। यदि परदेशमें यात्रा करनेपर किसी समय प्रातःसायं या मध्याह्न-संध्या नहीं बन पड़ी तो पूर्वकालके उल्लङ्घनका प्रायश्चित्त अगले समयकी संध्यामें पहले करके फिर उस समयका कर्म आरम्भ करना चाहिये[२९]। दिनमें प्रमादवश लुप्त हुए दैनिक कृत्यका अनुष्ठान उसी दिनकी रातके पहले पहरतक अवश्य कर लेना चाहिये[३०]।

---

[२६] एकाहं समतिक्रम्य प्रमादादकृतं यदि ।
अहोरात्रोषितो भूत्वा गायत्र्याश्चायुतं जपेत् ॥ (जमदग्नि)

[२७] सन्ध्यातिक्रमणं यस्य सप्तरात्रमपि च्युतम् ।
उन्मत्तदोषयुक्तो वा पुनः संस्कारमर्हति ॥ (शौनक)

[२८] राष्ट्रभङ्गे नृपक्षोभे रोगार्ते सूतकेऽपि वा ।
सन्ध्यावन्दनविच्छित्तिर्न शेषाय कथञ्चन ॥ (जमदग्नि)

[२९] कालातीतेषु सर्वेषु प्राप्तवस्तूत्तरेषु च ।
कालातीतानि कृत्यैव विदध्यादुत्तराणि तु ॥

[३०] दिवोदितानि कृत्यानि प्रमादादकृतानि वै ।
शर्वर्याः प्रथमे भागे तानि कुर्याद्यथाक्रमम् ॥ (नागदेव)

अशौच में संध्योपासन का विचार

जननाशौच अथवा मरणाशौचमें मन्त्रका उच्चारण किये बिना ही प्राणायाम करना चाहिये तथा मार्जन-मन्त्रोंका मन-ही-मन उच्चारण करते हुए मार्जन कर लेना चाहिये। गायत्रीका स्पष्ट उच्चारण करके सूर्यको अर्घ्य दे। मार्जन करे या न करे, परंतु उपस्थान तो नहीं ही करना चाहिये[३१]। मानसिक संध्याका भी स्वरूप यही है। यह आरम्भसे अर्घ्यके पहलेतक ही की जाती है, इसमें कुश और जलका उपयोग नहीं होता[३२]। गायत्री-मन्त्रका उच्चारण करके जो अर्घ्य देनेकी बात कही गयी है, उसमें जलका उपयोग आवश्यक है अर्थात् अशौचावस्थामें भी सूर्यको जलसे अर्घ्य देना ही चाहिये[३३]। जलके अभावमें धूलिसे अर्घ्य करना चाहिये। जलके अभावमें या बहुत लम्बी यात्राके समय अथवा कैदमें पड़ जानेपर या अशौच-अवस्थामें दोनों कालोंकी संध्याके समय धूलिसे भी अर्घ्य देना बताया गया है[३४]। संध्याकालमें आपत्तिग्रस्त या अशौचयुक्त पुरुष को भी कम-से-कम दस-दस बार गायत्री-मन्त्रका जप करना चाहिये[३५]।

यदि बालक उत्पन्न होकर नालच्छेदके बाद गतायु हो जाय तो उसका मरणाशौच तो नहीं रहता, किंतु जननाशौच निवृत्त नहीं होता अर्थात् पूरे १०

---

३१. सूतके मृतके वापि प्राणायाममन्त्रकम् ।
तथा मार्जनमन्त्रास्तु मनसोच्चार्य मार्जयेत् ॥
गायत्रीं सम्यगुच्चार्य सूर्यायार्घ्यं निवेदयेत् ।
मार्जनं तु न वा कार्यमुपस्थानं न चैव हि ॥ (आह्निकसूत्रावली)

३२. अर्घ्यान्ता मानसी सन्ध्या कुशवारिविवर्जिता । (निर्णयसिन्धु)

३३. सूतकेतु सावित्र्याञ्जलिं प्रक्षिप्य प्रदक्षिणं कृत्वा सूर्यं ध्यायन्नमस्कुर्यात्।
(मिताक्षरा में जैमिनि का मत)

३४. जलाभावे महामार्गे बन्धने त्वशुचावपि ।
उभयोः सन्ध्ययोः काले रजसा वार्घ्यमुच्यते ॥ (आह्निकसूत्रावली)

३५. आपन्नश्चाशुचिः काले तिष्ठन्नपि जपेद्दश । (आचारमयूख)

दिनका सूतक रहता है[३६]। जो बालक दाँत निकलनेके पहले देह त्याग कर दे, उसका मरणाशौच तत्काल निवृत्त हो जाता है। दाँत निकलनेसे लेकर चूडाकर्म के पहले तक एक राततक अशौच रहता है, चूडाकर्म के बाद जनेऊ के पहले तक तीन रात तक और जनेऊके बाद दस राततक अशौच रहता है[३७]।

संध्या-मन्त्रोंके अर्थ-ज्ञानकी आवश्यकता

संध्या-मन्त्रोंके अर्थको जानकर की हुई संध्या बलवती होती है, उससे पूर्ण लाभ होता है। यजुःसर्वानुक्रमसूत्रमें ऋषि आदिके निरूपणका प्रकरण आरम्भ करके कहा गया है—'अथविज्ञायैतानि योऽधीते तस्य वीर्यवदथ योऽर्थवित्तस्य वीर्यवत्तरं भवति जपित्वा हुत्वेष्ठ्वा तत्फलेन युज्यते' (यजुःसर्वा. १/१) अर्थात् 'जो इन मन्त्रोंके ऋषि, छन्द, देवता आदिको भलीभाँति जानकर इनका अध्ययन करता है, उसका वह अध्ययन बलवान होता है और जो मन्त्रोंका अर्थ समझकर अध्ययन करता है, उसका अध्ययन अधिक बलवान होता है तथा उस मन्त्रसे जप, हवन और यजन करनेसे वह उसके फलको प्राप्त कर लेता है।'

इसलिये प्रत्येक द्विजको संध्याके मन्त्रोंका अर्थ समझ लेनेका प्रयत्न करना चाहिये। प्रस्तुत पुस्तकमें प्रत्येक मन्त्रका अर्थ दिया हुआ है।

संध्यामें दिशाका विचार

स्मृतियोंके अनेक वचनों का समन्वय करनेपर यही निश्चय होता है कि तीनों कालोंकी संध्या पूर्वाभिमुख होकर करनी चाहिये[३८]। ईशान कोण[३९]तथा

---

[३६] यावन्न छिद्यते नालं तावन्नाप्नोति सूतकम्।
छिन्ने नाले ततः पश्चान्मृतकं तु विधीयते॥ (मिताक्षरामें जैमिनिका मत)

[३७] आदन्तजन्मनः सद्य आचूडान्नैशिकी स्मृता।
त्रिरात्रमात्रतादेशाद्दशरात्रमतः परम्॥ (याज्ञवल्क्यस्मृति ३।२३)

[३८] प्राङ्मुखः सततं विप्रः सन्ध्योपासनमाचरेत्। (कूर्मपुराण,उत्तरार्द्ध१८/२७)

[३९] ऐशान्याभिमुखो भूत्वा शुचिः प्रयतमानसः॥ (आचारादर्श)

उत्तर दिशाकी ओर मुँह करके भी त्रिकालसंध्या की जा सकती है, किंतु यह ध्यान अवश्य रखना चाहिये कि अर्घ्य, उपस्थान और जप—सूर्यकी ओर ही मुँह करके किये जायँ। सारांश यह कि प्रातः-संध्याका तो समस्त कार्य पूर्वाभिमुख होकर ही करना चाहिये। परंतु मध्याह्न-संध्या और सायं-संध्यामें अर्घ्य, उपस्थान और जप—सूर्य जिस दिशामें हों, उधर ही मुँह करके करे तथा शेष आचमन आदिकर्म अपनी सुविधाके अनुसार पूर्व, ईशान या उत्तरकी ओर मुँह करके करे। किंतु दक्षिण और पश्चिमकी ओर मुँह करके आचमन नहीं करना चाहिये।

याज्ञवल्क्यस्मृतिमें कहा है कि द्विज नित्य शुद्ध स्थानपर बैठकर उत्तराभिमुख अथवा पूर्वाभिमुख हो दोनों हाथोंको जानुओं के भीतर करके दाहिने हाथसे ब्राह्मतीर्थसे आचमन करे[४१]।

कुशपवित्र-धारण

स्नान, दान, जप, होम, स्वाध्याय, संध्योपासन, पितृ-कार्य और अभिवादनमें दोनों हाथोंमें कुश धारण करना चाहिये[४२]। बायें हाथमें कुश और दायें हाथमें पवित्रक धारण करना चाहिये[४३]। जो द्विज दोनों हाथोंमें कुश धारण करके आचमन करता है, उसका फल सोमपान है। इस प्रकार आचमन करके वह सोमपानका फल प्राप्त करता है।[४३ क]

---

[४०] प्रक्षालितपाणिपादः शुचौ देशे उपविश्य नित्यं बद्धशिखी यज्ञोपवीती प्रागुदङ्मुखो वा भूत्वा जान्वोर्मध्ये करौ कृत्वाऽशूद्रानीतोदकैर्द्विजातयो यथाक्रमं हृत्कण्ठतालुगैराचमन्ति। (कात्यायनोक्त गृह्यपरिशिष्ट शौचसूत्र)

[४१] अन्तर्जानुः शुचौ देशे उपविष्ट उदङ्मुखः ।
प्राग्वा ब्राह्मेण तीर्थेन द्विजो नित्यमुपस्पृशेत् ॥
(याज्ञवल्क्यस्मृति १।१७)

[४२] स्नाने दाने जपे होमे स्वाध्याये पितृकर्मणि ।
करौ सदर्भौ कुर्वीत तथा सन्ध्याभिवादने ॥ (आह्निकसूत्रावली)

[४३] सव्यः सोपग्रहः कार्यो दक्षिणः सपवित्रकः । (कात्यायनस्मृति ११।३)

[४३क] उभयत्रस्थितैर्दर्भैः समाचामयत यो द्विजः ।
सोमपानं फलं तस्य भुक्त्वा यज्ञफलं भवेत् ॥ (आह्निकसूत्रावली)

उपर्युक्त वचनोंसे कुश धारणका महत्व स्पष्ट होता है। विधानतः यहाँतक बताया जाता है कि किस हाथमें कितने कुश धारण करने चाहिये। सुमन्तका वचन है—दायें हाथमें दो कुशोंकी बनी हुई पवित्री धारण करे, उन दोनों कुशोंके मूल और अग्रभाग तो रहें, गर्भ निकाल देना चाहिये। बायें हाथमें तीन कुश धारण करे— सभी कार्योंमें यही नियम है[४४]। पवित्रकयुक्त हाथसे ही आचमन करना चाहिये। आचमनसे पवित्रक उच्छिष्ट (जूठा) नहीं होता, परंतु भोजनकालमें धारण किये हुए पवित्रकको तो भोजनके पश्चात् अवश्य त्याग देना चाहिये[४५]। कुशका पवित्रक न मिलनेपर काशका पवित्रक बना लेना चाहिये; क्योंकि काश भी कुशके ही समान है। यदि काश भी न मिल सके तो अन्य दर्भोंसे काम लेना चाहिये[४६]। कुश, काश, शर (मूंज), दूब, जौ, गैहूँ के पौधे, बल्वज (बगई), सोना, चाँदी तथा ताँबा— ये दस प्रकारके दर्भ होते हैं[४७]। सोने, चाँदी या ताँबेकी अँगूठी बनवाकर पहन लेने से वह सदा ही पवित्रकका काम देती है और उसके उच्छिष्ट होनेका भी भय नहीं रहता।

शिखाबन्धन तथा यज्ञोपवीतधारण

संध्या आरम्भ करनेके पूर्व गायत्रीमन्त्रके उच्चारणपूर्वक शिखा बाँध लेनीं चाहिये। सदा ही यज्ञोपवीत धारण किये रहना आवश्यक है। जिसकी शिखा बँधी न हो तथा जो यज्ञोपवीतसे रहित हो गया हो वह जो कुछ भी पुण्य-कर्म

---

[४४] समूलाग्रौ विगर्भौ तु कुशौ द्वौ दक्षिणे करे।
सव्ये चैव तथा त्रीन्वै विभृयात् सर्वकर्मसु ॥ (सुमन्त)

[४५] सपवित्रेण हस्तेन कुर्यादाचमनक्रियाम्।
नोच्छिष्टं तत्पवित्रं तु भुक्तोच्छिष्टं तु वर्जयेत् ॥ (कात्यायन)

[४६] कुशाभावे तु काशाः स्युः काशाः कुशसमाः स्मृताः।
काशाभावे गृहीतव्या अन्ये दर्भा यथोचिताः ॥

[४७] कुशाः काशाः शरा दूर्वा यवगोधूमबल्वजाः।
सुवर्णं राजतं ताम्रं दस दर्भाः प्रकीर्तिताः ॥ (कातीयभाष्य)

करता है, नहीं के बराबर हो जाता है[४८]। यदि मन्त्रके बिना ही शिखा बाँधी गयी तो उस दशामें भी किया हुआ जप-होम आदि सफल नहीं होता, इसलिये ॐकार और गायत्री-मन्त्रका स्मरण करके ही शिखा बाँधनी चाहिये[४९]। श्रौत और स्मार्त कर्मोंमें दो यज्ञोपवीत धारण करने चाहिये। यदि उत्तरीय वस्त्र (चादर या गमछा) न हो तो उसके लिये एक और (कुलतीन) यज्ञोपवीत धारण करना उचित है[५०]।

भगवत् स्मरण और आसनशुद्धि

शिखा-बन्धनके पश्चात् भगवानका स्मरण करना चाहिये। इससे बाह्य एवं अन्तःकरणकी शुद्धि होती है। प्रत्येक कर्मके आरम्भमें भगवान् पुण्डरीकाक्षका स्मरण बड़ा ही मङ्गलदायक है[५१]। संध्यामें आसनशुद्धि परम आवश्यक क्रिया है। इसके अन्तर्गत कई बातें हैं। कुशादि आसनों की शुद्धि, सिद्धासन आदि आसनोंकी शुद्धि और अङ्गोंका यथास्थान स्थापन। कुशादि आसनोंकी शुद्धिका प्रकार यह है। समभूमिपर आसन बिछावे। कुश और कम्बल, वस्त्र आदिमेंसे कोई भी आसन होना चाहिये। अथवा ये दोनों ही हों तो और अच्छा है। 'पृथ्वि त्वया' इस मन्त्रसे आसनको जलसे अभिषिक्त करके दायें हाथसे उसका स्पर्श करना चाहिये।

इस प्रकार उक्त मन्त्रके द्वारा जगद्धात्री माता पृथ्वीकी प्रार्थनापूर्वक आसनका स्पर्श करनेसे आसन शुद्ध होता है। तत्पश्चात् उस शुद्ध हुए आसनपर बैठना

---

[४८] सदोपवीतिना भाव्यं सदा बद्धशिखेन तु ।
विशिखो व्युपवीतश्च यत्करोति न तत्कृतम् ॥

[४९] अमन्त्रो दीयते ग्रन्थिर्जपो होमो वृथा भवेत् ।
स्मृत्वोङ्कारं च गायत्री निबध्नीयाच्छिखां ततः ॥ (नागदेव)

[५०] यज्ञोपवीते द्वे धार्ये श्रौते स्मार्ते च कर्मणि ।
तृतीयमुत्तरीयार्थं वस्त्राभावे तदीष्यते ॥ (विश्वामित्रकल्प)

[५१] सर्वमङ्गलमङ्गल्यं वरेण्यं वरदं विभुम् ।
नारायणं नमस्कृत्य सर्वकर्माणि कारयेत् ॥

चाहिये। उसपर बैठे हुए साधकको भगवान के साथ अपने सम्बन्धका अनुभव होता है। मन्त्र जप के समय अथवा वृत्तियों को एकाग्र करते समय शरीर के अन्दर एक प्रकार की विद्युत्-शक्ति आविर्भूत होती है, जो शरीर और मनको स्वस्थ बनाती है। यदि शरीर और पृथ्वी के बीच कोई आसन न रखा जाय तो वह विद्युत्-शक्ति पृथ्वीके आकर्षण से खिंच जायगी और इससे शरीर तथा मन—दोनोंके ही स्वास्थ्य-नाश की आशङ्का रहेगी। इसलिये शास्त्रोंमें आसनपर बड़ा जोर दिया गया है।

आसनपर बैठनेमें दो बातोंका ध्यान रखना चाहिये। एक तो सिद्धासन, स्वस्तिकासन और पद्मासन आदिमेंसे कोई आसन होना चाहिये और दूसरी यह कि हाथ, पैर, सिर आदि यथास्थान ही रहना चाहिये। जप आदि करते समय पैरके तलुओंका, गुह्य स्थानोंका स्पर्श निषिद्ध है। पीठका रीढ़ सीधा होना चाहिये। शरीर, गला और सिर भी सम स्थितिमें ही होने चाहिये। मन्त्रोंके उच्चारणके समय नस-नाड़ियोंका और शरीरके सूक्ष्म अवयवोंका परस्पर आघात-प्रत्याघात होता है, जिससे शरीरके अवयवोंमें भी परिवर्तन होता है और शक्तिका विकास तथा प्रसार भी होता है। कोई नस-नाड़ी टेढ़ी रहे अथवा हाथ आदि रख देनेके कारण उसके प्रवाहमें बाधा पड़े तो उन क्रियाओंसे उतना लाभ नहीं होता। इसलिये संध्या अथवा ध्यान करते समय शरीरको सीधा तथा स्थिर रखना बहुत ही आवश्यक है।

आचमन

पूर्वोक्तरूपसे आसनपर बैठकर शुद्ध जलसे आचमन करना चाहिये। आचमन संध्याका एक मुख्य अङ्ग है और यह भिन्न-भिन्न मन्त्रोंसे कई बार किया जाता है। आचमनसे मानसिक उत्तेजना शान्त होती है। इन्द्रियों के धोनेसे, कुल्ला करनेसे एवं पानी पीनेसे काम, क्रोध आदि विकारोंको बहुत कुछ शान्त होते देखा गया है। आचमनके मन्त्रोंपर विचार करनेसे मालूम होता है कि वे विभिन्न प्रकारके दोषोंको दूर करनेकी प्रार्थनाएँ हैं। मन्त्रार्थ-भावनापूर्वक आचमन करनेसे दोषोंके दूर होने और ध्यान लगनेमें बहुत बड़ी सहायता मिलती है। कात्यायनसूत्रमें

आचमनकी विधि इस प्रकार लिखी है—हाथ-पैर धोकर, पवित्र स्थानमें बैठ, शिखा बाँधकर, यज्ञोपवीत धारण किये हुए ही पूर्व या उत्तर दिशाकी ओर मुख करके आचमन करना चाहिये । उस समय हाथ घुटनोंके बाहर न रहे । आचमनका जल सर्वथा शुद्ध हो । उसमें फेन या बुलबुले आदि न हों । ब्राह्मण उतने ही जलसे एक आचमन करे जितना हृदयतक पहुँच सके । क्षत्रियको कण्ठतक पहुँचने लायक जलसे एक आचमन करना चाहिये । वैश्य तालु मात्रतक पहुँचने योग्य जलसे एक आचमन करे । ओष्ठ खुले न रखे । आचमनका जल लेते समय हाथ की उङ्गलियाँ सटी रहें, अङ्गुष्ठ-कनिष्ठिका अलग रहें । खड़ा होकर या हँसते हुए आचमन न करे । ब्राह्मतीर्थसे तीन बार आचमन करके अँगूठेके मूलसे दो बार ओठोंको पोंछे, फिर हाथ धो ले । अँगूठेका मूल ब्राह्मतीर्थ है । पहले आचमनसे ऋग्वेद, दूसरेसे यजुर्वेद और तीसरेसे सामवेदकी तृप्ति होती है, आचमनसे जो जल चूकर गिरता है, उससे नाग-यक्ष आदि तृप्त होते हैं । इसके बाद मध्यमा-अनामिका अङ्गुलियोंसे मुख-नासिकाका, तर्जनी-अँगूठेसे नेत्रोंका, अनामिका-अँगूठेसे कानोंका, कनिष्ठिका-अँगूठेसे नाभिका, हाथसे हृदय का तथा सब अङ्गुलियोंसे मस्तक एवं बाहुओंका स्पर्श करना चाहिये ।

यह आचमन संध्या-संकल्पसे पहलेका है । इसमें तीन बार आचमन करते समय क्रमशः 'ॐ केशवाय नमः स्वाहा, ॐ नारायणाय नमः स्वाहा, ॐ माधवाय नमः स्वाहा'—इन तीन मन्त्रोंका उच्चारण करना चाहिये । फिर अन्तमें 'ॐ गोविन्दाय नमः' इस मन्त्रका उच्चारण करके हाथ धो लेना चाहिये । इसके बाद संध्यामें मन्त्र-आचमन भी होता है, वहाँ एक बार मन्त्र पढ़कर एक ही बार आचमन करना चाहिये, क्योंकि यागादि कर्मोंमें जहाँ-जहाँ श्रौत आचमन है, सर्वत्र एक ही बार आचमन किया जाता है । जो लोग तीन बार आचमन करते हैं, उन्हें भी मन्त्रपाठ एक ही बार करना चाहिये[५२] । यदि कर्ममें प्रवृत्त होने पर विप्र (द्विजमात्र) को छींक

---

[५२] ५२. एकद्रव्ये कर्मावृत्तौ सकृन्मन्त्रवचनम् कृतत्वात् । (का. सू.)
अत्र पानव्यक्तिभेदेऽपि आचमनकर्मण एकत्वान्न प्रतिजलपानमावृत्तिः ॥

आदि आ जाय तो उसके लिये जलाभावमें आचमनकी जगह दायें कानके स्पर्शका भी विधान है, क्योंकि विप्रके दक्षिण कानमें देवताओंका निवास माना जाता है[५३]।

यहाँ विनियोगके सम्बन्धमें एक बात ध्यान देनेकी है। आजकल विनियोग पढ़कर जल छोड़नेकी परिपाटी चल रही है, किंतु जल छोड़नेका शास्त्रों में कही विधान नहीं मिलता, उनमें तो ऋषि आदिके स्मरणका ही महत्त्व बताया गया है। इसलिये विनियोगका पाठमात्र ही करना चाहिये, जल छोड़नेकी आवश्यकता नहीं है।

प्राणायाम

प्राणायाम संध्या-कर्मका एक प्रधान अङ्ग है। इसके अभ्यास से प्राणशक्ति का विकास होता है। प्राणशक्ति के अपव्ययसे प्राणी रोंग और अकालमृत्युके शिकार होते हैं। प्राणायामके द्वारा प्राणवायुका निरोध होने से प्राणशक्तिका आयाम— विस्तार होता है। प्राणक्रियाके अनियन्त्रित हो जानेके कारण ही जीवनके बहुत-से अङ्ग बेकार— निकम्मे हो गये हैं। प्राणायामके द्वारा क्रियाशक्ति नियन्त्रित की जाती है। वे नस-नाड़ियाँ जो वायुसंचार न होनेके कारण अनेक प्रकारके रोगोंका उद्गम बन रही हैं। पुनः अपना काम ठीक-ठीक करने लग जाती हैं। शास्त्रोंमें कहा गया है कि मन, प्राण और वीर्य— ये तीनों एक ही वस्तु हैं। तीनोंमेसे एकको वशमें कर लिया जाय तो शेष दो अपने आप वशमें हो जाते हैं। जिसने प्राण वशमें कर लिये, उसका मन वशमें हो गया और उसका वीर्य भी स्थिर हो गया। मनकी स्थिरतासे लौकिक पारलौकिक लाभ सुनिश्चित हैं।

---

[५३] श्रुते निष्ठीवने चैव दन्तोच्छिष्टे तथानृते ।
पतितानां च सम्भाषे दक्षिणं श्रवणं स्पृशेत् ॥
अग्निरापश्च वेदाश्च सोमः सूर्योऽनिलस्तथा ।
सर्वे देवाश्च विप्रस्य कर्णे तिष्ठन्ति दक्षिणे ॥

अर्थात् छींकने और थूकनेपर, दाँतके उच्छिष्टसे सम्पर्क हो जानेपर अथवा भूलसे झूठ बोले जानेपर या पतित पुरुषोंके साथ बातचीत होनेपर अपने दायें कान का स्पर्श करें। क्योंकि विप्रके दायें कानमें अग्नि, जल, वेद, सोम, सूर्य और वायु—ये सभी देवता वास करते हैं।

वैज्ञानिक दृष्टिसे प्राणायामका बहुत बड़ा महत्त्व है। फेफड़ेमें सात करोड़ कई लाख छोटे-छोटे छिद्र माने जाते हैं, उनके द्वारा समस्त शरीरमें रक्तका प्रसार होता है। प्राणायाम करनेसे जो वायु रुककर भीतर जाती है, वह बड़े वेगसे फेफड़े में प्रवेश करती है। इससे उन छिद्रोंमें जो मल आदि ठहरे होते हैं, वे दूर हो जाते हैं और रुधिर भी वहाँ से शुद्ध होकर संचरित होता है। अतः अपनी वास्तविक उन्नतिकी इच्छा रखनेवालोंको पूर्ण तत्परतासे प्राणायामका अभ्यास करना चाहिये। प्राणायामकी विधि इस प्राकार है— अँगूठेसे नासिकाके दक्षिण छिद्रको दबाकर बायेंसे श्वासको खींचे और ध्यानपूर्वक प्राणायाम-मन्त्रका तीन बार पाठ कर जाय। फिर अनामिका और कनिष्ठिका अङ्गुलियोंसे नासिका के बायें छिद्रको भी मूँद ले और पुनः ध्यानपूर्वक तीन बार प्राणायाम-मन्त्रका पाठ कर जाय। इसके पश्चात् नासिकाके दाहिने छिद्रसे अँगूठा हटा ले और उससे धीरे-धीरे तबतक श्वास छोड़ता रहे, जबतक ध्यानपूर्वक प्राणायाम-मन्त्रका तीन बार पाठ न कर जाय। यदि तीन बार मन्त्र न जपा जा सके तो एक ही बार जपना चाहिये। श्वास खींचनेकी क्रियाको पूरक, रोकनेको कुम्भक और निकालनेको रेचक कहते हैं। पूरक करते समय नील-कमल-दलके समान श्यामसुन्दर चतुर्भुज भगवान् विष्णुका नाभिदेशमें ध्यान करे। कुम्भक करते समय भगवानकी नाभिसे प्रकट हुए कमलके आसनपर विराजमान अरुण-गौर-मिश्रित वर्णवाले चतुर्मुख ब्रह्माजीका हृदयदेशमें ध्यान करे तथा रेचक करते समय शुद्ध स्फटिकके समान श्वेत वर्ण त्रिनेत्र महादेवजीका ललाटमें ध्यान करे। कुछ लोग पूरकमें ब्रह्मा, कुम्भकमें विष्णु और रेचकमें शिवका ध्यान करना बतलाते हैं। पर आह्निकप्रकाशमें याज्ञवल्क्य, पारिजात और रत्नाकर आदिके वचनों का उल्लेख करके पूर्वोक्त पक्षको ही सिद्धान्त माना है[५४]। कुछ लोग पहले

---

[५४] नीलोत्पलदलश्यामं नाभिदेशे प्रतिष्ठितम् ।
चतुर्भुजं महात्मानं पूरकेणैव चिन्तयेत् ॥
कुम्भकेन हृदिस्थाने ध्यायेच्च कमलासनम् ।
ब्रह्माणं रक्तगौराङ्गं चतुर्वक्त्रं पितामहम् ॥

वाम नासिकाको ही दबाकर दायीं नासिकासे पूरक करते हैं; परंतु आह्निक-प्रकाशमें यजुर्वेदीके लिये पूर्वोक्त प्रकारका ही समर्थन किया गया है।

मन्त्राचमन

प्रातःसंध्यामें 'सूर्यश्च...' मध्याह्न-संध्यामें 'आपः पुनन्तु' और सायं-संध्यामें 'अग्निश्च' इत्यादि मन्त्रसे आचमन किया जाता है। इसके अतिरक्त 'ऋतं च' और 'अन्तश्चरसि' मन्त्रका भी आचमनमें उपयोग होता है। यह आचमन एक बार मन्त्र पढ़कर एक बार ही किया जाना चाहिये। आचमनके पश्चात् हाथ धो ले।

मार्जन

संध्याकी क्रियाओंमें मार्जनका भी प्रमुख स्थान है। मार्जनका अर्थ है। साफ करना—झाड़ू देना। स्नान करनेसे शरीर तो स्वच्छ रहता ही है। मार्जनके द्वारा उसमें पवित्रता भरी जाती है। जिस समय शरीर गरम रहता या परिश्रमके कारण थका रहता है, उस समय उसमें रक्त और वायु-दोनों ही उत्तेजित रहते हैं। रक्तके वेगवान प्रवाहके कारण मन भी चञ्चल रहता है और वैसी स्थितिमें किसी प्रकारकी उपासना ठीक-ठीक नहीं बन पाती। इसीसे उपासनाके पूर्व स्नानका विधान है। स्नानकी भी विधि है, भावना है और उसके कई भेद हैं। परंतु मार्जनमें विधिपर विशेष जोर देते हुए भी मन्त्रोक्त देवता और भावनाकी ही प्रधानता रखी गयी है। मार्जनके द्वारा रक्तका प्रवाह कम होता है, शीतलता के कारण उद्दीप्त भावनाएँ शिथिल पड़ती हैं। मनमें चिन्तनकी शक्ति आती है और जलके अधिष्ठाता देव प्रसन्न होकर साधककी सहायता करते हैं। मनुष्यके शरीरमें दो तिहाईसे

रेचकेनेश्वरं ध्यायेल्ललाटस्थं महेश्वरम् ।
शुद्धस्फटिकसंकाशं निर्मलं पापनाशनम् ॥ (मदनपारिजात)

अङ्गुष्ठेन पुरो धार्य नासाया दक्षिणं पुनः ।
कनिष्ठानामिकाभ्यां तु वामं प्राणस्य सङ्ग्रहे ॥
पीडेयेद्दक्षिणां नाडीमङ्गुष्ठेन तथोत्तराम् ।
कनिष्ठानामिकाभ्यां च मध्यमां तर्जनीं त्यजेत् ॥ (याज्ञवल्क्य)

अधिक जलीय अंश है। शरीर में शक्ति, जीवन, स्फूर्ति आदि इसी से आते हैं। परमात्माके चिन्तनमें अपनी पूरी शक्ति लगानेके लिये जलके अधिष्ठाता देवसे प्रार्थना करना आवश्यक है। चित्तमें जबतक ग्लानि रहती है, तबतक कोई भी उपासना प्रसन्नतासे नहीं होती। प्रसादपूर्वक हुए बिना किसी भी उपासनाकी सफलता संदिग्ध है। इसलिये भी मार्जनकी आवश्यकता है कि चित्तकी ग्लानि दूर हो जाय और जलाधिष्ठातृदेवताकी सहायतासे यह भावना दृढ़ हो जाय कि मैं परम पवित्र होकर स्थिरभावसे परमात्माकी उपासना करने बैठा हूँ, अब पाप-ताप मेरा स्पर्श नहीं कर सकते। मैं अविचल भावसे भगवान का चिन्तन करूँगा। इसी भावनासे मार्जनमन्त्रद्वारा जलाधिष्ठातृदेव की प्रार्थना करते हुए अपने अङ्गोंपर जल छिड़क कर स्थिरता की भावना दृढ़ की जाती है।

'आपो हिष्ठा' इत्यादि मन्त्रसे मार्जन किया जाता है। इनमें तीन ऋचाएँ हैं और प्रत्येक ऋचा तीन-तीन चरणों की हैं। कुल नौ चरण हैं। प्रत्येक के आदि में ॐकार जोड़कर सात चरणोंको पढ़कर सिर पर जल छिड़के, आठवेंसे भूमिपर और फिर नवें से मस्तक पर जल सींचना चाहिये[५५]। यदि नदी आदिमें मार्जन करना हो तो कुशा या हाथसे ही जल लेकर छिड़कना चाहिये। घरपर करना हो तो किसी पात्रमें या बायें हाथमें जल लेकर दाहिने हाथकी अङ्गुलियोंसे सींचना चाहिये। यदि वर्षा या नलसे जलकी धारा गिरती हो तो उस जलका संध्यामें उपयोग नहीं करना चाहिये[५६]।

अघमर्षण

संध्यामें अघमर्षणकी बड़ी महिमा है। प्राणी अपनी स्वाभाविक प्रवृत्तिके अनुसार जो अपनेमें अनन्त अघराशि संचित कर लेता है, उसीके कारण उसे परमात्मासे पृथक् रहकर नाना प्रकारकी दारुण यन्त्रणा भोगनी पड़ती है। अघमर्षण की साधनासे मनुष्य निष्पाप होकर परमात्मप्राप्तिका अधिकारी बन जाता है।

---

५५. विप्रुषोऽष्टौ क्षिपेन्मूर्ध्नि अधो यस्य क्षयाय च । (व्याससमृति)

५६. धाराच्युतेन तोयेन सन्ध्योपास्तिर्विगर्हिता । (प्रयोगपारिजात)

इसके साधनका सहज एवं संक्षिप्त प्रकार यों है— दाहिने हाथमें जल लेकर उसे नासिकाके पास लगावे और श्वास रोककर या बिना रोके ही तीन या एक बार अघमर्षणसूक्तका जप करना चाहिये[५७]। उस समय मनमें भावना करे कि यह जल वाम नासिकाके मार्गसे भीतर प्रवेश कर दायीं नासिकाके छिद्रसे पापको निकाल रहा है, फिर उस जलकी ओर बिना देखे ही उसे बायीं ओर पृथ्वीपर फेंक दे[५८]। यह अघमर्षणसूक्त अश्वमेध यज्ञके समान सब पापोंको दूर करनेवाला है[५९]। परमात्माके साक्षात्कारमें मल, विक्षेप और आवरण तीन दोष बाधक माने जाते हैं। संध्याके द्वारा मल, विक्षेप और आवरण सभी नष्ट हो जाते हैं। अघमर्षण-मन्त्र मलका नाश करता है, विक्षेप को दूर भगाता है, मन में प्रसन्नता भर देता है और मेरे पाप नष्ट हो गये— इस भावको दृढ़ कर देता है। दृढ़ता से विक्षेप नष्ट होते हैं और मन्त्रके अर्थपर विचार करते ही आवरण भङ्ग हो जाता है। अघमर्षणमन्त्रके अर्थपर ध्यान देनेसे संसारके सब पदार्थोंका सम्बन्ध भगवान के साथ जोड़कर साधक उस प्रभुका वैभव और उसकी लीला देखने में मस्त हो जाता है। इसलिये सब प्रकार के साधकों को अघमर्षण का सविधि अनुष्ठान करना चाहिये।

अर्घ्यदान

इस पृथ्वीमण्डल और यहाँ रहनेवाले जीवों का सूर्य के साथ बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। सूर्य के ही प्रकाश से, चाहे वह चन्द्रमा के रूप में हो या दीपक के, हम इस संसार को देख पाते हैं। सूर्य की ही उष्णता से हमारा यह जीवन, जीवन बना हुआ है। भोजन का परिपाक करके सूर्य ही हमें रस भी देते हैं। यह पृथ्वी सूर्य से

---

[५७] करेणोद्धृत्य सलिलं घ्राणमासज्य तत्र च ।
जपेदनायतासुर्वा त्रिः सकृद्वाघमर्षणम् ॥ (कात्यायन)

[५८] दक्षनासापुटेनैव पाप्मानमपसारयेत् ।
तज्जलं नावलोक्याथ वामभागे क्षितौ क्षिपेत् ॥ (आचारमयूख)

[५९] यथाश्वमेधः क्रतुराट् सर्वपापापनोदनः ।
तथाघमर्षणं सूक्तं सर्वपापप्रणोदनम् ॥ (लघुव्याससस्मृति)

ही प्रकट हुई हैं और सूर्य स्वयं भगवान् के ही स्वरूप हैं। अतः प्रत्येक द्विज को नियत समय पर अर्घ्यदान और नमस्कार आदि के द्वारा उनकी उपासना करनी चाहिये। इससे भगवान् सूर्यदेव प्रसन्न होते हैं, उनकी प्रसन्नता से हमारी आँखों में ज्योति आती है, बुद्धि में प्रकाश होता है और आँखें बुरे विषयों की ओर जाने से रुक जाती हैं; क्योंकि सूर्य की शक्ति के बिना आँखें कुछ कर ही नहीं सकतीं। इसलिये अपने अन्तःकरण और शरीर को स्वस्थ रखने के लिये सूर्यदेव को अर्घ्य देना बहुत आवश्यक है। अर्घ्यदानकी विधि थोड़े में इस प्रकार है— दोनों हाथों की अञ्जलि में जल लेकर उसे गायत्री-मन्त्र से अभिमन्त्रित कर सूर्य की ओर मुख करके खड़ा हो तीन बार अर्घ्य दे[६०]। खड़ा होने में विशेष विधि यह है— एक पैर से खड़ा होकर दूसरे पैर की एँड़ी उठाये रखे या एक पैर बिल्कुल उठाये रखे अथवा एक पैर बिल्कुल उठाकर दूसरे पैर के पंजे के बल पर खड़ा हो यानी दाहिना पैर भी जमीन से ऊपर उठाना चाहिये और बायें पैर के पंजे पर या पूरे ही बायें पैर पर खड़ा रहना चाहिये, अथवा दाहिने पैर की केवल एँड़ी भी उठा सकते हैं। खड़ा होने के प्रकारों में उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं; क्योंकि उसमें परिश्रम अधिक होने के कारण उसके कल्याणमय फल में भी अधिकता होती है, ऐसा मनीषीजन कहते हैं। सूर्योपस्थान में भी ऐसा ही खड़ा होना चाहिये[६१]। खड़ा होने का नियम केवल प्रातःकाल और मध्याह्नकाल में है। तीन बार जल देने का नियम प्रातःकाल और सायंकाल में है। मध्याह्नकाल में केवल एक बार जल का अर्घ्य देना चाहिये।[६२] प्रातःकाल अर्घ्य देते समय मस्तक झुकाकर खड़ा होना चाहिये और मध्याह्नकाल में सीधे खड़े होकर अर्घ्य देना चाहिये, परंतु सायंकाल में बैठकर ही पृथ्वी पर

---

[६०] कराभ्यां तोयमादाय गायत्र्याचाभिमन्त्रितम् ।
आदित्याभिमुखस्तिष्ठंस्त्रिः क्षेपेत् सन्ध्ययोर्द्वयोः ॥ (याज्ञवल्क्य)

[६१] तदसंसक्तपार्ष्णिर्वा एकपादर्धपादपि ।
कुर्यात् कृताञ्जलिर्वापि ह्यूर्ध्वं बाहुरथापि वा ॥
यत्र स्यात् कृच्छ्रभूयस्त्वं श्रेयसोऽपि मनीषिणः ।
भूयस्त्वं ब्रुवते तत्रकृच्छ्राच्छ्रेयो ह्यवाप्यते ॥ (गोभिल.२ ।१२,१३,१४)

[६२] मध्याह्ने तु सकृदेव क्षेपणीयं द्विजातिभिः ॥ (तैत्तिरीयारण्यकभाष्य, पूना)

अर्घ्यजल गिराना चाहिये।[६३] प्रातःकाल और मध्याह्नकाल के अर्घ्य के समय जल में ही जल गिरावे। यदि जल न हो तो स्थल को भलीभाँति धोकर उसपर विधिपूर्वक जल गिराना चाहिये। सायंकाल में जल में अर्घ्यजल गिराने से रौरव नरक की प्राप्ति बतलायी गयी है।[६४] अर्घ्य देते समय हाथ खुले रखे, तर्जनी-अँगूठे न सटने दे।

सूर्योपस्थान

अर्घ्यदान के द्वारा भगवान् सूर्य की आराधना करने के बाद उनकी स्तुति-प्रार्थना की जाती है— यही उपस्थान है। सूर्योपस्थान का अर्थ है भगवान् सूर्य के पास उपस्थित होना— उनके दरबार में हाजिरी देना। सूर्योपस्थान के द्वारा हमें भगवान् सूर्य का सान्निध्य प्राप्त होता है। सूर्योपस्थान की विधि इस प्रकार है— खड़ा होकर 'उद्वयम्' इत्यादि चार मन्त्रों को पढ़ते हुए प्रातः -सायं कृताञ्जलि होकर और मध्याह्न में दोनों भुजाएँ ऊपर उठाकर सूर्यदेव का स्तवन करे, फिर प्रदक्षिणापूर्वक इन्हें प्रणाम करे। मध्याह्नकाल के सूर्योपस्थान में थोड़ी-सी विशेषता है— उसमें 'उद्वयम्' इत्यादि चार मन्त्रों के अतिरिक्त 'विभ्राट्' इत्यादि अनुवाक्, पुरुषसूक्त (सोलह मन्त्र), शिवसंकल्प (छः मन्त्र) तथा मण्डल ब्राह्मण का भी यथासम्भव पाठ करना चाहिये।[६५]

---

६३. प्रातः प्रह्वः क्षिपेदप्सु मध्याह्ने ऋजुसंस्थितः ।
अर्घ्यप्रक्षेपणं कुर्यात् सायं तूपविशन् भुवि ॥ (तैत्तिरीयसन्ध्याभाष्य, पूना)

६४. जले त्वर्घ्यं प्रदातव्यं जलाभावे तु तत्स्थले ।
सम्प्रोक्ष्य वारिणा सम्यक् पश्चादर्घ्यं यथाविधि ॥ (तैत्तिरीयसन्ध्याभाष्य,पूना)
उपविश्य तु सायाह्ने जले त्वर्घ्यं न निक्षिपेत् ।
निक्षिपेद् यदि मूढात्मा रौरवं नरकं व्रजेत् ॥ (तैत्तिरीयसन्ध्याभाष्य, पूना)

६५. उद्वयमुदुत्यं चित्रंतच्चक्षुरिति गायत्र्या च यथाशक्ति विभ्राडित्यनुवाक्पुरुषसूक्तशिवसङ्कल्पमण्डलब्राह्मणैरित्युपस्थाय प्रदक्षिणीकृत्य नमस्कृत्योपविशेत्। (कात्यायनोक्त त्रिकण्डिकासूत्र २)

गायत्री-जप

उपस्थान के पश्चात् बैठकर 'तेजोऽसि' इत्यादि मन्त्र से गायत्रीदेवी का आवाहन करके 'गायत्र्यसि' इत्यादि मन्त्र से उन्हें प्रणाम करना चाहिये; इसके बाद आद्यन्त प्रणवसहित तीन महाव्याहृतियुक्त गायत्रीमन्त्र का जप करना चाहिये । गायत्री-मन्त्र में परमात्मा का स्तवन है, अतः इसके जपसे बारम्बार परमेश्वर की स्तुति सम्पन्न होती है, जिससे मनुष्य जन्म-मरण के चक्कर से छुटकारा पाकर शाश्वत शान्ति को प्राप्त होता है । शास्त्रों में गायत्री-मन्त्र के जप का बहुत बड़ा माहात्म्य बतलाया गया है । याज्ञवल्क्यजी कहते हैं— यावज्जीवन प्रतिदिन सात बार जप करने से गायत्रीदेवी शरीर को पवित्र करती हैं; दस बार के जप से स्वर्गलोक की प्राप्ति कराती हैं, बीस बार जप करने से शिवलोक में पहुँचाती हैं और एक सौ आठ बार के जप से जन्म-समुद्र से पार करती हैं । जो ऐसा करता है, वह पुनः इस जन्म-मृत्यु के दुःख को नहीं देखता । गायत्री दस बार के जप से वर्तमान जन्म का, सौ बार के जप से पूर्वजन्म का तथा एक हजार जप करने से तीन जन्मों का पाप नष्ट कर देती हैं । यदि अङ्गोंसहित चारों वेद और सभी वाङ्मय शास्त्र पढ़ लिये गये, तो भी जो गायत्री को तत्त्वतः नहीं जानता, उसका सारा परिश्रम व्यर्थ है । गायत्रीमात्र से संतुष्ट होकर अपनी मनोवृत्ति को नियन्त्रित रखनेवाला ब्राह्मण श्रेष्ठ है । किंतु जिसका अपने मन पर काबू नहीं है, वह सब कुछ चाहनेवाला और लोभवश अपना सब कुछ बेचनेवाला विप्र तीनों वेदों का ज्ञाता होकर भी उत्तम नहीं है[६६] । बृहद्धर्मस्मृति का वचन है कि द्विज केवल वेद के स्वाध्याय से उस

---

[६६] सप्तभिः पावयेद्देहं दशभिः प्रापयेद् दिवम् ।
विंशत्यावर्तिता देवी नयते चेश्वरालयम् ॥
अष्टोत्तरशतं जप्ता तारयेज्जन्मसागरात् ।
तीर्णो न पश्यति प्रायो जन्म मृत्युं हि दारुणम् ॥
दशभिर्जन्मजनितं शतेन तु पुराकृतम् ।
त्रिजन्मजं सहस्रेण गायत्री हन्ति किल्विषम् ॥
वेदाः साङ्गास्तु चत्वारोऽधीताः सर्वेऽथ वाङ्मयाः ।
गायत्रीं यो न जानाति वृथा तस्य परिश्रमः ॥
गायत्रीमात्रसन्तुष्टः श्रेयान् विप्रः सुयन्त्रितः ।
नायन्त्रितस्त्रिवेदी च सर्वाशी सर्वविक्रयी ॥ (योगियाज्ञवल्क्य-स्मृति)

प्रकार अपने पापों को नहीं दग्ध कर सकता, जिस प्रकार कि गायत्री-जप करके वह सब पापों से मुक्त हो जाता है[६७]।

गायत्री-जप से ही जीवन की सच्ची सार्थकता है, इसलिये मनोयोग पूर्वक गायत्री-जप करना चाहिये। जप तीन प्रकार का होता है— वाचिक, उपांशु और मानस। इसमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठ है। उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, पद, अक्षर एवं शब्द के स्पष्ट होने का ध्यान रखते हुए वाणी से मन्त्र का स्पष्ट उच्चारण वाचिक जप है[६८]। जिससे दूसरों को शब्द सुनायी न दे, इस प्रकार जरा-जरा-सा ओठ हिलाकर सूक्ष्म उच्चारण पूर्वक मन्त्र का जप उपांशु कहलाता है[६९]। मन-बुद्धि के द्वारा मन्त्र के वर्ण, शब्द और अर्थ का चिन्तन करना मानस जप है[७०]। प्रत्येक कालकी संध्या में गायत्रीमन्त्र का कम-से-कम १०८ बार (एक माला) जप अवश्य करना चाहिये। जप जितना ही अधिक हो, उतना ही विशेष लाभ होता है। ब्रह्मचारी और गृहस्थ कम से कम १०८ बार जप करे तथा वानप्रस्थ एवं संन्यासी को प्रति समय दो हजार से भी अधिक गायत्री-जप करना चाहिये[७१]।

---

[६७] न तथा वेदजपतः पापं निर्दहति द्विजः ।
यथा गायित्रीजपतः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ (बृहदधर्म-स्मृति)

[६८] त्रिविधो जपयज्ञः स्यात्तस्य भेदं निबोधत ।
वाचिकश्च उपांशुश्च मानसस्त्रिविधः स्मृतः ॥
त्रयाणां जपयज्ञानां श्रेयान् स्यादुत्तरोत्तरः । (नरसिंहपुराण)
यदुच्चनीचस्वरितैः शब्दैः स्पष्टपदाक्षरैः ।
मन्त्रमुच्चारयेद्वाचा वाचिकोऽयं जपः स्मृतः ॥ (विश्वामित्रकल्प)

[६९] शनैरुच्चारयेन्मन्त्रमीपदोष्ठौ च चालयेत् ।
अपरैर्न श्रुतः किञ्चित् स उपांशुर्जपः स्मृतः ॥ (विश्वामित्रकल्प)

[७०] धिया यदक्षरश्रेण्या वर्णाद् वर्णं पदात् पदम् ।
शब्दार्थचिन्तनं भूप कथ्यते मानसो जपः ॥ (विश्वामित्रकल्प)

[७१] ब्रह्मचारी गृहस्थश्च शतमष्टोत्तरं जपेत् ।
वानप्रस्थश्च संन्यस्तो द्विसहस्राधिकं जपेत् ॥ (मनुस्मृति)

जप की सिद्धि के लिये निम्नाङ्कित नियमों का पालन करना आवश्यक है— मन में संतोष, पवित्रता, मौनभाव और मन्त्र के अर्थ का विचार करना तथा उद्वेग एवं खेदका न होना[७२]। जो अपने दायें हाथ को सदा वस्त्र से ढके रखकर जप करता है, उसी का जप सफल होता है, जो ऐसा नहीं करता, उसका जप निष्फल होता है।[७३] मन्त्रजप की गिनती अवश्य रखनी चाहिये; क्योंकि बिना संख्या का जप आसुर[७४] जप कहलाता है। किंतु यह स्मरण रखना चाहिये कि उपर्युक्त विधि केवल मन्त्र जप के ही विषय में है। प्रतिक्षण भगवान् के नामस्मरण एवं कीर्तन में यह अनिवार्य नहीं है। जप के लिये रुद्राक्ष, तुलसी और चन्दन आदि की मालाओं को उपयोग किया जा सकता है। करमाला से भी जप किया जाता है, उसका स्वरूप इस प्रकार है— अनामिका अङ्गुली के मध्य भाग से लेकर कनिष्ठा के पोरुओं पर होते हुए तर्जनी के मूल तक दस पोरुओं पर क्रमशः जप करे। मध्यमा के जो दो पर्व (पोरु) शेष रहते हैं, उन्हें माला का सुमेरु समझकर उनका उल्लङ्घन कभी नहीं करना चाहिये, अर्थात् उनको छोड़ देना चाहिये[७५] तथा दाहिने हाथ की अङ्गुलियों पर दस मन्त्र जपकर बायें हाथ की अनामिका अङ्गुली के मध्यभाग पर वह एक दहाई की एक संख्या गिने। इसी प्रकार बायें हाथ की अनामिका अङ्गुली के मध्यभाग से लेकर कनिष्ठा के पोरुओं पर होते हुए तर्जनी के मूलतक दस पोरुओं पर क्रमशः दस बार गिन ले। इस तरह १०० संख्या हो जाती है। फिर आठ मन्त्र दाहिने हाथ पर पूर्वोक्त क्रम से और जप कर ले।

---

[७२] मनः सन्तोषणं शौचं मौनं मन्त्रार्थचिन्तनम् ।
अव्यग्रत्वमनिर्वेदो जपसम्पत्तिहेतवः ॥ (व्यास)

[७३] वस्त्रेणाच्छाद्य तु करं दक्षिणं यः सदा जपेत् ।
तस्य स्यात्सफलं जाप्यं तद्धीनमफलं मतम् ॥ (व्यास)

[७४] असंख्यमासुरं यस्मात्तस्मात्तद् गणयेद् ध्रुवम् । (बृ.प.सं.)

[७५] तर्जनीमूलपर्यन्तं जपेद्दशसु पर्वसु ॥
मध्यमाङ्गुलिमूले तु यत्पर्वद्वितयं भवेत् ।
तद्वै मेरुं विजानीयाज्जापे तं नातिलङ्घयेत् ॥ (गायत्रीकल्प)

जपकाल में गायत्री के आदि और अन्त में भी प्रणव लगाना चाहिये । योगी याज्ञवल्क्यजी कहते हैं—

ॐकारं पूर्वमुच्चार्य भूर्भुवः स्वस्ततः परम् ।
गायत्रीं प्रणवं चान्ते जप्यं ह्येवमुदाहृतम् ॥

अर्थात् पहले 'ॐ' कार का उच्चारण करना चाहिये, फिर 'भूर्भुवः स्वः' इन तीन व्याहृतियों का, तत्पश्चात् गायत्री मन्त्र का उच्चारण करके अन्त में भी प्रणव लगाना चाहिये । गायत्रीमन्त्र का जप ऐसा बताया गया है ।

कुछ लोग 'गृहस्थो ब्रह्मचारी च प्रणवाद्यामिमां जपेत्' इत्यादि वचन के अनुसार गृहस्थ और ब्रह्मचारी के लिये आदि प्रणवा गायत्री मानते हैं । परंतु हरिहर आदि भाष्यकारों ने अन्त में भी प्रणव का समर्थन किया है । श्री वीरमित्रोदय ने अपने आह्निक प्रकाश में आद्यन्तप्रणवा गायत्री का जप ही सिद्धान्ततः माना है । वास्तव में पूर्वोक्त याज्ञवल्क्यके वचनानुसार जपकाल में सबके लिये आद्यन्त प्रणवा गायत्री का ही उपयोग उचित है । अन्यत्र गृहस्थ और ब्रह्मचारी को 'आदि-प्रणवा' का उपयोग करना चाहिये ।

सूर्य-प्रदक्षिणा

गायत्रीजप के पश्चात् 'ॐ विश्वतश्चक्षुः' इस मन्त्र से परमात्मस्वरूप श्रीभगवान् सूर्यनारायण की प्रदक्षिणा की जाती है । यह प्रदक्षिणा एक ही बार की जाती है । हरिहर-भाष्य आदि में संध्या और तर्पण-कर्म में की जानेवाली सूर्य- प्रदक्षिणा को एक ही बार करने के लिये लिखा है । बह्वृचपरिशिष्ट तथा अन्यान्य ग्रन्थों में जो सूर्य की दो[७६] बार और सात[७७] बार प्रदक्षिणा करने का उल्लेख मिलता है, वह सूर्य की प्रतिमा के लिये है । साक्षात् भगवान् सूर्यनारायण की एक ही प्रदक्षिणा की जाती है ऐसा ही सम्प्रदाय भी है ।

---

[७६] एकां विनायके कुर्याद् द्वे सूर्ये सप्त ईश्वरे । (बह्वृचपरिशिष्ट)

[७७] अन्यंत्र तु एका चण्ड्या रवेः सप्त तिस्रः कार्या विनायके ।
हरेश्चतस्रः कर्तव्याः शिवस्यार्धप्रदक्षिणा ॥

जपनिवेदन

प्रदक्षिणा के पश्चात् अपने आसन पर आसीन हो 'देवा गातुविदो.' इत्यादि मन्त्र से जपयज्ञ को भगवदर्पण किया जाता है। यह बहुत ही आवश्यक और महत्त्वपूर्ण कर्म है। अर्पणपूर्वक किया हुआ सत्कर्म ही भवबन्धन से मुक्ति दिलानेवाला होता है।

विसर्जन

इस प्रकार जपनिवेदन के पश्चात् 'उत्तमे[७८] शिखरे' इत्यादि अनुवाक पढ़कर परमात्मरूपा गायत्रीदेवी का विसर्जन करना चाहिये। तदनन्तर सम्पूर्ण संध्योपासनकर्म भगवान् को समर्पण कर न्यूनता की पूर्ति के लिये भगवान् से अभ्यर्थना करते हुए इस कार्य को समाप्त करना उचित है।

एक आवश्यक बात

कुछ लोग कहा करते हैं; संस्कृत भाषा में बने हुए मन्त्रों का ही उच्चारण करके संध्या क्यों की जाय? उनका किसी भी भाषा में अनुवाद करके उनके भावों का अनुस्मरण करते हुए संध्योपासना करने में क्या हानि है? ऐसी शङ्का करनेवाले महानुभावों से निवेदन है कि संध्या एक विशेष प्रकार के वैदिक कर्म की संज्ञा है। इसके महत्त्व का श्रुति, स्मृति तथा पुराणों में अनेक स्थलों पर प्रतिपादन किया गया है। यह 'अथ' से 'इति' तक जिस प्रकार विहित है, उसी के अनुसार यथावत् रूप से पालन करने पर ही इसके उद्देश्य अथवा फल की सिद्धि होती है, अनुवाद करके करने से नहीं। किसी प्रार्थना-सम्बन्धी मन्त्र का अनुवाद करके उससे भावों का स्मरण करना अथवा स्वतः कोई पद्य या गद्य बनाकर भगवान् का स्तवन करना भी उत्तम कार्य है, इससे भी कल्याण ही होता है। परन्तु इससे संध्योपासनारूप नित्यकर्मका पालन नहीं हो सकता और इस प्रकार नित्यकर्म के त्याग के दोषों से छुटकारा पाना असम्भव है। यह ध्यान रहे कि वेदों की आज्ञा प्रभुसम्मित है, जिस प्रकार राजाज्ञा का अक्षरशः पालन करना पड़ता है, उसी प्रकार वेदों की आनुपूर्वीका

---

[७८] तत उद्वास्य गायत्रीमुत्तमेनानुवाकतः। (व्याससमृति)

अक्षरशः अपरिवर्तित रूप में स्वाध्याय किया जाता है और ऐसा करने पर ही वेद के स्वाध्याय का फल होता है। अनुवाद का स्वाध्याय, लाभदायक होने पर भी उसका उतना ही महत्त्व है, जितना हम कोई स्वतन्त्र गद्य-पद्यमय प्रार्थना लिखकर उससे भगवत्स्तवन करने का महत्त्व समझते हैं। मन्त्रों का आशय समझने के लिये अनुवाद आदि के द्वारा सहायता लेने में कोई हर्ज नहीं है। वैदिक कर्म करते समय उसमें उप्रयुक्त हुए मन्त्रों का ज्यों-का-त्यों उच्चारण करना चाहिये। अनुवाद तो दूर रहे, स्वर और मात्रा तक का परिवर्तन हो जाने से मन्त्र अशुद्ध हो जाता है और उसका कुफल भोगना पड़ता है।

निरुक्तकार कहते हैं— 'पुरुषविद्यानित्यत्वात् कर्मसम्पत्तिमन्त्रो वेदे।' अर्थात् 'मनुष्य अल्पज्ञ है, अतः उसकी विद्या अनित्य है। उस अनित्य, अपूर्व एवं संदिग्ध ज्ञान से कभी सत्कर्मों की सिद्धि नहीं हो सकती, अतः वैदिक मन्त्रो के द्वारा ही कर्म-सम्पादन होना चाहिये। अस्तु, अब संध्या-मन्त्रों के ऋषि, छन्द और देवता का विचार किया जाता है।

संध्या-मन्त्रों के ऋषि, छन्द और देवता का विचार

वैदिक मन्त्रों के ऋषि, छन्द और देवता का ज्ञान बहुत ही आवश्यक है। किसी भी मन्त्र का कर्म में विनियोग करने से पहले उसके ऋषि आदि का स्मरण कर लेने के लिये महर्षियों ने बहुत जोर दिया है। योगी याज्ञवल्क्यजी का कथन है कि द्विजको विशेषतः ब्राह्मण को चाहिये कि वह प्रयत्न करके मन्त्रों के ऋषिं, छन्द और देवता का ज्ञान प्राप्त करे[७९]। जो इनका ज्ञान प्राप्त किये बिना ही मन्त्र से यजन-याजन, अध्ययन-अध्यापन और जप-होमादिका अनुष्ठान करता है, उसके उस कर्म का अल्प फल मिलता है[८०]। जिस महर्षि ने जिस मन्त्र का सबसे पहले साक्षात्कार किया तथा जिसने उस मन्त्र द्वारा

---

[७९] आर्षं छन्दश्च दैवत्वं विनियोगस्तथैव च ।
वेदितव्यं प्रयत्नेन ब्राह्मणेन विशेषतः ॥ (याज्ञवल्क्य)

[८०] अविदित्वा तु यः कुर्याद् यजनाध्यापनं जपम् ।
होममन्तर्जलादीनि तस्य चाल्पफलं भवेत् ॥ (याज्ञवल्क्य)

सर्वप्रथम सिद्धि प्राप्त की, वही उस मन्त्र का द्रष्टा ऋषि माना गया[८१]। जिसके द्वारा हम लौकिक और पारमार्थिक— दोनों प्रकार का लाभ उठाते हैं, उस मन्त्र के द्रष्टा को न जानना अथवा उस द्रष्टा को स्मरण आदि के द्वारा अपनी श्रद्धाञ्जलि समर्पण न करना कितनी बड़ी कृतघ्नता है? अतः सभी को उसका ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। ऋषि की ही भाँति छन्द के ज्ञान का भी बड़ा ही महत्त्व है। जिस प्रकार शरीर को वस्त्र ढकता है वैसे ही मन्त्रों को छन्द ढके हुए हैं। मन्त्रों का आच्छादन करने के कारणही उन्हें छन्द कहते हैं। कहते हैं, पूर्वकाल में देवताओं ने मृत्यु से भयभीत होकर छन्दों के द्वारा ही अपने स्वरूप को छिपा दिया था, जिससे मृत्यु की दृष्टि उनपर न पड़ी, इसीलिये वेदमन्त्र सनातन और अविनाशी है। जिस-जिस मन्त्र के द्वारा जिस किसी देवता का प्रतिपादन हुआ है, वही उस मन्त्र का देवता है[८२]। (पूर्व भाग में इस प्रसंग में व्यापक विवेचनापूर्ण लेख प्रस्तुत किया गया है।)

आजकल संध्या की विभिन्न पुस्तकों में मन्त्रों के ऋषि, छन्द और देवता के सम्बन्ध में अनेक पाठ-भेद मिलते हैं। किसी पुस्तक में एक ही मन्त्र के जो ऋषि आदि हैं, दूसरी पुस्तक में दूसरे रूप में देखे जाते हैं। इसके कारण तथ्य के जिज्ञासुओं के हृदय में बड़ा ही संदेह खड़ा हो गया है। लोगों का विश्वास उठता जा रहा है और ऋषि आदि का उल्लेख अनावश्यक जान पड़ने लगा है। बात ठीक भी है, जब एक ही मन्त्र के विषय में अनेक ऋषियों का उल्लेख मिलता है तो बिना किसी प्रबल प्रमाण के उनमें से किसको ठीक माना जाय? यदि ठीक निर्णय न हो तो किसी भी विचारशील का उसपर विश्वास होना और उसको जानने के लिये प्रयत्न करना कैसे सम्भव हो सकता है? यह विषय इतना दुर्बोध नहीं है, जिसके

---

[८१] येन यदृषिणा दृष्टं सिद्धिः प्राप्ता च येन वै ।
मन्त्रेण तस्य तत्प्रोक्तमृषेर्भावस्त दार्षकम् ॥ (याज्ञवल्क्य)

[८२] यस्य यस्य तु मन्त्रस्य उद्दिष्टा देवता तु या ।
तदाकारं भवेत्तस्य देवत्वं देवतोच्यते ॥ (याज्ञवल्क्य)

तथ्य का निर्णय करने में विशेष कठिनाई हो। केवल लोगों की उपेक्षा से ही इस विषय में अबतक अन्धकार फैलता आया है। इसी का निवारण करने के लिये यहाँ प्रत्येक मन्त्र के ऋषि आदि का अनुसंधान पूर्वक विचार किया जा रहा है।

इस विषय का निर्णय करने के लिये सबसे प्राचीन ग्रन्थ वैदिक सर्वानुक्रम-सूत्र हैं। उनमें प्रायः वेद के सभी मन्त्रों के ऋषि, छन्द और देवताओं का उल्लेख है। छन्दों का निर्णय पिङ्गल सूत्र से भी होता है। इसी प्रकार जिस मन्त्र के ऋषि और देवता का अनुक्रमसूत्रों में उल्लेख नहीं है, उसके तथा वेदकी जिस शाखा के अनुक्रमसूत्र नहीं उपलब्ध होते, उस शाखावाले मन्त्रों के ऋषि आदि का निर्णय करने के लिये अन्य युक्तियाँ भी दी गयी हैं, जिनका स्पष्टीकरण उन मन्त्रों के ऋषि आदि का निश्चय करते समय हो जायगा।

संध्या में पहले 'ऋतं च.' यह मन्त्र आया है, यह ऋग्वेद का मन्त्र है। ऋक्सर्वानुक्रमसूत्र में इसके ऋषि आदि का इस प्रकार उल्लेख है— 'ऋतं च माधुच्छन्दसोऽघमर्षणो भाववृत्तामानुष्टुभंतु।' अर्थात् 'ऋतुं च' मन्त्र के माधुच्छन्दस अघमर्षण ऋषि, भाववृत्त देवता और अनुष्टुप् छन्द हैं। कुछ प्रतियों में ऋषि के स्थान पर केवल 'अघमर्षण' का उल्लेख मिलता है, किंतु वह अधूरा नाम है, क्योंकि सूत्र में 'माधुच्छन्दस् अघमर्षण' ऐसा पूरा नाम देखा जाता है। इस मन्त्र में तीन अनुष्टुप् छन्द हैं। 'अनुष्टुब्गायत्रैः' इस पिङ्गलसूत्र के अनुसार आठ-आठ अक्षरों के चार पादों का अनुष्टुप् छन्द होता है। वैदिक छन्दों में अक्षर गणना को ही प्रधानता दी गयी है, लौकिक छन्दों की भाँति इनमें मात्रा तथा गुरु-लघु की व्यवस्था का पूर्णतया पालन नहीं देखा जाता। इस मन्त्र के पहले छन्द के दूसरे और तीसरे चरणों में अर्थात् 'तपसोऽध्यजायत', 'ततो रात्र्यजायत' इन पादों में यद्यपि सात-सात ही अक्षर हैं तो भी वैदिक छन्दों के लिये स्वीकृत सरणिके अनुसार व्यूह (विशिष्ट ऊहा) के द्वारा इस संख्या की पूर्ति कर ली जाती है। जैसे गायत्री-मन्त्र में गायत्री छन्द के निर्वाहार्थ व्यूह के द्वारा 'वरेण्यम्' के स्थान में 'वरेणियम्' पढ़कर एक अक्षर की कमी पूरी कर ली जाती है, उसी प्रकार यहाँ भी 'ततो रात्रियजायत', 'तपसोऽधिजायत' इस रूप में व्यूह के द्वारा संख्या की पूर्ति हो जाती है। अथवा

'ऊनाधिकेनैकेन निचृद्भुरिजौ', 'द्वाभ्यां विराट्स्वराजौ'— इन पिङ्गल-सूत्रों के अनुसार यदि किसी छन्द में एक अक्षर की कमी हो तो उसकी निचृत् संज्ञा होती है, जैसे अनुष्टुप् में एक अक्षर की कमी होने पर वह 'निचृत् अनुष्टुप्' कहा जायगा, अनुष्टुप् के अतिरिक्त कोई दूसरा छन्द नहीं माना जायगा। इसी प्रकार एक अक्षर अधिक होनेपर उसकी 'भुरिक्' संज्ञा होगी, रहेगा वही छन्द, केवल उसकी 'भुरिक्' यह विशिष्ट संज्ञा हो जायगी। ऐसे ही दो अक्षर न्यून होने पर वह छन्द 'विराट्' कहा जायगा और दो अक्षर अधिक होने पर उसकी 'स्वराट्' संज्ञा होगी। उक्त सूत्रों के अनुसार प्रस्तुत मन्त्र के पहले अनुष्टुप् में दो अक्षरों की कमी होने से वह विराट् अनुष्टुप् होगा। तात्पर्य यह कि उसके अनुष्टुप् छन्द होने में कोई बाधा नहीं आयी। यद्यपि इस मन्त्र के तीसरे छन्द के अन्तिम पद में 'रिक्षमथो स्वः' इस प्रकार पाँच ही अक्षर होते हैं तो भी 'स्वः' के स्थान में व्यूह की रीति से 'सुवः' मानकर गिनने से छः अक्षर होते हैं, फिर 'द्वाभ्यां विराट्स्वराजौ' के अनुसार दो अक्षर की कमी होने पर इसकी 'विराट् अनुष्टुप्' संज्ञा हुई, इस प्रकार इस पूरे मन्त्र में 'अनुष्टुप् छन्द' अक्षुण्ण ही रहा।

इस मन्त्र के देवता के विषय में अनेक प्रतियों में भिन्न-भिन्न पाठान्तर उपलब्ध होते हैं, जैसे- 'भाववृत्तो', 'भाववृत्तं', 'भावभृतं' 'भावभृधः', 'भाववृत्तिः' इत्यादि, परंतु उक्त ऋक्सर्वानुक्रमसूत्र के अनुसार 'भाववृत्तं दैवतम्' यही पाठ शुद्ध है। कहीं-कहीं 'रात्र्यजायत' के स्थान में 'रात्रिरजायत' इस पाठका उल्लेख मिलता है, परंतु ऋग्वेद (अ. ८ अ. ८ व. ४८) में 'रात्र्यजायत' ही पाठ है, अतः वही यहाँ लिया गया है।

इसके बाद प्राणायाम मन्त्र आता है, इसमें भी सर्वप्रथम प्रणव (ॐ) है। प्रणव के ब्रह्म (ब्रह्मा) ऋषि हैं, दैवी गायत्री छन्द है और परमात्मा देवता है। तैत्तिरीय आरण्यक (१०.३३.१) में लिखा है— 'ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म, अग्निर्देवता ब्रह्म इत्यार्षम्, गायत्रं छन्दः परमात्मस्वरूपम्।' तथा याज्ञवल्क्य-स्मृति में लिखा है '.... तस्य ब्रह्मार्षं च स्वयम्भुवः। गायत्री च भवेच्छन्दः अग्निर्दैवतमुच्यते ॥'— इन श्रौत-स्मार्त-वचनों के अनुसार यद्यपि प्रणव का छन्द गायत्री और देवता अग्नि

सिद्ध होता है तथा अन्य अनेक प्रतियों में ऐसा ही पाठ भी है तथापि विचार करने से मालूम होता है कि यहाँ 'गायत्री' शब्द 'दैवी गायत्री' का ही नामैकदेश है, क्योंकि 'प्रथमं छन्दस्त्रिपदा गायत्री' इस पिङ्गलसूत्र के अनुसार आठ-आठ अक्षर के तीन पादों का गायत्री छन्द होता है। इस प्रकार गायत्री छन्द में चौबीस अक्षर हुए, फिर एक अक्षर का प्रणव-मन्त्र गायत्री छन्द कैसे हो सकता है? अतः यह 'दैवी गायत्री' छन्द ही है; क्योंकि 'दैव्येकम्' इस सूत्र के अनुसार एक अक्षरका 'दैवी गायत्री' छन्द ही होता है।

इसी प्रकार 'अग्निर्देवता' के 'अग्नि' शब्द का अर्थ यहाँ परमात्मा ही है, अतएव प्रस्तुत पुस्तक में 'परमात्मा देवता' लिखा गया है। उपर्युक्त आरण्यक मन्त्र भी 'परमात्मस्वरूपम्' लिखकर इस बात को स्वीकार किया गया है। याज्ञवल्क्यजीने 'ॐकारः परमं ब्रह्म' इस कथन के द्वारा इसी अभिप्रायको व्यक्त किया है तथा 'तस्य वाचकः प्रणवः' इस पातञ्जलसूत्र से भी इसी बात की पुष्टि होती है।

प्रणव के बाद प्राणायाम मन्त्र में सात महाव्याहृतियाँ हैं, इन सबके ऋषि प्रजापति ही हैं। परंतु छन्द और देवता अलग-अलग सात माने गये हैं। कहीं-कहीं विश्वामित्र आदि सात ऋषियों का भी उल्लेख मिलता है, इनमें भी 'विश्वस्य जगतो मित्रं विश्वामित्रः प्रजापतिः।' इस प्राचीन वचन के अनुसार 'विश्वामित्र' शब्द से प्रजापति का ही ग्रहण होता है; क्योंकि वे ही परम प्राचीन आदि ऋषि हैं। अतः केवल प्रजापति ही सातों व्याहृतियों के ऋषि निश्चित किये गये हैं। याज्ञवल्क्यजी भी यही कहते हैं— 'व्याहृतीनां च सर्वासामार्षें चैव प्रजापतिः।' इनके सात[८३] छन्द क्रमशः ये हैं— गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, बृहती, पङ्क्ति, त्रिष्टुप् और जगती। यद्यपि व्याहृतियों में इन छन्दों के लक्षण संघटित नहीं होते तो भी याज्ञवल्क्य आदि ऋषियों के वचनानुसार इनके उक्त छन्द माने जाते हैं। इन व्याहृतियों के देवता क्रमशः अग्नि, वायु, सूर्य, बृहस्पति, वरुण, इन्द्र और विश्वेदेव हैं। इनमें

---

८३. सप्तच्छन्दांसि यान्यासां तानि सम्यक्प्रवर्तयेत् ।
गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् च बृहती पङ्क्तिरेव च ॥
त्रिष्टुप् च जगती चैव छन्दांस्येतानि सप्त वै । (याज्ञवल्क्य)

से पूर्वोक्त तीन देवता 'भूर्भुवः स्वस्तिस्रो महाव्याहृतयोऽग्निवायुसूर्यदैवत्याः क्रमेण' इस 'यजुःसर्वानुक्रमसूत्र' के अनुसार हैं, शेष चार व्याहृतियों के चार देवता स्मृति के अनुसार हैं; क्योंकि सर्वानुक्रमसूत्र में तीन ही महाव्याहृतियों के ऋषि आदि का उल्लेख है।

'तत्सवितुः' इत्यादि मन्त्र के विश्वामित्र (प्रजापति) ऋषि, गायत्री छन्द और सविता देवता यजुः[८४] सर्वानुक्रम सूत्र के ही अनुसार हैं। गायत्री छन्द में चौबीस अक्षर होते हैं, अतः व्यूह के द्वारा यहाँ 'वरेणियम्' पढ़कर संख्या-पूर्ति की जाती है— यह पहले बता चुके हैं।

प्राणायाम का जो अन्तिम अंश 'आपो ज्योती' इत्यादि मन्त्र है उसे शिरोभाग कहते हैं, उसके प्रजापति ऋषि, यजुश्छन्द तथा ब्रह्मा, अग्नि और वायु देवता स्मार्त[८५] वचन के अनुसार निश्चित किये गये हैं। किन्हीं-किन्हीं प्रतियों में इसका त्रिपदा गायत्री छन्द लिखा मिलता है, किंतु वह ठीक नहीं है; क्योंकि 'त्रिपदा गायत्री' छन्द गायत्री से अतिरिक्त नहीं है, त्रिपदा शब्द गायत्री का ही विशेषण है। गायत्री ही आठ-आठ अक्षर के तीन पदोंवाली होती है। गायत्री में चौबीस अक्षर होते हैं और उक्त मन्त्र में केवल पंद्रह ही अक्षर हैं, अतः गायत्री या त्रिपदा गायत्री छन्द यहाँ नहीं हो सकता; इसलिये आर्षवचनानुसार इसमें 'यजुः' छन्द मानना ही ठीक है। जिसके अक्षरों की किसी छन्द के अनुकूल नियत गणना न हो तथा जिसमें पादावसान (इतने पादों से यह छन्द पूर्ण होता है— इस तरह का नियम) न हो वह 'यजुः'[८६] छन्द कहलाता है—

प्राणायाम के पश्चात् 'सूर्यश्च मा.' इत्यादि आचमन के मन्त्र आते हैं। तीनों काल के आचमन के तीन मन्त्र हैं। तीनों ही मन्त्र तैत्तिरीय आरण्यक एवं कृष्ण

---

[८४] तत्सवितुर्विश्वमित्रः सावित्री गायत्री ॥ (यजुःसर्वानुक्रमसूत्र)

[८५] आपो ज्योती रस इति मन्त्रो वस्तु प्रकीर्त्यते ।
तस्य प्रजापतिश्चार्षं यजुश्छन्दो विवक्षितम् ॥
ब्रह्माग्निवायुसूर्याश्च देवताः समुदाहृताः । (याज्ञवल्क्य)

[८६] अनियताक्षरपादावसानं यजुः।

यजुर्वेद के हैं। कृष्णयजुर्वेद का कोई सर्वानुक्रमसूत्र नहीं है, अतः कृष्ण यजुर्वेदी द्विजलोग उक्त वेद के जो मन्त्र शुक्ल यजुर्वेद अथवा ऋग्वेद में मिलते हैं, उनके ऋषि आदि का निश्चय यजुःसर्वानुक्रम और ऋक्सर्वानुक्रम के अनुसार करते हैं। जो मन्त्र उक्त वेदों में नहीं मिलते, उनका आर्षवचनों के अनुसार ही ऋषि आदि मानते हैं। उनकी पद्धति से अनुसंधान करने पर उक्त तीनों मन्त्रों के 'नारायण' ऋषि निश्चित होते हैं; क्योंकि उक्त तीनों मन्त्र नारायणोपनिषद् में मिलते हैं और नारायणोपनिषद् में आये हुए सभी मन्त्रों के नारायण ही ऋषि हैं अतः इन मन्त्रों के भी वे ही ऋषि सिद्ध होते हैं। धर्मसिन्धुकार ने भी नारायण को ही उक्त मन्त्रों का ऋषि माना है।

'सूर्यश्च....' और 'अग्निश्च....'— इन दो मन्त्रों में चौरासी-चौरासी अक्षर हैं। चौरासी अक्षर का प्रकृति छन्द होता है, अतः उक्त दो मन्त्रों का 'प्रकृति' ही छन्द है। 'आपः पुनन्तु.' इत्यादि मन्त्र में दो अनुष्टुप् छन्द हैं। अनुष्टुप् छन्द में कुल बत्तीस अक्षर होते हैं। प्रस्तुत मन्त्र के पहले अनुष्टुप् में यद्यपि तैंतीस अक्षर हैं तथापि पूर्वोक्त नियमानुसार एक अक्षर अधिक होने पर वह 'भुरिक्' अनुष्टुप् होगा। इस प्रकार वह अनुष्टुप् छन्द ही रहा। उक्त मन्त्र के दूसरे छन्द में ठीक-ठीक बत्तीस अक्षर हैं। किसी-किसी प्रति में 'यदुच्छिष्टमभोज्यं च' ऐसा पाठ मिलता है; किंतु तैत्तिरीय आरण्यकमें 'च' नहीं है। अतः प्रस्तुत पुस्तक में भी वैसा ही पाठ रखा गया है। 'सूर्यश्च.' इस मन्त्र में सूर्य, मन्यु, मन्युपति तथा रात्रि से प्रार्थना की गयी है; अतः उक्त मन्त्र के ये चारों ही देवता हैं, केवल 'सूर्य' ही नहीं। इसी प्रकार 'अग्निश्च.' मन्त्र के भी अग्नि, मन्यु, मन्युपति तथा अहः देवता हैं, केवल अग्नि ही नहीं। '*आपः पुनन्तु.*' इस मन्त्र के केवल 'आपः' (जल) ही देवता नहीं हैं, अपितु पृथ्वी, वनस्पति और ब्रह्म भी देवता हैं; क्योंकि प्रस्तुत मन्त्र में इन सभी देवताओं से अभ्यर्थना की गयी है। किसी-किसी प्रति में 'सूर्यश्च.' और 'अग्निश्च.'— इन मन्त्रों में 'यत्किञ्च' के स्थान में 'यत्किञ्चित्' यह पाठ है तथा 'इदमहं माममृतयोनौ' की जगह 'इदमहममृतयोनौ' ऐसा पाठ है, परन्तु वह अशुद्ध है; क्योंकि तैत्तिरीय आरण्यक में 'यत्किञ्च' इत्यादि ही पाठ मिलता है।

आचमन-मन्त्रों के पश्चात् '*आपो हिष्ठा.*' इत्यादि मार्जन मन्त्र आता है। इस एक ही मन्त्र के अन्तर्गत तीन ऋचाएँ हैं और प्रत्येक ऋचा तीन-तीन चरणों की हैं,

प्रत्येक चरण में आठ-आठ अक्षर हैं, अतः लक्षण के अनुसार तीन गायत्री छन्दों में यह मन्त्र पूर्ण हुआ है । सर्वानुक्रमसूत्र से इस मन्त्र का गायत्री छन्द ही सिद्ध होता है । इसके सिन्धुद्वीप ऋषि और 'आपः देवता' यजुः सर्वानुक्रमसूत्र[८७] के ही अनुसार माने गये हैं ।

इसके बाद '*द्रुपदादिव*' मन्त्र आता है । इसका सर्वानुक्रम सूत्र इस प्रकार है— 'द्रुपदादिवानुष्टुबापी' इस सूत्र के अनुसार इसका अनुष्टुप् छन्द और आपः देवता है; किंतु ऋषि कौन है ? इसका सूत्र में उल्लेख नहीं है । प्राचीन प्रतियों में सर्वत्र 'कोकिलराजपुत्र' ऋषिका उल्लेख मिलता है, किंतु इसमें मूलभूत कोई श्रौत वचन नहीं है । यह मन्त्र यजुर्वेद के सौत्रामणी अध्याय का है, उस अध्याय के प्रायः सभी मन्त्रों के अश्वि, सरस्वती और इन्द्र ऋषि हैं, अतः प्रकरणप्राप्त उक्त ऋषि ही इस मन्त्र के निश्चित किये गये हैं । इस मन्त्र के प्रथम चरण में यद्यपि नौ अक्षर हैं तथापि पूर्वोक्त 'ऊनाधिकेनैकेव निचद्‌भुरिजौ' इस नियम के अनुसार यह [भुरिक्] अनुष्टुप् छन्द ही है । अधिकांश प्रतियों में इसके विनियोग में 'सौत्रामण्यवभृथे' ऐसा पाठ देखा जाता है, परंतु संध्या-कर्म में ऐसा उल्लेख ठीक नहीं जान पड़ता है, क्योंकि यहाँ सौत्रामणी-यज्ञ का स्नान नहीं है । इस मन्त्र से अभिमन्त्रित जल को सिर पर धारण करने की परम्परा देखी जाती है । अतः 'शिरःसेके' विनियोगः — यही लिखना उचित है । इसलिये इस प्रति में ऐसा ही पाठ रखा गया है ।

इसके पश्चात् पुनः 'ऋतं च.' इत्यादि मन्त्र आता है । इसमें सब बातें पूर्ववत् हैं, केवल विनियोग में थोड़ा-सा अन्तर है । पहली बार उपस्पर्शन (आचमन) में विनियोग है और दूसरी बार अघमर्षणमें ।

तत्पश्चात् '*अन्तश्चरसि.*' इत्यादि मन्त्र है । यह कात्यायन-परिशिष्ट सूत्र का मन्त्र है, इसके ऋषि आदि के विषय में कोई वचन उपलब्ध नहीं होता । प्रायः सभी प्रतियों में इसके तिरश्चीन ऋषि, अनुष्टुप् छन्द और आपः देवता उपलब्ध होते हैं । अनुष्टुप् छन्द लक्षण के अनुसार यहाँ ठीक ही है । मन्त्र के अर्थ पर विचार करने से इसके देवता 'आपः' हैं— यह भी स्पष्ट हो जाता है । रह गयी ऋषि की बात, सो

---

[८७] आपो ह्याप सिन्धुद्वीपस्तृचं गायत्रम् । (यजुः सर्वानुक्रमसूत्र)

इसका कोई दूसरा ऋषि है— इस बात का प्रमाण नहीं मिलता, अतः प्राचीन मान्यता के अनुसार तिरश्चीन ऋषि ही निश्चित किये गये हैं ।

इसके अनन्तर सूर्यार्घ्यदान में गायत्री मन्त्र का विनियोग सहित उल्लेख हुआ है, इसके ऋषि आदि का विचार प्राणायाम मन्त्र में ही हो गया है ।

इसके बाद सूर्योपस्थान के चार मन्त्र आते हैं । पहले मन्त्र (उद्वयं तमसस्परि इत्यादि) के 'उद्वयं सौर्यनुष्टुप् प्रस्कण्वस्य' (यजुः स. सूत्र) इस सूत्र के अनुसार प्रस्कण्व ऋषि, अनुष्टुप् छन्द और सूर्य देवता हैं । यद्यपि इसके 'स्वः पश्यन्त उत्तरम्' इस द्वितीय चरण में सात ही अक्षर हैं तथापि व्यूह की रीति से 'स्वः' के स्थान में 'सुवः' पढ़ने से आठ अक्षर हो जाने पर अनुष्टुप् का पूरा निर्वाह हो जाता है । कहीं-कहीं इस मन्त्र के 'हिरण्यस्तूप' ऋषि लिखे गये हैं, किंतु उसमें भूल ही कारण हो सकती है ।

दूसरे मन्त्र (उदुत्यं जात.) के भी 'उदुत्यं प्रस्कण्वः सौरी गायत्री' (यजुः स. सू.) इस सूत्र के अनुसार 'प्रस्कण्व' ही ऋषि हैं । छन्द गायत्री और देवता सूर्य हैं । यद्यपि इसके तीसरे पाद में सात ही अक्षर हैं; अतः गायत्री-छन्द के नियम से विरुद्ध पड़ता है तो भी पूर्वोक्त नियमानुसार एक अक्षर कम होने से यह 'निचृद् गायत्री' छन्द ही रहा ।

तीसरा मन्त्र 'चित्रं देवानाम्.' इत्यादि है । इसके ऋषि के स्थान में कहीं-कहीं 'कौत्स' का उल्लेख मिलता है; परंतु 'कुत्स आङ्गिरस ऋषि' लिखना ही ठीक है; क्योंकि यजुःसर्वानुक्रम सूत्र[८८] में ऐसा ही उल्लेख है । इसका छन्द 'त्रिष्टुप्' और देवता 'सूर्य' हैं । यद्यपि सूत्र में देवता का उल्लेख नहीं है तो भी प्रकरण प्राप्त सूर्य ही देवता माने गये हैं तथा मन्त्रार्थ पर विचार करने से भी यही निश्चित होता है । ग्यारह अक्षरों के चार पादों का एक 'त्रिष्टुप्' छन्द होता है, इसका इस छन्द में पूर्णतया निर्वाह हुआ है । उपस्थान का चौथा मन्त्र है 'तच्चक्षुः' इत्यादि । इसका सर्वानुक्रमसूत्र में इस प्रकार उल्लेख है—

'तच्चक्षुः पुर उष्णिक् सौरी । ऋचं वाचं पञ्चाध्यायी दध्यङ्ङाथर्वणो ददर्श ।'

---

[८८] चित्र कुत्स आङ्गिरसस्त्रिष्टुभम् । (यजुः सर्वानुक्रमसूत्र)

इसके अनुसार इस मन्त्र के दध्यङ्ङाथर्वण ऋषि, पुर उष्णिक् छन्द और सूर्य देवता हुए। देवता और ऋषि में तो कोई विवाद ही नहीं है; किंतु इस मन्त्र का पुर उष्णिक् छन्द ठीक नहीं जान पड़ता; क्योंकि इस छन्द का लक्षण यहाँ संघटित नहीं होता, इसलिये सूत्र की व्याख्या में भाष्यकार श्रीअनन्तदेव जीने इस पाठ को जीर्ण बताकर दूसरा शुद्ध पाठ लिखा है। प्रमाण के लिये हम इस सूत्र की व्याख्या का वह आवश्यक अंश उद्धृत कर देते हैं— 'तच्चक्षुः पुर उष्णिक् सौरी' इति तु जीर्णः पाठः स तु नोपपद्यते। अस्यां हि सप्तषष्टिरक्षराणि भवन्ति। पुर उष्णिक् चाष्टाविंशत्यक्षरा 'आद्यश्चेत् पुर उष्णिक् इति' (सूत्रेण) अतस्तल्लक्षणाभावान्नेयं पुर उष्णिक्। तेन तच्चक्षुर्ब्राह्मी त्रिष्टुप् सौरीति (युक्तः) पाठः, तच्चक्षुरित्येषा सौरी सूर्यदेवता का एकाधिका ब्राह्मी त्रिष्टुप्। व्यूहेनात्यष्ठिर्वा। पुर उष्णिक् तु कथमपि न घटत एव। अर्थात् 'तच्चक्षुः पुर उष्णिक् सौरी' यह जीर्ण पाठ है, यह युक्त नहीं जान पड़ता; क्योंकि इस मन्त्र में सड़सठ अक्षर होते हैं और 'आद्यश्चेत् पुर उष्णिक्' इस सूत्र के नियमानुसार 'पुर उष्णिक्' छन्द अट्ठाईस अक्षरों का होता है। अतः लक्षण-समन्वय न होने के कारण यह मन्त्र 'पुर उष्णिक्' छन्द नहीं है। इस कारण यहाँ 'तच्चक्षुर्ब्राह्मी त्रिष्टुप् सौरी' ऐसा पाठ उचित है। इसका अर्थ यह है— 'तच्चक्षुः' यह मन्त्र सौर-सूर्यदेवता सम्बन्धी है और इसमें एकाधिका ब्राह्मी त्रिष्टुप् छन्द है। अथवा व्यूह के द्वारा यह 'अत्यष्टि' छन्द भी हो सकता है, परन्तु 'पुर उष्णिक्' तो किसी प्रकार भी संघटित नहीं होता।

इसके पश्चात् '*तेजोऽसि.*' इत्यादि मन्त्र है। इसमें दो मन्त्र हैं। 'तेजोऽसि.... मसि।' यहाँतक एक मन्त्र है और 'धांम नामासि' से लेकर दूसरा मन्त्र है। इसके ऋषि आदि के विषय में सर्वानुक्रमसूत्र में इस प्रकार लिखा है— 'तेजोऽसि धामाज्यं परमेष्ठिप्रजापत्यो दर्शपूर्णमासमन्त्राणामृषिर्देवा वा प्राजापत्याः।' अर्थात् 'तेजोऽसि.' इस मन्त्र के परमेष्ठी प्राजापत्य ऋषि हैं। ये ही दर्शपूर्णमास-मन्त्रों के ऋषि हैं। देवता आज्य अथवा प्राजापत्य हैं। इसके अनुसार इन मन्त्रों के ऋषि तो परमेष्ठी प्राजापत्य हैं ही, छन्द का उल्लेख नहीं है, देवता आज्य या प्राजापत्य हैं,

परंतु इस मन्त्र के द्वारा सूर्य देवता की ही प्रार्थना होती है, अतः सूर्य ही इसका देवता होना चाहिये ।

सूत्रकार ने भी विकल्प से प्राजापत्य देवता माना है । प्राजापत्य शब्द से प्रजापति के अपत्यरूप से यहाँ सूर्य का ही ग्रहण जान पड़ता है ।

निरुक्त में लिखा है—

'यत्काम ऋषिर्यस्यां देवतायामार्थपत्यमिच्छन् स्तुतिं प्रयुङ्क्ते तद्दैवतः स मन्त्रो भवति ।'

अर्थात् मन्त्र का ऋषि जिस कामना से अपने मनोरथ की पूर्ति की इच्छा रखते हुए जिस देवता के प्रति स्तुति का प्रयोग करता है, वही उस मन्त्र का देवता होता है । इस दृष्टि से भी सूर्य ही देवता निश्चित होते हैं ।

इन दोनों मन्त्रों के छन्द के सम्बन्ध में उक्त सर्वानुक्रमसूत्र की व्याख्या में इस प्रकार लिखा है—

'तेजोऽसि त्रिष्टुब् आसुरी पङ्क्तिर्वा । धाम नाम एकविंशत्यक्षरा ऋगुष्णिक् ।'

इसके अनुसार यहाँ यजुस्त्रिष्टुप् और ऋगुष्णिक्— ये दो छन्द निश्चित होते हैं । ग्यारह अक्षरों का 'यजुस्त्रिष्टुप्' छन्द होता है और इक्कीस 'अक्षरों' का 'ऋगुष्णिक्' । 'इन दोनों का यहाँ निर्वाह हुआ है ।'

'गायत्र्यस्येकपदी' इस मन्त्र के विवस्वान् ऋषि हैं । स्वराण्महापङ्क्ति छन्द है और परमात्मा देवता हैं । यद्यपि पद्धतिकार आदि इस मन्त्र का विमल ऋषि मानते हैं तथापि— 'इषे त्वादि खं ब्रह्मान्तं विवस्वानपश्यत्' इस यजुः सर्वानुक्रम सूत्र के अनुसार सम्पूर्ण यजुः संहिता के विवस्वान् ऋषि सिद्ध होते हैं । अतः यजुःसंहिता के जिन मन्त्रों के विषय में किसी अन्य विशेष ऋषि का उल्लेख न मिले उनके विवस्वान् ऋषि मानने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती । इसके अतिरिक्त—

'आदित्यानीमानि शुक्लानि यजूंषिवाजसनेयेन याज्ञवल्क्येनाख्यायन्ते' ।

इस शतपथ ब्राह्मणवाक्य के अनुसार ब्राह्मण-मन्त्र भी आदित्य से ही प्राप्त हुए हैं; अतः उपर्युक्त मन्त्र के ऋषि विवस्वान् ही निश्चित जान पड़ते हैं। सम्भव है, विवस्वान् के स्थान में ही विमल पाठ हो गया हो। किसी-किसी प्रति में इस मन्त्र का 'पङ्क्ति' छन्द लिखा है, पर पङ्क्ति छन्द चालीस अक्षरों का होता है और इसमें कुल पचास अक्षर हैं, अतः पङ्क्ति छन्द नहीं है; इसके अड़तालीस अक्षरों से महापङ्क्ति छन्द होता है, रह जाते हैं दो अक्षर— सो उनके रहने पर 'द्वाभ्यां विराट्स्वराजौ' के नियमानुसार यह स्वराण्महापङ्क्ति छन्दं हुआ। गायत्री परमात्मा का ही नाम है तथा गायत्री मन्त्र से परमात्मा का ही स्तवन होता है; अतः इसका देवता परमात्मा ही है।

विश्वतश्चक्षुः — सर्वानुक्रमसूत्र[८९] के अनुसार इसके भौवन ऋषि, त्रिष्टुप् छन्द और विश्वकर्मा देवता हैं। ग्यारह अक्षरों के चार पादों का त्रिष्टुप् छन्द होता है, उसका इसमें पूर्णतया निर्वाह हुआ है।

'देवा गातुविदो.' इस मन्त्र से भी सर्वानुक्रमसूत्र[९०] के ही अनुसार मनसस्पति ऋषि हैं, विराट् अनुष्टुप् छन्द है, वात देवता हैं। अनुष्टुप् छन्द में ३२ अक्षर होते हैं। प्रस्तुत मन्त्र में कुल तीस अक्षर हैं, 'अतः द्वाभ्यां विराट्स्वराजौ' के नियमानुसार दो अक्षर कम होने पर यह विराट् अनुष्टुप् छन्द हुआ।

---

[८९] विश्वतश्चक्षुवैश्वकर्मणी त्रिष्टुभो विश्वकर्मा भावनः । (यजुः सर्वानुक्रमसूत्र)

[९०] देवा मनसस्पतिर्वातदेवत्या विराजम् । (यजुः सर्वानुक्रमसूत्र)

॥श्रीः॥

नित्योपासना एवं देवपूजापद्धति

वागीशाद्याः सुमनसः सर्वार्थानामुपक्रमे ।
यं नत्वा कृतकृत्या स्युस्तं नमामि गजाननम् ॥१॥
अथोच्यते द्विजातीनां नित्योपासनपद्धतिः ।
यत्कृत्वा पुण्यमाप्नोति तस्मान्नित्यं समाचरेत् ॥२॥

सब कार्यों -प्रयोजनों में देवगुरु बृहस्पति प्रभृति देवता लोग जिसको नमस्कार करके कृतकृत्य होते हैं, उस गजानन गणेशजी को मैं प्रणाम करता हूँ। तदन्तर द्विजों के लिये यह नित्योपासनापद्धति प्रस्तुत करता हूँ, जो नित्य करणीय एवं पुण्यप्रद है।

कर-दर्शन

प्रत्येक मनुष्य प्रातःकाल [९०क] ब्राह्ममुहूर्त में उठकर सर्वप्रथम अपने दोनों हाथों का दर्शन करते हुए नीचे लिखे हुए मन्त्र बोले—

कराग्रे वसते लक्ष्मीः करमध्ये सरस्वती ।
करमूले स्थितो ब्रह्मा प्रभाते करदर्शनम् ॥ (आचारप्रदीप)

'मनुष्य के दोनों हाथों के अग्रभाग में लक्ष्मी, मध्य में सरस्वती और मूल में ब्रह्मा स्थित है इसलिये प्रातःकाल सर्वप्रथम अपने दोनों हाथों की हथेलियों का दर्शन करना चाहिये।'

पृथिवी-प्रार्थना

इसके बाद आगे लिखा श्लोक पढ़कर पृथिवी माता को हाथ से स्पर्श करके प्रणाम करें और पादस्पर्श के लिये क्षमा माँगते हुए पृथिवी पर पैर धरें।

[९०क] सूर्योदय से एक घण्टा पहले ब्राह्ममुहूर्त होता है।

समुद्रमेखले देवि ! पर्वतस्तनमण्डले ।
विष्णुप्रिये नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे ॥

हे समुद्ररूपी मेखला (करधनी) को धारण करनेवाली ! और पर्वतरूप स्तनों से युक्त, हे विष्णु की पत्नी पृथिवी देवि ! तुम को नमस्कार है । तुम मेरे पादस्पर्श को क्षमा करो ।'

फिर हाथ, मुख धोकर अपने गुरु, माता, पिता आदि गुरुजनों को प्रणाम करें । फिर गणेश आदि देवताओं का प्रातःस्मरण करें ।

प्रातःस्मरण[१० ख]

१. *गणेशजी की वन्दना*

प्रातः स्मरामि गणनाथमनाथबन्धुं सिन्दूरपूरपरिशोभितगण्डयुग्मम् ।
उद्दण्डविघ्नपरिखण्डनचण्डदण्डमाखण्डलादिसुरनायकवृन्दवन्द्यम् ॥१ ॥
प्रातर्नमामि चतुराननवन्द्यमानमिच्छानुकूलमखिलं च वरं ददानम् ।
तं तुन्दिलं द्विरसनाधिपयज्ञसूत्रं पुत्रं विलासचतुरं शिवयोः शिवाय ॥२ ॥
प्रातर्भजाम्यभयदं खलु भक्तशोकदावानलं गणविभुं वरकुञ्जरास्यम् ।
अज्ञानकाननविनाशनहव्यवाहमुत्साहवर्द्धनमहं सुतमीश्वरस्य ॥३ ॥
श्लोकत्रयमिदं पुण्यं सदा साम्राज्यदायकम् ।
प्रातरुत्थाय सततं यः पठेत्प्रयतः पुमान् ॥ (सद्धर्मचिन्तामणि)

२. *शिवजी की स्तुति*

प्रातः स्मरामि भवभीतिहरं सुरेशं गङ्गाधरं वृषभवाहनमम्बिकेशम् ।
खट्वाङ्गशूलवरदाभयहस्तमीशं संसाररोगहरमौषधमद्वितीयम् ॥१ ॥

[१० ख] प्रातःस्मरण शय्या पर भी किया जा सकता है ।

प्रातर्नमामि गिरिशं गिरजार्धदेहं सर्गस्थितिप्रलयकारणमादिदेवम् ।
विश्वेश्वरं विजितविश्वमनोभिरामं संसाररोगहरमौषधमद्वितीयम् ॥२॥
प्रातर्भजामि शिवमेकमनन्तमाद्यं वेदान्तवेद्यमनघं पुरुषं महान्तम् ।
नामादिभेदरहितं च विकारशून्यं संसाररोगहरमौषधमद्वितीयम् ॥३॥
प्रातः समुत्थाय शिवं विचिन्त्य श्लोकत्रयं येऽनुदिनं पठन्ति ।
ते दुःखजातं बहुजन्मजातं हित्वा पदं यान्ति तदेव शम्भोः ॥४॥

(सद्धर्मचिन्तामणि)

३. नारायण-स्तुति

प्रातः स्मरामि भवभीतिमहार्तिशान्त्यै नारायणं गरूडवाहनभञ्जनाभम् ।
ग्राहाभिभूतवरवारणमुक्तिहेतुं चक्रायुधं तरुणवारिजपत्रनेत्रम् ॥१॥
प्रातर्नमामि मनसा वचसा च मूर्ध्ना पादारविन्दयुगलं परमस्य पुंसः ।
नारायणस्य नरकार्णवतारणस्यपारायणप्रवणविप्रपरायणस्य ॥२॥
प्रातर्भजामि भजतामभयङ्करं तं प्राक्सर्वजन्मकृतपापभयापहत्यै ।
यो ग्राहवक्त्रपतिताङ्घ्रिगजेन्द्रघोरशोकप्रणाशनकरो घृतशङ्खचक्रः ॥३॥
श्लोकत्रयमिदं पुण्यं प्रातः प्रातः पठेन्नरः ।
लोकत्रयगुरुस्तस्मै दद्यादात्मपदं हरिः ॥४॥ (आचारमयूख)

४. सूर्य-स्तुति

प्रातः स्मरामि खलु तत्सवितुर्वरेण्यं रूपं हि मण्डलमृचोऽथ तनुर्यजूंषि ।
सामानि यस्य किरणाः प्रभवादिहेतुं ब्रह्माहरात्मकमलक्ष्यमचिन्त्यरूपम् ॥१॥
प्रातर्नमामि तरणिं तनुवाङ्मनोभिर्ब्रह्मेन्द्रपूर्वकसुरैविबुधैर्नुतमर्चितं च ।
वृष्टिप्रमोचनविनिग्रहहेतुभुतं त्रैलोक्यपालनपरं त्रिगुणात्मकं च ॥२॥

प्रातर्भजामि सवितारमनन्तशक्तिं पापौघशत्रुभयरोगहरं परं च ।
तं सर्वलोककलनात्मककालमूर्त्तिं गोकण्ठबन्धनविमोचनमादिदेवम् ॥३॥
श्लोकत्रयमिदं भानोः प्रातः प्रातः पठेत्तु यः ।
सर्वव्याधिविनिर्मुक्तः परं सुखमवाप्नुयात् ॥४॥ (सद्धर्मचिन्तामणि)

५. *दुर्गा-स्तुति*

प्रातः स्मरामि शरदिन्दुकरोज्ज्वलाभां सद्रत्नवन्मकरकुण्डलहारभूषाम् ।
दिव्यायुधोर्जितसुनीलसहस्रहस्तां रक्तोत्पलाभचरणां भवतीं परेशाम् ॥१॥
प्रातर्नमामि महिषासुरचण्डमुण्डशुम्भासुरप्रमुखदैत्यविनाशदक्षाम् ।
ब्रह्मेन्द्ररुद्रमुनिमोहनशीललीलां चण्डीं समस्तसुरमूर्तिमनेकरूपाम् ॥२॥
प्रातर्भजामि भजतामभिलाषदात्रीं धात्रीं समस्तजगतां दुरितापहन्त्रीम् ।
संसारबन्धनविमोचनहेतुभूतां मायां परां समधिगम्य परस्य विष्णोः ॥३॥
श्लोकत्रयमिदं देव्याश्चण्डिकायाः पठेन्नरः ।
सर्वान् कामानवाप्नोति विष्णुलोके महीयते ॥४॥ (सद्धर्मचिन्तामणि)

६. *राम-स्तुति*

प्रातः स्मरामि रघुनाथमुखारविन्दं मन्दस्मितं मधुरभाषि विशालभालम् ।
कर्णावलम्बिचलकुण्डलशोभिगण्डं कर्णान्तदीर्घनयनं नयनाभिरामम् ॥१॥
प्रातर्भजामि रघुनाथकरारविन्दं रक्षोगणाय भयदं वरदं निजेभ्यः ।
यद्राजसंसदि विभज्य महेशचापं सीताकरग्रहणमङ्गलमाप सद्यः ॥२॥
प्रातर्नमामि रघुनाथपदारविन्दं वज्राङ्कुशादिशुभरेखि सुखावहं मे ।
योगीन्द्रमानसमधुव्रतसेव्यमानं शापापहं सपदि गौतमधर्मपत्न्याः ॥३॥
प्रातर्वदामि वचसा रधुनाथनाम वाग्दोषहारि सकलं शमलं निहन्ति ।
यत्पार्वती स्वपतिना सह मोक्षकामा प्रीत्या सहस्रहरिनामसमं जजाप ॥४॥

प्रातः श्रये श्रुतिनुतां रघुनाथमूर्तिं नीलाम्बुदोत्पलसितेतररत्ननीलाम् ।
आमुक्तमौक्तिकविशेषविभूषणाढ्यां ध्येयां समस्तमुनिभिर्जनमुक्तिहेतुम् ॥५॥
यः श्लोकपञ्चकमिदं प्रयतः पठेद्धि नित्यं प्रभातसमये पुरुषः प्रबुद्धः ।
श्रीरामकिङ्करजनेषु स एव मुख्यो भूत्वा प्रयाति हरिलोकमनन्यलभ्यम् ॥६॥

(आह्निककर्मप्रकाश)

७. *ऋषियों की प्रार्थना*

भृगुर्वसिष्ठः क्रतुरङ्गिराश्च मनुः पुलस्त्यः पुलहश्च गौतमः ।
रैभ्यो मरीचिश्च्यवनश्च दक्षः कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम् ॥१॥
सनत्कुमारः सनकः सनन्दनः सनातनोऽप्यासुरिपिङ्गलौ च ।
सप्त स्वराः सप्त रसातलानि कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम् ॥२॥
सप्तार्णवाः सप्त कुलाचलाश्च सप्तर्षयो द्वीपवनानि सप्त ।
भूरादिकृत्वा भुवनानि सप्त कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम् ॥३॥
पृथिवी सगन्धा सरसास्तथापः स्पर्शी च वायुर्ज्वलितं च तेजः ।
नभः सशब्दं महता सहैव कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम् ॥४॥
इत्थं प्रभाते परमं पवित्रं पठेत्स्मरेद्वा शृणुयाच्च तद्वत् ।
दुःस्वप्ननाशस्त्विह सुप्रभातं भवेच्च नित्यं भगवत्प्रसादात् ॥५॥

८. *पुण्यश्लोकजनों की प्रार्थना*

पुण्यश्लोको नलो राजा पुण्यश्लोको युधिष्ठिरः ।
पुण्यश्लोका च वैदेही पुण्यश्लोको जनार्दनः ॥१॥
अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनूमांश्च विभीषणः ।
कृपः परशुरामश्च सप्तैते चिरजीविनः ॥२॥

सप्तैतान् संस्मरेन्नित्यं मार्कण्डेयमथाष्टमम् ।
जीवेद्वर्षशतं सोऽपि सर्वव्याधिविवर्जितः ॥३॥
अहल्या द्रौपदी सीता तारा मन्दोदरी तथा ।
पञ्चकं ना-(नरः) स्मरेन्नित्यं महापातकनाशनम् ॥४॥
उमा उषा च वैदेही रमा गङ्गेति पञ्चकम् ।
प्रातरेव पठेन्नित्यं सौभाग्यं वर्धते सदा ॥५॥
सोमनाथो वैजनाथो धन्वन्तरिरथाश्विनौ ।
पञ्चैतान्यः स्मरेन्नित्यं व्याधिस्तस्य न जायते ॥६॥
हरं हरिं हरिश्चन्द्रं हनूमन्तं हलायुधम् ।
पञ्चकं वै स्मरेन्नित्यं घोरसङ्कटनाशनम् ॥७॥
रामं स्कन्दं हनूमन्तं वैनतेयं वृकोदरम् ।
पञ्चैतान् संस्मरेन्नित्यं भवबाधा विनश्यति ॥८॥
रामलक्ष्मणौ सीता च सुग्रीवो हनुमान् कपिः ।
पञ्चैतान् स्मरतो नित्यं महाबाधा प्रमुच्यते ॥९॥ (पद्मपुराण)

९. नवग्रहों की स्तुति

ब्रह्मा मुरारिस्त्रिपुरान्तकारी भानुः शशी भूमिसुतो बुधश्च ।
गुरुश्च शुक्रः शनिराहुकेतवः कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम् ॥ (वामनपुराण)

शौच-विधि

यज्ञोपवीत कंठीकर दाहिने कान में लपेट वस्त्र या आधी धोती से सिर ढकें। वस्त्र के अभाव में जनेऊ को सिर के ऊपर से लेकर बायें कान के पीछे करें। जलपात्र बायें रख दिन में उत्तर तथा रात्रि में दक्षिण की ओर मुख कर नीचे लिखा मन्त्र बोलकर, मौन हो मल-त्याग करें।

गच्छन्तु ऋषयो देवाः पिशाचा ये च गुह्यकाः ।
पितृभूतगणाः सर्वे करिष्ये मलमोचनम् ॥ (नारद पुराण)

पात्र से जल ले, बायें हाथ से लिंग धोकर, उसमें एक बार, पश्चात् गुदा धोकर, उसमें तीन बार मिट्टी लगा जल से शुद्ध करें। बायें हाथ को अलग रखते हुए दाहिने हाथ से लाँग (पिछटा) लगाकर उसी हाथ में पात्र लें, मिट्टी के तीन भाग करें, प्रथम से बायाँ हाथ दस बार, दूसरे से दोनों सात बार और तीसरे से पात्र को तीन बार, पश्चात् बायाँ पैर, दाहिना पैर एक-एक बार धोवे, पात्र शुद्ध करके बची हुई मिट्टी धो दें। सूर्योदय से पहले पूर्व में, पश्चात् उत्तर की ओर मुख कर बायीं ओर बारह कुल्ले करें।

दिवा-शौचस्य निश्यर्धं पथि पादो विधीयते ।
आर्तः कुर्याद् यथाशक्ति शक्तः कुर्याद् यथोचितम् ॥ (आदित्य पुराण)

दिन से रात्रि में आधी, यात्रा में चौथाई, तथा आतुरकाल में यथाशक्ति शुद्धि करनी चाहिये, किन्तु शक्ति रहते हुए ऊपर लिखे अनुसार कर्म करें।

पुरतः सर्वदेवाश्च दक्षिणे पितरस्तथा ।
ऋषयः पृष्ठतः सर्वे वामे गण्डूषमाचरेत् ॥ (प्रयोग-पारिजात)

सामने देवता, दक्षिण में पितर और पीठ पीछे ऋषियों का निवास रहता है, इसलिये कुल्ला बायीं ओर करें।

कुर्यात् द्वादश गण्डूषान् पुरीषोत्सर्जने ततः ।
मूत्रोत्सर्गे तु चतुरो भोजनान्ते तु षोडश ॥ (आश्वलायन)

मलत्याग के बाद बारह, मूत्र त्याग के बाद चार और भोजन के बाद सोलह कुल्ले करें।

दन्तधावन विधि

मुखशुद्धि किये बिना मन्त्र फलदायक नहीं होते। इसलिये सूर्योदय से पहिले पूर्व, पश्चात् उत्तर अथवा दोनों समय ईशान (पूर्वोत्तर कोण) की ओर मुखकर

दतुअन करनी चाहिये । संक्रान्ति, व्यतिपात, व्रत, श्राद्ध के दिन, प्रतिपदा, षष्ठी, अष्टमी, नवमी, चतुर्दशी, आमावस्या, पूर्णिमा और रविवार को दतुअन नहीं करनी चाहिये । इन दिनों में मुखशुद्धि के लिये बारह कुल्ले अधिक करें ।

मध्यमानामिकाभ्यां च वृद्धाङ्गुष्ठेन च द्विजः ।
दन्तस्य धावनं कुर्यान्न तर्जन्या कदाचन ॥ (पद्मपुराण)

मध्यमा, अनामिका अथवा अँगूठे से दाँत साफ करें किन्तु तर्जनी उँगली से कभी न करें ।

क्षौरविधि

एकादशी, अमावस्या, चतुर्दशी, पूर्णिमा, संक्रान्ति, व्यतिपात, व्रत, श्राद्ध, रवि, मंगल तथा शनि के दिन क्षौर न करायें ।

भानुर्मासं क्षपयति तथा सप्त मार्तण्डसूनुः
भौमश्चाष्टौ वितरति शुभान् बोधनः पञ्च मासान् ॥
सप्तेवेन्दुर्दश सुरगुरुः शुक्र एकादशेति
प्राहुर्गर्गप्रभृतिमुनयः क्षौर-कार्येषु नूनम् ॥ (वाराही-संहिता)

गर्गादि मुनियों ने कहा है कि रविवार को क्षौर कराने से एक, मंगलवार को आठ और शनिवार को सात मास की आयु क्षीण होती है, बुधवार को पाँच, सोमवार को सात, गुरुवार को दस और शुक्रवार को ग्यारह मास की आयु बढ़ती है । (गृहस्थ को सोमवार एवम् गुरुवार को भी क्षौर नहीं कराना चाहिये ।)

तैलाभ्यङ्ग-विधि

षष्ठी, एकादशी, द्वादशी, अमावस्या, पूर्णिमा तथा रवि, मंगल, गुरु और शुक्रवार को तेल न लगायें किन्तु सुगंधित तेल लगाया जा सकता है ।

तैलाभ्यङ्गे रवौ तापः सोमे शोभा कुजे मृतिः ।
बुधे धनं गुरौ हानिः शुक्रे दुःखं शनौ सुखम् ॥

रवौ पुष्पं गुरौ दुर्वा भौमवारे च मृत्तिका ।
गोमयं शुक्रवारे च तैलाभ्यङ्गे न दोषभाक् ॥
नित्यमभ्यङ्गके चैव वासिते नैव दूषणम् ॥ (ज्योतिपसार)

रविवार को तेल लगाने से ताप, मंगलवार को मृत्यु, गुरुवार को हानि तथा शुक्रवार को दुख होता है। सोमवार को शोभा, बुधवार को धन और शनिवार को सुख होता है। यदि निषिद्धवारों में तेल लगाना हो, तो रविवार को तेल में पुष्प, गुरुवार को दूर्वा, मंगलवार को मृत्तिका और शुक्रवार को गोबर डालकर लगायें, इसमें दोष नही होता। सुगंधित तेल तथा प्रतिदिन तेल लगाने वालों को भी दोष नहीं लगता।

अयन—मकर संक्रान्ति से मिथुन संक्रान्ति (माघ से आषाढ़) तक "उत्तरायण" सूर्य, और कर्क संक्रान्ति से धनु संक्रान्ति (श्रावण से पौष) तक "दक्षिणायन" सूर्य रहता है।

ऋतुएँ—वसन्त-मीन और मेषकी संक्रान्ति (चैत्र, वैशाख)। ग्रीष्म—वृष और मिथुन (ज्येष्ठ, आषाढ़)। वर्षा-कर्क और सिंह (श्रावण, भाद्रपद)। शरद्-कन्या और तुला (आश्विन, कार्तिक)। हेमन्त-वृश्चिक और धनु (अगहन, पौष)। शिशिर-मकर और कुम्भ (माघ, फाल्गुन) इस प्रकार छः ऋतुएँ हैं।

सङ्कल्प

स्नान, दान, देवपूजन आदि के आरम्भ में सङ्कल्प करना चाहिये। दाये हाथ में केवल जल या जल-पुष्प आदि लें, नीचे लिखे सङ्कल्प में 'अमुक' के स्थान पर उसके बाद जो शब्द है, उसका विशेष नाम पञ्चाङ्ग आदि में देखकर बोलना चाहिये।

ब्राह्मण नाम के अन्त में 'शर्मा', क्षत्रिय 'वर्मा', वैश्य 'गुप्त' और शूद्र 'दास' कहें। श्राद्धतर्पणादि में पितरों के नाम के अन्त में भी इसी प्रकार बोलें—

ॐ तत्सदद्य श्रीमद्भगवतो महापुरुषस्य विष्णोराज्ञया प्रवर्त्तमानस्य ब्रह्मणोऽह्नि द्वितीयपरार्द्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे सप्तमे वैवस्तमन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथमचरणे जम्बूद्वीपे भरतखण्डे भारते वर्षे बौद्धावतारे आर्या-

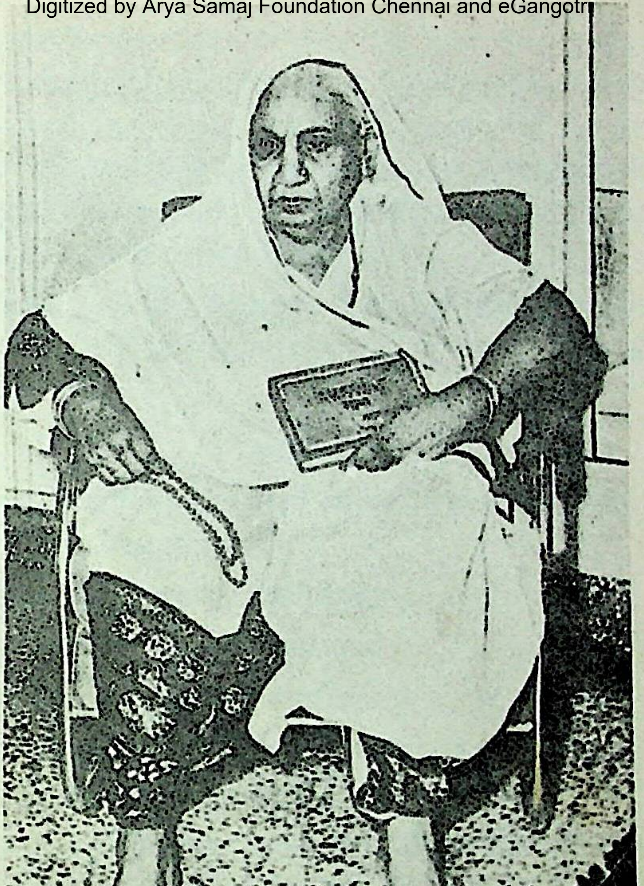

पूज्या दादीजी ज्वालादेवी सिंघानिया

निर्वाण— ज्येष्ठ कृष्ण ५, सम्वत् २०२२

गुरुवार दिनांक- २०५६५

वर्तैकदेशान्तर्गते (अमुक) देशे, पुण्य (अमुक) क्षेत्रे, (अमुक) ग्रामे, विक्रमसम्वत्सरे (अमुक) संख्यके, शालिवाहनशाके (अमुक) संख्यके, (अमुक) नाम्नि सम्वत्सरे, (अमुक) अयने, (अमुक) ऋतौ, (अमुक) मासे, (अमुक) पक्षे, (अमुक) तिथौ, (अमुक) नामाहं मम कायिक-वाचिक-मानसिक-ज्ञाताज्ञात-सकलदोषपरिहारार्थं श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तफलप्राप्त्यर्थं श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं (अमुक) काले (अमुक) सम्मुखे, (अमुक) कर्म करिष्ये कहकर जलादि छोड़े।

विशेष—यजमान के लिये सङ्कल्प करें तो यजमान का षष्ठ्यन्त गोत्र तथा नाम उच्चारण करें, 'मम' के स्थान पर "मम यजमानस्य" और अन्त में "करिष्ये" की जगह "करिष्यामि" कहें।

स्नान-विधि

मनुष्य के शरीर में प्रधान ९ छिद्र हैं। वे रात्रि में शयन करने से अपवित्र हो जाते हैं। इसलिये प्रातः स्नान अवश्य करें।

निपानादुद्धृतं पुण्यं ततः प्रस्रवणोदकम् ।
ततोऽसि सारसं पुण्यं ततो नादेयमुच्यते ।
तीर्थतोयं ततः पुण्यं गङ्गातोयं ततोऽधिकम् ॥(अग्निपुराण)

कुएँ के जल से झरने का, झरने से सरोवर का, सरोवर से नदी का, नदी से तीर्थ का और तीर्थ से गंगाजी का जल श्रेष्ठतर है।

संक्रान्ति, रविवार, सप्तमी, ग्रहण, सन्तानोत्पत्ति, मृताशौच, श्राद्ध, जन्मतिथि के दिन और अस्पृश्य से छुए जाने पर गरम जल से स्नान न करें। (वृद्ध मनु॰)

न दन्तधावनं कुर्याद् गङ्गागर्भे विचक्षणः ।
परिधेयाम्बराम्बूनि गङ्गास्रोतसि न त्यजेत् ॥ (पद्म पुराण)

गंगाजी में दतुअन न करें, स्नान के पश्चात् गंगाजी में भीगी धोती न बदलें और न ही निचोड़ें।

वासांसि धावतो यत्र पतन्ति जलबिन्दवः ।
तद्पुण्यं जलस्थानं रजकस्य शिलाङ्कितम् ॥ (वृ. पा. स्मृ.)

धोबी के कपड़ा धोने का पत्थर तथा जितनी दूरी तक उस वस्त्र का छींटा पड़ता है, उतना जल अपवित्र रहता है।

शौचकाल का वस्त्र बदलकर, स्नानीय स्थान पर जा, सव्य हो, नीचे लिखी वरुण-प्रार्थना करें।

अपामधिपतिस्त्वं च तीर्थेषु बसतिस्तव ।
वरुणाय नमस्तुभ्यं स्नानानुज्ञां प्रयच्छ मे ॥

पवित्र हो, स्नानार्थ सङ्कल्प कर, नीचे लिखे मन्त्र से दायें हाथ से कटि-पर्यन्त मृत्तिका लगायें। कटिके नीचे (बाँये हाथ से) दाहिने हाथ तथा मन्त्र से न लगायें।

अश्वक्रान्ते! रथक्रान्ते! विष्णुक्रान्ते! वसुंधरे! ।
मृत्तिके! हर मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम् ॥ (पद्म पुराण)

तीर्थावाहन

पुष्कराद्यानि तीर्थानि गङ्गाद्याः सरितस्तथा ।
आगच्छन्तु पवित्राणि स्नानकाले सदा मम ॥१॥
गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ।२॥
कुरुक्षेत्र-गया-गङ्गा-प्रभास-पुषकराणि च ।
एतानि पुण्यतीर्थानि स्नानकाले भवन्त्विह ॥३॥
त्वं राजा सर्वतीर्थानां त्वमेव जगतः पिता ।
याचितं देहि मे तीर्थं तीर्थराज नमोऽस्तु ते ॥४॥

गङ्गाजी की प्रार्थना

विष्णुपादाब्जसम्भूते! गङ्गे! त्रिपथगामिनि! ।
धर्मद्रवेति विख्याते! पापं मे हर जाह्नवी ॥१॥

गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयाद् योजनानां शतैरपि ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकञ्च गच्छति ॥२॥

नाभि पर्यन्त जल में जाकर, प्रवाह या सूर्य की ओर मुख करें । जल के ऊपर ब्रह्महत्या रहती है, इसलिये जल हिलाकर तीन गोते लगाने चाहिये ।

घर में स्नान करें तो "पूर्वाभिमुख हो" पात्र में जल ले वरुण, गङ्गा व तीर्थादि का आवाहन और सङ्कल्प कर, पैर तथा मुख धोकर, स्नान करें । शूद्र के हाथ से शरीर पर जल न गिरवायें ।

यथेच्छ स्नान कर चुकने पर नीचे लिखे मन्त्र से जल के बाहर एक अंजलि दें ।

यन्मया दूषितं तोयं मलैः शारीरसम्भवैः ।
तस्य पापस्य शुद्ध्यर्थं यक्ष्माणं तर्पयाम्यहम् ॥

(असमर्थ अवस्था में नीचे लिखी क्रिया से भी स्नान का फल होता है)

आ-मणेर्बन्धनाद्धस्तौ पादौ चाजानुतः शुची ।
प्रक्षाल्य चाचामेद्विद्वानन्तर्जानुकरो द्विजः ॥ (बृ. पा. स्मृ.)

मणिबन्ध (पहुँचे) तक हाथ तथा घुटनों तक पैर धो एवं पवित्र होकर, दोनों घुटनों के भीतर हाथ करके, आचमन करने से स्नान के समान ही शुद्धि होती है ।

स्नानाङ्ग तर्पण (घर में न करें)

पूर्व की ओर मुखकर तथा सव्य हो (जनेऊ को बायें कन्धे पर कर) देवतीर्थ से एक-एक अंजलि दें ।

ॐ ब्रह्मादयो देवास्तृप्यन्ताम् । ॐ भूर्देवास्तृप्यन्ताम् । ॐ भुवर्देवास्तृप्यन्ताम् । ॐ स्वर्देवास्तृप्यन्ताम् । ॐ भूर्भुवः स्वर्देवास्तृप्यन्ताम् ॥

उत्तर की ओर मुख कर तथा कण्ठीकर (जनेऊ को गले में माला की तरह कर) कायतीर्थ से दो-दो अंजलियाँ दें ।

ॐ मरीच्यादि ऋषयस्तृप्यन्ताम् २। ॐ सनकादि द्वैपायनान्ता ऋषयस्तृप्यन्ताम् २। ॐ भूर्ऋषयस्तृप्यन्ताम् २। ॐ भुवर्ऋषयस्तृप्यन्ताम् २। ॐ स्वर्ऋषयस्तृप्यन्ताम् २। भूर्भुवः स्वर्ऋषयस्तृप्यन्ताम् २।

दक्षिण की ओर मुख कर तथा अपसव्य हो (जनेऊ को दाहिने कन्धे पर कर) पितृतीर्थ से तीन-तीन अंजलियाँ दें ।

ॐ कव्यवाडादयो देवपितरस्तृप्यन्ताम् ३ । ॐ चतुर्दश यमास्तृप्यन्ताम् ३ । ॐ भूः पितरस्तृप्यन्ताम् । ॐ भुवः पितरस्तृप्यन्ताम् ३ । ॐ स्वः पितरस्तृप्यन्ताम् ३ । ॐ भूर्भुवः स्वः पितरस्तृप्यन्ताम् ॐ अमुकगोत्रा अस्मत्पितृपितामहप्रपितामहास्तृप्यन्ताम् ३ । ॐ अमुकगोत्रा अस्मन्मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहाः सपत्नीकास्तृप्यन्ताम् ३ । ॐ आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं जगत्तृप्यन्ताम् ३ ॥

नीचे लिखे मन्त्र से जल के बाहर एक अंजलि दें ।

अग्निदग्धाश्च ये जीवा येप्यदग्धा कुले मम ।
भूमौ दत्तेन तृप्यन्तु तृप्ता यान्तु परां गतिम् ॥

नीचे लिखे मन्त्र से जल के बाहर दाहिनी ओर शिखा निचोड़ें ।

लतागुल्मेषु वृक्षेषु पितरो ये व्यवस्थिताः ।
ते सर्वे तृप्तिमायान्तु मयोत्सृष्टैः शिखोदकैः ॥

“सव्य हो”, आचमनकर, जल के बाहर एक अंजलि दें ।

यन्मया दूषितं तोयं शरीर-मल-सम्भवम् ।
तस्य पापस्य शुद्धयर्थं यक्ष्मैतत्ते तिलोकदम् ॥

वस्त्र-धारण-विधि

पुण्यकर्मों में दो वस्त्र धारण करें । अभाव में आधी धोती ओढ़ नया या धोबी का धोया हुआ वस्त्र धारण करें । अमावस्या, संक्रान्ति, रवि और श्राद्ध के दिन साबुन से वस्त्र न धोयें तथा धोबी को न दें । नीचे लिखे मन्त्र से नया वस्त्र धारण करें ।

ॐ परिधास्यै यशोधास्यै दीर्घायुत्वाय जरदष्टिरस्मि ।
शतञ्च जीवामि शरदः पूरूचीरायस्पोषमभिसंव्ययिष्ये ॥

(पारस्करगृह्यसूत्र)

विशेष—जल में सूखे तथा स्थल पर भीगे वस्त्र से सन्ध्यादि न करें ।

आसन

मृगचर्म तथा कुशा और ऊन के आसन पवित्र होते हैं । आसन झाड़कर व कुशासन की ग्रन्थि उत्तर-दक्षिण करके बिछायें ।

शिखा-बन्धन-मन्त्र

शिखा बाँधकर सभी कर्म करने चाहियें । इसलिये नीचे लिखे मन्त्र से या गायत्री मन्त्र से शिखा बाँधे । यदि शिखा न हो तो शिखा-स्थान का स्पर्श करें ।

चिद्रूपिणि ! महामाये ! दिव्यतेजः-समन्विते ! ।
तिष्ठ देवि ! शिखामध्ये तेजोवृद्धिं कुरुस्व मे ॥

तिलक किये बिना सन्ध्या, पितृकर्म और देवपूजा आदि न करें । चन्दनादि के अभाव में जलादि से तिलक करें ।

अनामिका शान्तिदोक्ता मध्यमायुष्करी भवेत् ।
अङ्गुष्ठः पुष्टिदः प्रोक्तः तर्जनी मोक्षदायिनी ॥ (स्कन्द पुराण)

तिलक करने में अनामिका शान्ति देनेवाली, मध्यमा आयु बढ़ानेवाली, अंगुष्ठ पुष्टि देनेवाला और तर्जनी मोक्ष देनेवाली है । चकले पर से चन्दन नहीं लगाना चाहिये ।

चन्दन-धारण-मन्त्र

चन्दनस्य महत्पुण्यं पवित्रं पापनाशनम् ।
आपदं हरते नित्यं लक्ष्मीस्तिष्ठति सर्वदा ॥

तिलक-धारण-विधि

ललाट में केशव, कण्ठ में पुरुषोत्तम, हृदय में वैकुण्ठ, नाभि में नारायण, पीठ में पद्मनाभ, बायें पार्श्व (पसवाड़ा) में विष्णु, दाहिने में वामन, बायें कान में यमुना, दाहिने में गङ्गा, बाईं भुजा में कृष्ण, दाहिनी में हरि, मस्तक में हृषीकेश और गर्दन में दामोदर का स्मरण करते हुए, इन तेरह स्थानों पर चन्दन लगायें।

भस्म-धारण-विधि

प्रातः जलमिश्रित, मध्याह्न में चन्दनमिश्रित और सायंकाल में सूखी भस्म लगायें। बायें हाथ में भस्म ले, दाहिने हाथ से नीचे लिखे मन्त्र से अभिमन्त्रित करें।

ॐ अग्निरिति भस्म। ॐ वायुरिति भस्म। ॐ जलमिति भस्म। ॐ स्थलमिति भस्म। ॐ व्योमेति भस्म। ॐ सर्व ँह वा इदं भस्म। ॐ मन एतानि चक्षूंषि भस्मानीति।

भस्म-धारण-मन्त्र

नीचे लिखे मन्त्रों से यथास्थान भस्म लगायें।

ॐ 'त्र्यायुषं जमदग्नेः' ललाट में।ॐ 'कश्यपस्य त्र्यायुषम्' कण्ठ में। ॐ 'यद्देवे त्र्यायुषम्' भुजाओं में। ॐ 'तन्नो अस्तु त्र्यायुषम्' हृदय में।

यज्ञोपवीत-धारण-विधि

सङ्कल्पकर दो यज्ञोपवीत धारण करें। यदि मलमूत्र त्यागते समय यज्ञोपवीत कान में टाँगना भूल जायें, तो नया बदलें।

श्रावणी कर्म में पूजन किया हुआ यज्ञोपवीत न हो, तो नूतन यज्ञोपवीत को जल से शुद्ध कर, दश बार गायत्री मन्त्र से अभिमन्त्रित कर, नीचे लिखे मन्त्रों से प्रत्येक सूत्र एवम् ग्रन्थि में नीचे लिखे अनुसार देवाताओं का आवाहन करें।

प्रथमतन्तौ—ॐ ॐकारमावाहयामि। द्वितीयन्तौ—ॐ अग्निमावाहयामि। तृतीयतन्तौ—ॐ सर्पानावाहयामि। चतुर्थतन्तौ—ॐ सोममावाहयामि। पञ्चमतन्तौ—ॐ पितृनावाहयामि। षष्ठतन्तौ—ॐ प्रजापतिमावाहयामि। सप्तमतन्तौ—ॐ अनिलमावाहयामि। अष्टमतन्तौ—ॐ सूर्यमावाहयामि। नवमतन्तौ—ॐ विश्वान्देवानावाहयामि। ग्रंथि में—'ॐ ब्रह्मणे नमः' ब्रह्माणमावाहयामि। 'ॐ विष्णवे नमः' विष्णुमावाहयामि। 'ॐ रुद्राय नमः' रुद्रमावाहयामि।

इस प्रकार आवाहन करके नीचे लिखे मन्त्र से यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये।

यज्ञोपवीत-धारण-विनियोग एवम् मन्त्र

विनियोग—ॐ यज्ञोपवीतमितिमन्त्रस्य परमेष्ठी ऋषिः लिङ्गोक्ता देवता त्रिष्टुप्छन्दः यज्ञोपवीतधारणे विनियोगः।

यज्ञोपवीत, धोकर, प्रत्येक बार मन्त्र बोलते हुए, एक-एक धारण करें।

ॐ यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात् ।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ॥

जीर्ण-यज्ञोपवीत-त्याग-मन्त्र

पुराने यज्ञोपवीत को कंठीकर सिरपर से पीठ की ओर निकालकर, यथासंख्य गायत्रीमन्त्र का जप करना चाहिये।

एतावद्दिनपर्यन्तं ब्रह्म त्वं धारितं मया ।
जीर्णत्वात्त्वत्परित्यागो गच्छ सूत्रं यथासुखम् ॥

कुशा-ग्रहण-विधि

भाद्रपद मास की कुशोत्पाटिनी अमावस्या को ग्रहण की हुई कुशा बारह मास, अन्य अमावस्या की एकमास, पूर्णिमा की पन्द्रह दिन और प्रत्येक अन्य दिन

की उसी दिन तक पवित्र रहती है। संध्या, पितृकार्य और देवपूजन में अग्र और मूल सहित दो कुशाओं की पवित्री दाहिने, और तीन की बायें हाथ की अनामिका की जड़ में धारण करें।

प्रादेशमात्रं दर्भः स्याद् द्विगुणं कुशमुच्यते ।
कृतरत्निर्भवेद्बर्हिस्तदूर्ध्वं तृणमुच्यते ॥ (कर्मकाण्ड समु.)

एक प्रादेश (अँगूठा और तर्जनी फैलाना) का दर्भ, दो प्रादेश की कुशा और हाथ की कोहनी से कनिष्ठा अँगुली की जड़ पर्यन्त का बर्हि कहा जाता है, इससे लम्बा तृण कहलाता है।

पूर्व या उत्तरमुख हो कुशा का पूजनकर नीचे लिख़ी प्रार्थना करें। पश्चात् प्रत्येक बार "हूँ फट्" बोलकर जड़ सहित उखाड़ें। हाथ से छोटी अर्थात् उपर्युक्त श्लोकानुसार ही लें।

कुशा-ग्रहण-मन्त्र

विरञ्चिना सहोत्पन्न! परमेष्ठिनिसर्गज! ।
नुद सर्वाणि पापानि दर्भ! स्वस्तिकरो भव ॥ (मार्क. पुराण)

त्यागयोग्यकुशा

ये तु पिण्डास्तृता दर्भा यैः कृतं पितृतर्पणम् ।
अमेध्याशुचिलिप्ता ये तेषां त्यागो विधीयते ॥ (गृहपरि.)

पिण्ड के नीचे तथा ऊपर की, तर्पण की तथा अपवित्र जगह में पड़ी हुई कुशाओं को त्याग देना चाहिये।

जप-विधि

जप करते समय दाहिना हाथ गोमुखी में डालें या वस्त्र से ढक लें। सिरपर हाथ तथा वस्त्र न रखें। "वाचिक जप" धीरे-धीरे बोलकर, "उपांशु" दूसरे नहीं सुनें तथा "मानस" जिह्वा और ओष्ठ न हिलाकर करना उत्तरोत्तर उत्तम है। जप करते

समय हिलना, ऊँघना, बोलना और माला का गिरना निषिद्ध है । यदि बोल लें तो भगवत्-स्मरण कर फिर से जप आरम्भ करें ।

गृहे चैकगुणः प्रोक्तो गोष्ठे शतगुणः स्मृतः ।
पुण्यारण्ये तथा तीर्थे सहस्रगुण उच्यते ॥
अयुतं पर्वते पुण्यं नद्यां लक्षगुणो जपः ।
कोटिर्देवालये प्राप्ते अनन्तः शिवसन्निधौ ॥

घर में जप करने से एक गुना, गौओं के समीप में सौ गुना, पवित्र वन या बगीचे और तीर्थ में हजार गुना, पर्वत पर दस हजार गुना, नदी-तीर पर लाख गुना, देवालय में करोड़ गुना तथा शिव के समीप में अनन्त गुना फल होता है ।

प्रातर्नाभौ करं कृत्वा मध्याह्ने हृदि संस्थितम् ।
सायं जपति नासाग्रे जपस्तु त्रिविधः स्मृतः ॥ (धर्मप्रकाश)
कृत्वोत्तानौ करौ प्रातः सायं न्युब्जौ करौ तथा ।
मध्याह्ने हृदयस्थौ तु कृत्वा जपमुदीरयेत् ॥
प्रातर्मध्याह्नयोस्तिष्ठन् गायत्री-जपमारभेत् ।
ऊर्ध्वजानुस्तु सायाह्ने ध्यानालोकनतत्परः ॥ (आह्निक)

प्रातःकाल में हाथ को सीधा तथा अँगुलियों को ऊपर की ओर कर नाभि के समीप, मध्याह्न में हृदय के समीप और सायं काल में दाहिना घुटना खड़ाकर नासिका के समीप उलटा हाथ करके जप करें ।

यस्मिन्स्थाने जपं कुर्यात् शक्रो हरति तज्जपम् ।
तन्मृदा लक्ष्म कुर्वीत ललाटे तिलकाकृतिः ॥ (व्यास-स्मृति)

जिस आसन पर बैठकर जप किया हो, उसके नीचे की मृत्तिका मस्तक में लगायें । ऐसा न करने से जप के फल को इन्द्र ले लेता है ।

माला-विधि

प्रत्येक मणि के बीच में ग्रन्थि दी हुई, सुमेरु को छोड़कर १०८ मणियों की माला सबसे उत्तम है। माला को अनामिका पर रखकर अँगूठे से स्पर्श करते हुए मध्यमा से फेरना चाहिये। सुमेरु का उल्लंघन न करें। दोबारा फेरते समय सुमेरु के पास से माला को पुनः घुमाकर जप करें।

माला-प्रार्थना

माला का पूजन तथा प्रार्थना करके फेरने से विशेष फल होता है।

ॐ महामाये ! महामाले ! सर्वशक्तिस्वरूपिणी ! ।
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव ॥
अविघ्नं कुरु माले ! त्वं गृह्णामि दक्षिणे करे ।
जपकाले च सिद्ध्यर्थं प्रसीद मम सिद्धये ॥

देवमन्त्र की कर-माला

(शक्ति की करमाला सन्ध्या में देखें)

दाहिने हाथ की अँगुलियों को मिलाकर हथेली की ओर कुछ टेढ़ी करें। अलग-अलग रहने से जप का पूर्ण फल नहीं मिलता है।

अङ्गुल्यग्रे च यज्जप्तं यज्जप्तं मेरूलङ्घनात् ।
पर्वसन्धिषु यज्जप्तं तत्सर्वं निष्फलं भवेत् ॥

अँगुली के अग्रभाग (नख के पास) तथा पर्वकी लकीर पर और सुमेरु का उल्लंघन कर किया हुआ जप निष्फल होता है।

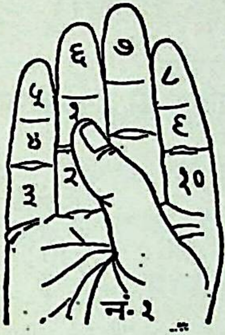

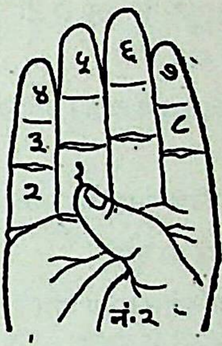

चित्र सं. १ के अनुसार अंक १ से आरंभ करके १० अंक तक अँगूठे से जप करने से एक करमाला होती है। इसी प्रकार दस करमाला जप करके चित्र सं. २ के अनुसार अंक १ से आरंभ कर ८ अंक तक जप करने से १०८ संख्या की माला होती है।

आरभ्यानाभिकामध्यं पर्वाण्युक्तान्यनुक्रमात् ।
तर्जनी—मूल—पर्यन्तं जपेद्दशसु पर्वसु ॥
मध्यमाङ्गुलिमूले तु यत्पर्वद्वितीयं भवेत् ।
तं वै मेरुं विजानीयाज्जाप्ये तं नातिलङ्घयेत् ॥ (गायत्री कल्प)

आचमन-विधि

पुण्यकर्मों के आरम्भ में आचमन अवश्य करें। ब्राह्मण के हृदय, क्षत्रिय के कंठ तथा वैश्य के तालु में जल पहुँचने से आचमन होता है। प्रथम आचमन से "आध्यात्मिक", दूसरे से "आधिभौतिक" व तीसरे से "आधिदैविक" तापों की शान्ति होती है। दाहिने हाथ में जल लें, अँगूठे तथा कनिष्ठा को अलग कर, आगे लिखे प्रत्येक नाम बोलकर, ब्रह्मतीर्थ से आचमन करने से एक आचमन होता है। किन्तु ओष्ठ का शब्द करना निषिद्ध है।

ॐ केशवाय नमः ।। ॐ नारायणाय नमः ।। ॐ माधवाय नमः ।।

पश्चात् अँगूठे के मूल से दो बार होठों को पोंछकर "ॐ हृषिकेशाय नमः" बोलकर हाथ धोयें।

जल के अभाव में दाहिने कान तथा नासिका को अँगूठे से स्पर्श करें।

(पराशर)

अग्नितीर्थ—दाहिनी हथेली का मध्य।

ब्रह्मतीर्थ—अँगूठे का मूल।

देवतीर्थ—अँगुलियों का अग्र भाग।

कायतीर्थ—कनिष्ठा का मूल।

पितृतीर्थ—तर्जनी का मूल।

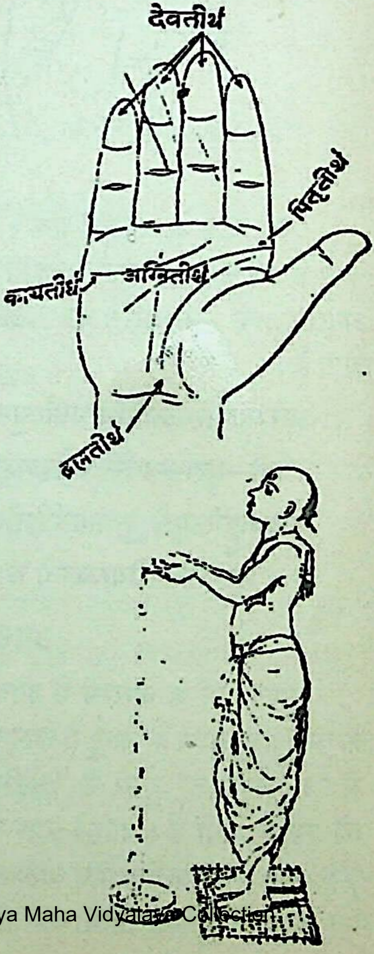

चित्र के अनुसार पूर्वाभिमुख खड़ा हो, दोनों पैरों के अग्रभाग बराबर कर, जल तथा पुष्पादि ले, तर्जनी से अँगूठे को अलग रखते हुए नीचे लिखे प्रत्येक मंत्र से एक-एक अर्घ दें।

ॐ श्रीगणेशाय नमः। ॐ सत्यनारायणाय नमः। ॐ ब्रह्मणे नमः। ॐ विष्णवे नमः। ॐ रुद्राय नमः। ॐ देव्यै नमः। ॐ नवग्रहेभ्यो नमः। ॐ इष्टदेवताभ्यो नमः। ॐ कुलदेवताभ्यो नमः। ॐ ग्रामदेवताभ्यो नमः। ॐ पञ्चलोकपालेभ्यो नमः। ॐ दशदिक्पालेभ्यो

नमः। ॐ अष्टकुलनागेभ्यो नमः। ॐ अष्टवसुदेवताभ्यो नमः। ॐ पञ्चभूतेभ्यो नमः। ॐ भूरादिलोकेभ्यो नमः। ॐ साक्षीभूताय नमः। ॐ धर्मराजाय नमः। ॐ चित्राय नमः। ॐ चित्रगुप्ताय नमः। ॐ श्रवणदेवताभ्यो नमः। ॐ मित्राय नमः। ॐ वरुणाय नमः। ॐ कुबेराय नमः॥

इस क्रम में नीचे लिखे मन्त्र से सूर्यनारायण को भी अर्घ दें।

ऐहि सूर्य ! सहस्रांशो ! तेजोराशे ! जगत्पते ! ।
अनुकम्पय मां भक्त्या गृहणार्घ्यं दिवाकर ! ॥

संध्योपासनविधि

ब्राह्ममुहूर्त में जब चार घड़ी रात बाकी रहे, शयन से उठकर भगवान् का स्मरण करे; शौच-स्नान के अनन्तर शुद्ध वस्त्र धारण करके पवित्र तथा एकान्त-स्थान में कुश अथवा कम्बल आदि के आसन पर पूर्व, ईशान अथवा उत्तर दिशा की ओर मुँह करके बैठे (तीनों काल की संध्या में उपर्युक्त दिशाओं की ओर ही मुँह करके बैठना चाहिये, केवल सूर्यार्घ्यदान, सूर्योपस्थान और गायत्रीजप सूर्याभिमुख होकर करना आवश्यक है)। बायें हाथ में तीन कुश और दायें हाथ में दो कुशों की बनी पवित्री 'ॐ पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ.' इस मन्त्र से धारण करे। कुश के अभाव में सोने, चाँदी अथवा ताँबे की अँगूठी पहनकर भी कार्य किया जा सकता है। ॐकार और व्याहृतियोंसहित गायत्री-मन्त्र का उच्चारण करके शिखा बाँध ले, यदि पहले से ही शिखा बँधी हो तो उसका स्पर्शमात्र कर ले। एक जोड़ा शुद्ध यज्ञोपवीत[९१] धारण किये रहमा आवश्यक है। देहपर धौतवस्त्र के अतिरिक्त एक उत्तरीय वस्त्र (चादर या गमछा आदि) डाले रहना चाहिये। उत्तरीय वस्त्र के अभाव में एक और

---

[९१] यहाँ आवश्यक समझकर नूतन यज्ञोपवीत-धारण का समय तथा उसकी संक्षिप्त विधि का पहले भी उल्लेख किया है। अशौच होने पर मूत्र-पुरीषोत्सर्ग करते समय दाहिने कान के ऊपर जनेऊ रखने में भूल होने पर या उसके अतिरिक्त गिरने अथवा टूट जाने पर नूतन यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये। इसके धारण की संक्षिप्त विधि यह है—स्नान के अनन्तर आसन पर बैठकर आचमन करे, फिर यज्ञोपवीत को लेकर 'आपो हिष्ठा.' इस मन्त्र द्वारा जल से उसका अभिषेक करे। तत्पश्चात् उसके नौ

यज्ञोपवीत (कुल मिलाकर तीन यज्ञोपवीत) धारण किये रहे। फिर किसी पात्र में शुद्ध जल रखकर उसे बायें हाथ में उठा ले और दायें हाथ के कुशा से अपने शरीरपर जल सींचते हुए निम्नाङ्कित मन्त्र पढ़े—

ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा ।
यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥

'मनुष्य अपवित्र हो या पवित्र अथवा किसी भी दशा में स्थित हो, जो पुण्डरीकाक्ष (कमलनयन) भगवान विष्णु का स्मरण करता है, वह बाहर और भीतर सब ओर से शुद्ध हो जाता है।'

फिर नीचे लिखे मन्त्र से आसन पर जल छिड़ककर दायें हाथ से उसका स्पर्श करे—

ॐ पृथ्वी त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता ।
त्वं च धारय मां देवि पवित्रं कुरु चासनम् ॥

हे पृथ्वी देवि! तुमने सम्पूर्ण लोकों को धारण कर रखा है और भगवान् विष्णु ने तुमको धारण किया है। हे देवि! तुम मुझे धारण करो और मेरे आसन को पवित्र कर दो।

तन्तुओं में क्रमशः ॐकार, अग्नि, सर्प, सोम, पितर, प्रजापति, वायु, यम और विश्वेदेव की तथा तीन ग्रन्थियों में क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र की भावना करके—

यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात् ।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ॥
यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि ॥

— इस मन्त्र को पढ़कर एक जोड़ा यज्ञोपवीत पहने। फिर कम से कम बीस बार गायत्री-मन्त्र का जप करे। बलिवैश्वदेव करने वाले को तीन यज्ञोपवीत धारण करके कम से कम तीस बार गायत्री का जप करना चाहिये। इसके बाद प्राचीन यज्ञोपवीत को गले से बाहर निकाल कर 'समुद्रं गच्छ स्वाहा' इस मन्त्र को पढ़कर जलाशय में फेंक दे। इस प्रकार यज्ञोपवीत धारण करने के बाद ही संध्या आदि कर्म करने का अधिकार होता है।

इसके बाद यथारुचि शास्त्रानुकूल भस्म, चन्दन[९२] आदि का तिलक करे।

तत्पश्चात् 'ॐ केशवाय नमः स्वाहा', 'ॐ नारायणाय नमः स्वाहा', 'ॐ माधवाय नमः स्वाहा'—इन तीनों मन्त्रों को पढ़कर प्रत्येक से एक-एक बार (कुल तीन बार) पवित्र जल से आचमन करे (आचमन के समय हाथ जानुओं के भीतर हो, पूर्व, ईशान या उत्तर दिशा की ओर ही मुख हो। ब्राह्मण इतना जल पिये, जो हृदय तक पहुँच सके, क्षत्रिय उतना ही जल ग्रहण करे जो कण्ठ तक पहुँच सके, वैश्य इतना जल ले जो तालु तक जा सके। उस समय ओठ बहुत न खोले, अङ्गुलियाँ परस्पर सटी रहें। जल में फेन या बुलबुले आदि न हों)। ब्रह्मतीर्थ से तीन बार आचमन करने के पश्चात् 'ॐ गोविन्दाय नमः' यह मन्त्र पढ़कर हाथ धो ले। इसके बाद दो बार अँगूठे के मूल से ओठ को पोंछे, फिर हाथ धो ले। अँगूठे का मूल ब्राह्मतीर्थ है। तत्पश्चात् भीगी हुई अङ्गुलियों से मुख आदि का स्पर्श करे। मध्यमा-अनामिका से मुख, तर्जनी-अङ्गुष्ठ से नासिका, मध्यमा-अङ्गुष्ठ से नेत्र, अनामिका अङ्गुष्ठ से कान, कनिष्ठिका-अङ्गुष्ठ से नाभि, दाहिने हाथ से

---

[९२] मृत्तिकां चन्दनं चैव भस्मतोयं चतुर्थकम्।
एभिर्द्रव्यैर्यथाकालमूर्ध्वपुण्ड्रं भवेत् सदा॥ (आह्निकप्रकाश)

यहाँ ऊर्ध्वपुण्ड्र शब्द तिलक के सभी प्रकारों का उपलक्षक है, तात्पर्य यह कि तीर्थ की मिट्टी, चन्दन, भस्म अथवा जल-इन द्रव्यों से समयानुसार सदा ऊर्ध्वपुण्ड्र, त्रिपुण्ड आदि किया जाता है। (चन्दन को देवता के प्रसाद रूप में ही धारण करे। केवल अपने लिये नहीं घिसना चाहिये।)

कुछ लोग भस्म और चन्दन में गायत्री मन्त्र का उपयोग करते हैं। 'सम्प्रदाय-निष्ठ पुरुषों को अपनी सम्प्रदाय-मर्यादा के अनुसार मन्त्रों का उपयोग करना चाहिये। सर्वसाधरण स्मार्त पुरुषों के लिये भस्म धारण का मन्त्र यहाँ लिखा जाता है—

'ॐ अग्निरिति भस्म। ॐ वायुरिति भस्म। जलमिति भस्म स्थलमिति भस्म व्योमेति भस्म सर्वꣳ हवा इदं भस्म मन एतानि चक्षूँषि' इस मन्त्र से भस्म को अभिमन्त्रित करके 'त्र्यायुषं जमदग्नेः' इस मन्त्र से ललाट में, 'कश्यपस्य त्र्यायुषम्' इस मन्त्र से गले में, 'यद्देवेषु त्र्यायुषम्' इस मन्त्र से दोनों भुजाओं के मूल में और 'तन्नोऽस्तु त्र्यायुषम्' इस मन्त्र से हृदय में लगावे।

हृदय, सब अङ्गुलियों से सिर, पाँचों अङ्गुलियों से दाहिनी बाँह और बायी बाँह का स्पर्श करना चाहिये।

तदनन्तर हाथ में जल लेकर निम्नाङ्कित संकल्प पढ़कर वह भूमिपर गिरा दें—

हरिः ॐ तत्सदद्यैतस्य श्रीब्रह्मणोऽह्नि द्वितीयपरार्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे जम्बूद्वीपे भरतखण्डे आर्यावर्तैकदेशान्तर्गते पुण्यक्षेत्रे कलियुगे कलिप्रथमचरणे अमुक[१३] संवत्सरे अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकवासरे अमुकगोत्रोत्पन्नः अमुक[१४] शर्मा अहं ममोपात्तदुरितक्षयपूर्वकं श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं प्रातः (सायं अथवा मध्याह्न-) संध्योपासनं करिष्ये।

इसके बाद निम्नाङ्कित विनियोग पढ़े—

ऋतं चेति त्र्यृचस्य माधुच्छन्दसोऽघमर्षण ऋषिरनुष्टुप् छन्दो भाववृत्तं दैवतमपामुपस्पर्शने विनियोगः।

फिर नीचे लिखे मन्त्र को एक बार पढ़कर एक ही बार आचमन करे—

ॐ ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत। ततो रात्र्यजायत। ततः समुद्रो अर्णवः। समुद्रादर्णवादधिसंवत्सरो अजायत। अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी। सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्। दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथो स्वः॥ (ऋ० अ. ८ अ. ८ व. ४८)

(महाप्रलय के बाद इस महाकल्प के आरम्भ में) सब ओर मे प्रकाशमान तपरूप परमात्मा से ऋत (सत्संकल्प) और सत्य (यथार्थ भाषण) की उत्पत्ति हुई। उसी परमात्मा से रात्रि-दिन[१५] प्रकट हुए तथा उसी से जलमय समुद्र का आविर्भाव हुआ। जलमय समुद्र की उत्पत्ति के पश्चात् दिनों और रात्रियों को धारण करने वाला कालस्वरूप संवत्सर प्रकट हुआ जो कि पलक मारने वाले जङ्गम प्राणियों और स्थावरों से

---

[१३] 'अमुक' शब्द के स्थान में संवत्सर, मास आदि का नाम जोड़ लेना चाहिये।

[१४] ब्राह्मण अपने नाम के आगे शर्मा, क्षत्रिय वर्मा और वैश्य गुप्त शब्द का प्रयोग करे।

युक्त समस्त संसार को अपने अधीन रखने वाला है । इसके बाद सबको धारण करनेवाले परमेश्वर ने सूर्य, चन्द्रमा, दिव (स्वर्गलोक), पृथ्वी, अन्तरिक्ष तथा महर्लोक आदि लोक की भी पूर्वकल्प के अनुसार सृष्टि की ।

तदनन्तर प्रणवपूर्वक गायत्री-मन्त्र पढ़कर रक्षा के लिये अपने चारों ओर जल छिड़के । फिर नीचे लिखे विनियोग को पढ़े—

ॐकारस्य ब्रह्मा ऋषि दैवी गायत्री छन्दः परमात्मा देवता, सप्तव्याहृतीनां प्रजापतिऋषिर्गायत्र्युष्णिगनुष्टुब्बृहतीपङ्क्तित्रिष्टुब्जगत्यश्छन्दांस्यग्निवायुसूर्यबृहस्पतिवरुणेन्द्रविश्वेदेवा देवताः, तत्सवितुरिति विश्वामित्र[९६] ऋषिर्गायत्री छन्दः सविता देवता, आपोज्योतिरिति शिरसः प्रजापतिऋषिर्यजुश्छन्दो ब्रह्माग्निवायुसूर्या देवताः प्राणायामे विनियोगः ।

इसके पश्चात् आँखें बंद करके नीचे लिखे मन्त्र से प्राणायाम करे । उसकी विधि इस प्रकार है—'पहिले दाहिने हाथ के अँगूठे से नासिका का दायाँ छिद्र बंद करके बायें छिद्र से वायु को अंदर खींचे, साथ ही नाभि देश में नीलकमलदल के समान श्यामवर्ण चतुर्भुज भगवान् विष्णु का ध्यान करते हुए प्राणायाम-मन्त्र का तीन बार पाठ किया जाय (यदि तीन बार मन्त्र-पाठ न हो सके तो एक ही बार पाठ करे और अधिक के लिये अभ्यास बढ़ावे)—इसको पूरक कहते हैं । पूरक के पश्चात् अनामिका और कनिष्ठिका अङ्गुलियों से नासिका के बायें छिद्र को बंद करके तब तक श्वास को रोके रहे, जब तक कि प्राणायाम-मन्त्र का तीन बार (या शक्ति के अनुसार एक बार) पाठ न हो जाय । इस समय हृदय के बीच कमल के आसन पर विराजमान अरुण-गौर-मिश्रित वर्णवाले चतुर्भुज ब्रह्माजी का ध्यान करे । यह कुम्भक क्रिया है । इसके बाद अँगूठा हटाकर नासिका के दाहिने छिद्र से वायु को धीरे-धीरे तबतक बाहर निकाले, जबतक प्राणायाम मन्त्र का तीन (या एक) बार पाठ न हो जाय । इस समय शुद्ध स्फटिक के समान श्वेत वर्ण वाले त्रिनेत्रधारी

---

९५. यहाँ रात्रि-दिन शब्द से ब्रह्मा की रात्रि और दिन समझने चाहिये ।

९६. 'विश्वस्य जगतो मित्रं विश्वामित्रः प्रजापतिः ।' इस वचन के अनुसार विश्वामित्र शब्द का अर्थ प्रजापति (ब्रह्मा) है ।

भगवान शंकर का ध्यान करे। यह रेचक-क्रिया है। यह सब मिलाकर एक प्राणायाम कहलाता है। प्राणायाम का मन्त्र यह है—

ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यम् ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्। ॐ आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्॥ (तै.आ.प्र.१० अ.२७)

हम स्थावर-जङ्गमरूप सम्पूर्ण विश्व को उत्पन्न करनेवाले उन निरतिशय प्रकाशमय परमेश्वर के भजने योग्य तेज का ध्यान करते हैं, जो कि हमारी बुद्धियों को सत्कर्मों की ओर प्रेरित करते हैं और जो भू, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः और सत्य नामवाले समस्त लोकों में व्याप्त हैं तथा जो सच्चिदानन्दस्वरूप जलरूप से जगत् का पालन करने वाले, अनन्त तेज के धाम, रसमय, अमृतमय और भूर्भुवः स्वःस्वरूप (त्रिभुवनात्मक) ब्रह्म हैं।

1658

फिर नीचे लिखे विनियोग पढ़े—

सूर्यश्च मेति नारायण ऋषिः प्रकृतिश्छन्दः सूर्यमन्युमन्युपतयो रात्रिश्च देवता अपामुपस्पर्शने विनियोगः।

तत्पश्चात् निम्नाङ्कित मन्त्र को एक बार पढ़कर एक बार आचमन करे—

ॐ सूर्यश्च मा मन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः पापेभ्यो रक्षन्ताम्। यद्रात्र्या पापमकार्षं मनसा वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना रात्रिस्तदवलुम्पतु। यत्किञ्च दुरितं मयि इदमहं माममृतयोनौ सूर्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा॥

(तै आ.प्र.१० अ.२५)

सूर्य, क्रोध के अभिमानी देवता और क्रोध के स्वामी—ये सभी क्रोधवश किये हुए पापों से मेरी रक्षा करें (अर्थात् कृत पापों को नष्ट करके होनेवाले पापों से बचावें)। रात में मैने मन, वाणी, हाथ, पैर, उदर और शिश्न (उपस्थ) इन्द्रिय से जो पाप किये हों, उन सबको रात्रिकालाभिमानी देवता नष्ट करें। जो कुछ भी पाप मुझमें वर्तमान है, इसको और इसके कर्तृत्व का अभिमान रखनेवाले अपने को मैं मोक्ष के कारणभूत प्रकाशमय सूर्यरूप परमेश्वर में हवन करता हूँ (अर्थात् हवन के

द्वारा अपने समस्त पाप और अंहकार को भस्म करता हूँ)। इसका भलीभाँति हवन हो जाय।

उपर्युक्त आचमन-मन्त्र प्रातःकाल की संध्या का है। मध्याह्न और सायंकाल के केवल आचमन-मन्त्र प्रातःकाल से भिन्न हैं। मध्याह्न का विनियोग और मन्त्र इस प्रकार है—

आपः पुनन्त्विति नारायण ऋषिरनुष्टप् छन्दः आपः पृथिवी ब्रह्मणस्पतिर्ब्रह्म च देवता अपामुपस्पर्शने विनियोगः।

इस विनियोग को पढ़े। फिर नीचे लिखे मन्त्र को एक बार पढ़कर एक बार आचमन करे—

ॐ आपः पुनन्तु पृथिवीं पृथिवी पूता पुनातु माम्। पुनन्तु ब्रह्मणस्पतिर्ब्रह्मपूता पुनातु माम्। यदुच्छिष्टमभोज्यं यद्वा दुश्चरितं मम। सर्वं पुनन्तु मामापोऽसतां च प्रतिग्रहꣳ स्वाहा॥ (तै.आ.प्र.१० अ.२३)

जल पृथिवी को (प्रोक्षण आदि के द्वारा) पवित्र करे। पवित्र हुई पृथ्वी मुझे पवित्र करे। वेदों के पति परमात्मा मुझे शुद्ध करें। मैंने जो कभी किसी भी प्रकार उच्छिष्ट या अभक्ष्य भक्षण किया हो अथवा इसके अतिरिक्त भी मेरे जो पाप हों, उन सबको दूर करके जल मुझे शुद्ध कर दे तथा नीच पुरुषों से लिये हुए दानरूप दोषको भी दूर करके जल मुझे पवित्र करे। पूर्वोक्त सभी दोषों का भलीभाँति हवन हो जाय।

सायंकाल के आचमन का विनियोग और मन्त्र इस प्रकार है—

अग्निश्च मेति नारायण ऋषिः प्रकृतिश्छन्दोऽग्निमन्युमन्युपतयोऽहश्च देवता अपामुपस्पर्शने विनियोगः।

इस विनियोग को पढ़े, फिर नीचे लिखे मन्त्र को एक बार पढ़कर एक बार आचमन करे—

ॐ अग्निश्च मा मन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः पापेभ्यो रक्षन्ताम्। यदह्ना पापमकार्षं मनसा वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना अहस्तदवलु-

म्पतु। यत्किञ्च दुरितं मयि इदमहं माममृतयोनौ सत्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा॥ (तै.आ.प्र.१० अ.२४)

अग्नि, क्रोध के अभिमानी देवता और क्रोध के स्वामी—ये सभी क्रोध-वश किये हुए पापों से मेरी रक्षा करें (अर्थात् कृत पापों को नष्ट करके होनेवाले पापों से बचावें)। मैंने दिन में मन, वाणी, हाथ, पैर, उदर और शिश्न (उपस्थ) इन्द्रिय से जो पाप किये हों, उन सबको दिन के अभिमानी देवता नष्ट करें। जो कुछ भी पाप मुझमें वर्तमान है इसको तथा इसके कर्तृत्व का अभिमान रखनेवाले अपने को मैं मोक्ष के कारणभूत सत्यस्वरूप प्रकाशमय परमेश्वर में हवन करता हूँ (अर्थात् हवन के द्वारा अपने सारे पाप और अहंकार को भस्म करता हूँ)। इसका भलीभाँति हवन हो जाय।

फिर निम्नाङ्कित विनियोग को पढ़े—

आपो हि ष्ठेति त्र्यृचस्य सिन्धुद्वीप ऋषिर्गायत्री छन्द आपो देवता मार्जने विनियोगः।

इसके पश्चात् निम्नाङ्कित तीन ऋचाओं के नौ चरणों में से सात चरणों को पढ़ते हुए सिर पर ही जल सींचे, आठवें से पृथ्वी पर जल डाले और फिर नवें चरण को पढ़कर सिर पर ही जल सींचे। यह मार्जन तीन कुशों अथवा तीन अङ्गुलियों से करना चाहिये। मार्जन-मन्त्र ये हैं—

ॐ अपो हि ष्ठा मयोभुवः। ॐ ता न ऊर्जे दधातन। ॐ महेरणाय चक्षसे। ॐ यो वः शिवतमो रसः। ॐ तस्य भाजयतेह नः। ॐ उशतीरिव मातरः। ॐ तस्मा अरंगमाम वः। ॐ यस्य क्षयाय जिन्वथ। ॐ आपो जनयथा च नः। (यजु.अ.११ मं.५०,५१,५२)

हे जल! तुम निश्चय ही कल्याणकारी हो, अतः (अन्नादि रसों के द्वारा) बल की वृद्धि के लिये तथा अत्यन्त रमणीय परमात्म दर्शन के लिये तुम हमारा पालन करो। जिस प्रकार पुत्रों की तुष्टि चाहनेवाली माताएँ उन्हें अपने स्तनों का दुग्ध पान कराती हैं, उसी प्रकार तुम्हारा जो परम कल्याणमय रस है, उसके भागी हमें

बनाओ। हे जल ! जगत् के जीवनाधारभूत जिस रस के अंश से तुम समस्त विश्व को तृप्त करते हो, उस रसकी पूर्णता को हम प्राप्त हों (अर्थात् उस रस से हम पूर्णतया तृप्ति लाभ करें)। हे जल ! तुम हमें उस रस के भोक्ता बनाओ (अर्थात् उसे भोगने की क्षमता दो)।

तदनन्तर नीचे लिखे विनियोग को पढ़े—

द्रुपदादिवेत्यश्विसरस्वतीन्द्रा ऋषयोऽनुष्टप्छन्द आपो देवताः शिरस्सेके विनियोगः।

फिर हाथ में जल लेकर उसे दाहिने हाथ से ढक ले और नीचे लिखे मन्त्र से अभिमन्त्रित करके उसे सिरपर छिड़क दे—

ॐ द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव। पूतं पवित्रेणेवाज्यमापः शुन्धन्तु मैनसः। (यजु. अ. २०, मं. २०)

जैसे पादुका से अलग होता हुआ मनुष्य पादुका के मलादि दोषों से मुक्त हो जाता है, जिस प्रकार पसीने से भींगा हुआ पुरुष स्नान करने के पश्चात् मैल से रहित होता है तथा जैसे पवित्रक आदि से घी शुद्ध हो जाता है, उसी प्रकार जल मुझे पापों से शुद्ध करे (अर्थात् मुझे सर्वथा निष्पाप कर दे)।

पुनः निम्नाङ्कित विनियोग-वाक्यको पढ़े—

ऋतञ्चेति त्र्यृचस्य माधुच्छन्दसोऽघमर्षण ऋषिरनुष्टुपछन्दो भाववृत्तं दैवतमघमर्षणे विनियोगः।

फिर दाहिने हाथ में जल लेकर नासिका में लगावे और (यदि सम्भव हो तो श्वास रोककर) नीचे लिखे मन्त्र को तीन बार या एक बार पढ़ते हुए मन-ही-मन यह भावना करे कि यह जल नासिका के बायें छिद्र से भीतर घुसकर अन्तःकरण के पापों को दायें छिद्र से निकाल रहा है, फिर उस जल की ओर दृष्टि न डालकर अपनी बायीं ओर फेंक दे (अथवा वामभाग में शिलाकी भावना करके उसपर उस पाप को पटककर नष्ट कर देने की भावना करे)।

अघमर्षण मन्त्र इस प्रकार है—

ॐ ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत। ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः। समुद्रादर्णवादधिसंवत्सरो अजायत। अहोरात्राणिं विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी। सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्। दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथो स्वः ॥[९७] (ऋ.अ.८ अ.८ व.४८)

इसके पश्चात् नीचे लिखे विनियोग-वाक्य का पाठ करें—

अन्तश्चरसीति तिरश्चीन ऋषिरनुष्टुप्छन्दः आपो देवता अपामुपस्पर्शने विनियोगः।

फिर निम्नाङ्कित मन्त्र को एक बार पढ़कर एक बार आचमन करे—

ॐ अन्तश्चरसि भूतेषु गुहायां विश्वतोमुखः ।
त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कार आपो ज्योती रसोऽमृतम् ॥ (कात्यायनपरिशिष्टसूत्र)

हे जलरूप परमात्मन् ! तुम समस्त प्राणियों के भीतर उनकी हृदय रूप गुहा में विचरतें हो, तुम्हारा सब ओर मुख है; तुम्ही यज्ञ हो, तुम्हीं वषट्कार (इन्द्रादि का भाग हविष्य) हो और तुम्ही जल, प्रकाश, रस एवं अमृत हो ।

तदनन्तर नीचे लिखे विनियोग-वाक्य का पाठमात्र करे—

ॐकारस्य ब्रह्म ऋषिर्दैवी गायत्री छन्दः परमात्मा देवता, तिसृणां महाव्याहृतीनां प्रजापतिर्ऋषिर्गायत्र्युष्णिगनुष्टुभश्छन्दांस्यग्निवायुसूर्या देवताः, तत्सवितुरिति विश्वामित्र ऋषिर्गायत्री छन्दः सविता देवता सूर्यार्घ्यदाने विनियोगः।

फिर सूर्य के सामने एक चरण की एँडी (पिछला भाग) उठाये हुए अथवा एक पैर से खड़ा होकर या एक पैर के आधे भाग से खड़ा हो ॐकार और व्याहृतियोंसहित गायत्री-मन्त्र को तीन बार पढ़कर पुष्प मिले हुए जल से सूर्य को तीन बार अर्घ्य दे । प्रातःकाल और मध्याह्न का अर्घ्य जल में देना चाहिये । यदि जल न हो तो स्थल को भलीभाँति जल से धोकर उसीपर अर्घ्य का जल गिरावें । परन्तु सायंकाल का अर्घ्य कदापि जल में न दे । खड़ा होकर अर्घ्य देने का नियम

---

[९७] इस मन्त्र का अर्थ पीछे दिया जा चुका है।

केवल प्रातः और मध्याह्न की संध्या में है; सायंकाल में तो बैठकर भूमिपर ही अर्घ्य-जल गिराना चाहिये। मध्याह्न की संध्या में एक ही बार अर्घ्य देना चाहिये और प्रातः एवं सायं-संध्या में तीन-तीन बार। सूर्यार्घ्य देने का मन्त्र अर्थात् प्रणव-व्याहृतिसहित गायत्रीमन्त्र इस प्रकार है—

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्[९८]

इस मन्त्र को पढ़कर 'ब्रह्मस्वरूपिणे सूर्यनारायणाय इदमर्घ्यं दत्तं न मम' ऐसा कहकर प्रातःकाल[९९] अर्घ्य समर्पण करे।

तदनन्तर नीचे लिखे वाक्य को पढ़कर विनियोग करे—

उद्वयमिति प्रस्कण्व ऋषिरनुष्टुप्छन्दः सूर्यो देवता, उदुत्यमिति प्रस्कण्व ऋषिर्निचृद्गायत्री छन्दः सूर्यो देवता, चित्रमिति कुत्साङ्गिरस ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः सूर्यो देवता, तच्चक्षुरिति दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिरेकाधिका ब्राह्मी त्रिष्टुप्छन्दः सूर्यो देवता सूर्योपस्थाने विनियोगः।

तदनन्तर प्रातःकाल में खड़ा होकर और सायंकाल में बैठे हुए ही अञ्जलि बाँधकर तथा मध्याह्न काल में खड़ा हो दोनो भुजाएँ ऊपर उठाकर (यदि सम्भव हो तो) सूर्य की ओर देखते हुए 'उद्वयम्' इत्यादि चार मन्त्रों को पढ़कर उन्हें प्रणाम करे। फिर अपने स्थानपर ही सूर्यदेवकी एक बार प्रदक्षिणा करते हुए उन्हें नमस्कार करके बैठ जाय।

(मध्याह्नकाल में गायत्री-मन्त्र, विभ्राट्-अनुवाक्, पुरुषसूक्त, शिवसंकल्प और मण्डलब्राह्मण का भी यथासम्भव पाठ करना चाहिये[१००]

---

[९८] गायत्री मन्त्र का अर्थ आगे प्रसंगेण दिया गया है।

[९९] मध्याह्नकाल में 'ब्रह्मस्वरूपिणे' के स्थान में 'रुद्रस्वरूपिणे' और सायंकाल में 'विष्णुस्वरूपिणे' ऐसा परिवर्तन कर लेना चाहिये।

[१००] गायत्र्या च यथाशक्ति विभ्राडित्यनुवाक्पुरुषसूक्तशिवसङ्कल्पमण्डलब्राह्मणैरित्युपस्थाय प्रदक्षिणीकृत्य नमस्कृत्योपविशेत्। (का. सू. क. २)

ॐ उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्। देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्। (यजु. अ. २०. मं. २१)

हम अन्धकार से ऊपर उठकर उत्तम स्वर्गलोक को तथा देवताओं में अत्यन्त उत्कृष्ट सूर्य देवको भलीभाँति देखते हुए उस सर्वोत्तम ज्योतिर्मय परमात्मा को प्राप्त हों।

ॐ उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्यम्॥

(यजु. अ. ७ मं. ४१)

उत्पन्न हुए समस्त प्राणियों के ज्ञाता उन सूर्यदेव को छन्दोमय अश्व सम्पूर्ण जगत् के उनका दर्शन कराने (या दृष्टि प्रदान करने) के लिये ऊपर-ही-ऊपर शीघ्रगति से लिये जा रहे हैं।

ॐ चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्ष ꣳ सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च॥

(यजु. अ. ७. मं. ४२)

जो तेजोमयी किरण के पुञ्ज हैं, मित्र, वरुण तथा अग्नि आदि देवताओं एवं समस्त विश्व के नेत्र हैं और स्थावर तथा जङ्गम—सबके अन्तर्यामी आत्मा हैं, वे भगवान् सूर्य आकाश, पृथ्वी और अन्तरिक्षलोकको अपने प्रकाश से पूर्ण करते हुए आश्चर्य रूप से उदित हुए हैं।

ॐ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्॥[१०१]

(यजु. अ. ३६. मं. २४)

देवता आदि सम्पूर्ण जगत् का हित करनेवाले और सबके नेत्र रूप वे तेजोमय भगवान् सूर्य पूर्व दिशा से उदित हो रहे हैं (उनके प्रसाद से) हम सौ वर्षों

---

[१०१] इसके बाद कुछ प्रतियों में अङ्गन्यास का उल्लेख मिलता है, किंतु धर्माब्धिसार आदि ग्रन्थों में न्यास आदि कर्म को अविवक्षित बताया है, अतः उसका करना न

तक देखते रहें, सौ वर्षोंतक जीते रहें, सौ वर्षों तक सुनते रहें, सौ वर्षों तक हममें बोलने की शक्ति रहे तथा सौ वर्षों तक हम कभी दीन-दशा को न प्राप्त हों। इतना ही नहीं, सौ वर्षों से अधिक काल तक भी देखें, जीवें, सुनें बोलें एवं दीन न हों।

इसके बाद—

तेजोऽसीति धामनामासीत्यस्य च परमेष्ठी प्रजापतिर्ऋषिर्यजुस्त्रिष्टुबुष्णिहौ छन्दसी सविता देवता गायत्र्यावाहने विनियोगः।

इस विनियोग को पढ़कर निम्नाङ्कित मन्त्र से विनयपूर्वक गायत्री देवी का आवाहन करे—

ॐ तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि। धामनामासि प्रियं देवानामनाधृष्टं देवयजनमसि॥ (यजु. अ. १। ३१)

हे सूर्यस्वरूपा गायत्री देवि! तुम देदीप्यमान तेजोमयी हो, शुद्ध हो और अमृत (नित्य ब्रह्मरूपा) हो। तुम्हीं परम धाम और नामरूपा हो। तुम्हारा किसी से भी पराभव नहीं होता। तुम देवताओं की प्रिय और उनके यजन की साधनभूत हो (मैं तुम्हारा आवाहन करता हूँ)।

करना अपनी इच्छा पर निर्भर है। जो लोग अङ्गन्यास करने की इच्छा रखते हों, उनकी सुविधा के लिये यहाँ अङ्गन्यास-विधि दी जाती है—

ॐहृदयाय नमः १॥ ॐ भूः शिरसे स्वाहा २॥ ॐ भुवः शिखायै वषट् ३॥ ॐ स्वः कवचाय हुम् ४॥ ॐ भूर्भुवः स्वः नेत्राभ्यां वौषट् ५॥ ॐ भूर्भुवः स्वः अस्त्राय फट् ६॥

उपर्युक्त ६ मन्त्रवाक्य अङ्गन्यास के हैं। इनमें से पहले वाक्य का उच्चारण कर दाहिने हाथ की पाँचों अङ्गुलियों से हृदय का स्पर्श करे। दूसरे वाक्य से मस्तक का और तीसरे से शिखा का स्पर्श करे। चतुर्थ वाक्य पढ़कर दाहिने हाथ की अङ्गुलियों से बायें कंधे का और बायें हाथ की अङ्गुलियों से दायें कंधे का स्पर्श करे। पञ्चम वाक्य से दोनों नेत्रों का स्पर्श करना चाहिये। छठा वाक्य पढ़कर दाहिने हाथ को बायीं ओर से पीछे की ओर ले जाकर दाहिनी ओर से आगे की ओर ले आवे और तर्जनी तथा मध्यमा अङ्गुलियों से बायें हाथ की हथेली पर ताली बजावे।

फिर नीचे लिखे विनियोग-वाक्य को पढ़े—

गायत्र्यसीति विवस्वान् ऋषिः स्वराण्महापङ्क्तिश्छन्दः परमात्मा देवता गायत्र्युपस्थाने विनियोगः ।

तत्पश्चात् नीचे लिखे मन्त्र से गायत्री को प्रणाम करे—

ॐ गायत्र्यस्येकपदी द्विपदी त्रिपदी चतुष्पद्यपदसि न हि पद्यसे नमस्ते तुरीयाय दर्शनाय पदाय परोरजसेऽसावदो मा प्रापत् ॥

(बृहदारण्यक. ५ । १४ । ७)

हे गायत्रि ! तुम त्रिभुवनरूप प्रथम चरण से एकपदी हो । ऋक्, यजुः एवं सामरूप द्वितीय चरण से द्विपदी हो । प्राण, अपान तथा व्यानरूप तृतीय चरण से त्रिपदी हो और तुरीय ब्रह्मरूप चतुर्थ चरण से चतुष्पदी हो । निर्गुण स्वरूप से अचिन्त्य होने के कारण तुम 'अपद' हो (इसीलिये वेद 'नेति-नेति' कहकर तुम्हारे स्वरूप का वर्णन करते हैं ।) अतएव मन-बुद्धि के अगोचर होने से तुम सबके लिये प्राप्य नहीं हो । तुम्हारे दर्शनीय (अनुभव करने योग्य) चतुर्थपद को, जो प्रपञ्च से परे वर्तमान शुद्ध परब्रह्मरूप है, नमस्कार है । तुम्हारी प्राप्ति में विघ्न डालने वाले के राग-द्वेष, काम-क्रोध आदिरूप पाप मेरे पास न पहुँच सकें । (अर्थात् परब्रह्मस्वरूपिणी तुमको मैं निर्विघ्न प्राप्त करूँ ।)[१०२]

---

[१०२] इस मन्त्र का दूसरा अर्थ इस प्रकार भी हो सकता है—

हे गायत्री देवि ! तुम समग्र ब्रह्मरूपा होने के कारण एक पदवाली हो (अर्थात् जो कुछ है, वह ब्रह्मस्वरूप ही है, इस न्याय से तुम एक पदवाली हो) सगुण- निर्गुणरूपा होने से तुम दो पदोंवाली हो । ब्रह्मा, विष्णु और शिवरूप में तीन पदोंवाली हो । विराट्, हिरण्यगर्भ, ईश्वर और परब्रह्मरूपा होने के कारण तुम चार पदोंवाली हो । अचिन्त्य होने से तुम 'अपद्' हो, अतएव सबके लिये तुम प्राप्त नहीं हो । तुम्हारे दर्शनीय (अनुभव करने योग्य) चतुर्थ पदको, जो प्रपञ्च से परे वर्तमान शुद्ध परब्रह्मस्वरूप है, नमस्कार है । तुम्हारी प्राप्ति में विघ्नडालनेवाले वे राग-द्वेष, काम-क्रोध आदिरूप पाप मेरे पास न पहुँच सकें । (अर्थात् परब्रह्मस्वरूपिणी ! तुमको मैं निर्विघ्न प्राप्त करूँ) ।

इसके अनन्तर नीचे लिखे विनियोग-वाक्य को पढ़े—

ॐकारस्य ब्रह्म ऋषिर्दैवी गायत्री छन्दः परमात्मा देवता, तिसृणां महाव्याहृतीनां प्रजापतिर्ऋषिर्गायत्र्युष्णिगनुष्टुभश्छन्दांस्यग्निवायुसूर्या देवताः, तत्सवितुरिति विश्वामित्रऋषिर्गायत्री छन्दः सविता देवता जपे विनियोगः।

फिर नीचे लिखे अनुसार गायत्री-मन्त्रका कम-से-कम १०८ बार माला आदि से गिनते हुए जप करे। अधिक जहाँ तक हो अच्छा है। जप के समय गायत्री के तेजोमय स्वरूप का ध्यान और मन्त्र के अर्थ का अनुसंधान होता रहे तो बहुत ही उत्तम है। गायत्री-मन्त्र इस प्रकार है—

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॐ।

(यजु. अ. ३६ मं. ३)

हम स्थावर-जङ्गमरूप सम्पूर्ण विश्व को उत्पन्न करने वाले उन निरतिशय प्रकाशमय परमेश्वर को भजने योग्य तेज का ध्यान करते हैं जो हमारी बुद्धियों को सत्कर्मों की ओर प्रेरित करते हैं तथा जो भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्लोकरूप सच्चिदानन्दमय परब्रह्म है[१०३]।

तदनन्तर नीचे लिखे विनियोग-वाक्य का पाठ करे—

ॐ विश्वतश्चक्षुरिति भौवन ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो विश्वकर्मा देवता सूर्यप्रदक्षिणायां विनियोगः।

फिर नीचे लिखे मन्त्र से अपने स्थान पर खड़े होकर सूर्यदेव की एक बार प्रदक्षिणा करे—

---

[१०३] इस मन्त्र का अर्थ ऐसा भी है—

सच्चिदानन्द, विराट्स्वरूप, सब संसार को उत्पन्न करनेवाले परमेश्वर के उस भजने योग्य तेज का हमलोग ध्यान करते हैं, जो हमलोगों की बुद्धियों को अपने स्वरूप में लगावें।

ॐविश्वतश्चक्षुरुतविश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात्। सम्बाहुभ्यां धमति सम्पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः ॥[१०४] (यजु. अ. १७ मं. १९)

वे एकमात्र परमात्मा पृथिवी और आकाश की रचना करते समय धर्माधर्मरूप भुजाओं और पतनशील पञ्च महाभूतों से संगत होते अर्थात् काम लेते हैं। तात्पर्य यह है कि धर्माधर्मरूप निमित्त और पञ्चभूतरूप उपादान कारणों से अन्य साधन की सहायता लिये बिना ही सबकी सृष्टि करते हैं। उनके सब ओर नेत्र हैं, सब ओर मुख है, सब ओर भुजाए हैं और सब ओर चरण हैं। (अर्थात् सर्वत्र उनकी सभी इन्द्रियाँ हैं, अथवा सब प्राणी परमेश्वर स्वरूप हैं; अतः उनके जो नेत्र आदि हैं, वे उनमें व्याप्त परमात्मा के ही नेत्र आदि हैं)।

इसके पश्चात् बैठकर निम्नाङ्कित विनियोग का पाठ करे—

ॐ देवा गातुविद इति मनसस्पतिर्ऋषिर्विराडनुष्टप्छन्दो वातो देवता जपनिवेदने विनियोगः। (तत् पश्चात्)

ॐ देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित मनसस्पत इमं देव यज्ञ ँ स्वाहा व्वाते धाः। (यजु. अ. २ मं. २१)

'हे यज्ञवेत्ता देवताओं! आपलोग हमारे इस जपरूपी यज्ञ को पूर्ण हुआ जानकर अपने गन्तव्य मार्ग को पधारें। हे चित्त के प्रवर्तक परमेश्वर! मैं इस जप-यज्ञ को आपके हाथ में अर्पण करता हूँ। आप इसे वायुदेवता में स्थापित करें।'[१०५]

---

[१०४] प्रदक्षिणा पौराणिक श्लोक इस प्रकार है—

यानि कानि च पापानि जन्मान्तरकृतानि च।
तानि तानि प्रणश्यन्ति प्रदक्षिण पदे पदे ॥

[१०५] वाते हि यज्ञोऽवतिष्ठते। तथा च श्रुतिः— वायुरेवाग्निस्तस्माद् यदैवाध्वर्युरुत्तमं कर्म करोत्यथैनमेवाप्यौति।

इस मन्त्र को पढ़कर नमस्कार करने के अनन्तर—

अनेन यथाशक्तिकृतेन गायत्रीजपाख्येन कर्मणा भगवान् सूर्यनारायणः प्रीयतां न मम ।

यह वाक्य पढ़े । इसके बाद—

उत्तमे शिखरे इति वामदेव ऋषिरनुष्टप्छन्दः गायत्री देवता गायत्री विसर्जने विनियोगः ।

इस विनियोग को पढ़कर—

ॐ उत्तमे शिखरे देवी भूम्यां पर्वतमूर्धनि ।
ब्राह्मणेभ्योऽभ्यनुज्ञाता गच्छ देवि यथासुखम् ॥ (तै.आ.प्र.१०.प्र.३०)

हे गायत्री देवि ! अब तुम अपने उपासक ब्राह्मणों के पास से उनकी अनुमति लेकर भूमिपर स्थित जो मेरुनामक पर्वत है, उसकी चोटीपर विद्यमान जो सुरम्य शिखर है, वही तुम्हारा वासस्थान है; उसमें निवास करने के लिये सुखपूर्वक जाओ ।

इस मन्त्र को पढ़कर गायत्री देवी का विसर्जन करे, फिर निम्नाङ्कित वाक्य पढ़कर यह संध्योपासनकर्म परमेश्वर को समर्पित करे ।

अनेन सन्ध्योपासनाख्येन कर्मणा श्रीपरमेश्वरः प्रीयतां न मम ।

ॐ तत्सद्ब्रह्मार्पणमस्तु ।

तदनन्तर भगवान् का स्मरण करे—

यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु ।
न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम् ॥

श्रीविष्णवे नमः ॥ श्रीविष्णवे नमः ॥

॥ इति श्रीविष्णुस्मरणात्परिपूर्णतास्तु ॥

॥ इति ॥

नित्यहोमविधि

प्रातःकाल स्नान-संध्या आदि के अनन्तर नित्यहोम करना चाहिये। नित्यहोम प्रातः और सायं काल में किया जाता है। साग्निक पुरुष स्थापित अग्नि में नित्यहोम करते हैं, निरग्निक पुरुष 'पृष्ठो-दिवि-विधान' के अनुसार नित्य हवनकाल में अग्नि स्थापित कर लेते हैं। आजकल अधिकांश लोग निरग्निक ही हैं, अतः उनकी सुविधा के लिये अग्निस्थापनपूर्वक हवन का विधान दिया जा रहा है। प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व हवन का मुख्य काल है, उसके बाद गौण काल है। सायंकाल में जबतक पश्चिम में लाली दिखायी दे और ताराएँ अच्छी तरह न उगी हों तभी तक हवन का मुख्य काल है, उसके पश्चात् गौण काल है।

पूर्वाभिमुख आसन पर बैठकर आचमन और प्राणायाम करके हाथ में कुश की पवित्री और जल ले निम्नाङ्कित वाक्य पढ़कर संकल्प करे—

ॐ तत्सदद्य[१०६] अमुकगोत्रः अमुकशर्मा अहं श्रीपरमेश्वरप्रीतये सायंप्रातर्होमं करिष्ये।

इसके बाद वेदी अथवा ताम्रकुण्ड में पञ्चभूसंस्कार करना चाहिये। तीन कुशों से भूमि अथवा ताम्रकुण्ड को झाड़ दे, उन कुशों को ईशान कोण में फेंक दे, गोमय और जल से लेपन करे। तत्पश्चात् स्रुवा अथवा तीन कुशोंद्वारा उत्तरोत्तर क्रम से तीन-तीन पूर्वाग्र रेखाएँ करे। उल्लेखन-क्रम से अनामिका और अङ्गुष्ठद्वारा तीन बार मृत्तिका उठाकर ईशान में फेंक दे, फिर वहाँ जल छिड़के। इस प्रकार संस्कार करके निम्नाङ्कित मन्त्र से वहाँ अग्नि ले आवे। (पहले मन्त्रों के विनियोग पढ़े।)

---

[१०६] इस संकल्प में संध्या में दिये हुए संकल्प के अनुसार देश-काल की योजना कर लेनी चाहिये।

अग्न्याहरणमन्त्र

अन्वग्निरित्यस्य पुरोधा ऋषिस्त्रिष्टुप् छन्दोऽग्निर्देवता अग्न्यानयने विनियोगः।

ॐ अन्वग्ग्निरुषसामग्ग्रमक्ख्यदन्वहानि प्प्रथमो जात वेदाः। अनु सूर्य्यस्य पुरुत्रा च रश्मीननु द्यावा पृथिवीऽआततन्थ।[१०७] (यजु.सं.११।१७)

इसके बाद निम्नाङ्कित मन्त्र पढ़कर पूर्वोक्त वेदी अथवा ताम्रकुण्ड में अग्नि की स्थापना करे।

अग्निस्थापनमन्त्र

पृष्टो दिवीत्यस्य कुत्सऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दो वैश्वानरो देवता अग्निस्थापने विनियोगः।

ॐ पृष्ट्टो दिवि पृष्ट्टोअग्निः पृथिव्व्यां पृष्ट्टो व्विश्वाऽ-ओषधीरा विवेश।
वैश्वानरः सहसा पृष्ट्टोऽअग्निः स नो दिवा स रिषस्पातु नक्तम्[१०८]॥
(यजु.सं.१८।७३)

तदनन्तर निम्नाङ्कित मन्त्रों से अग्नि का उपस्थान (प्रार्थना एवं प्रणाम) करे।

उपस्थानमन्त्र

समिधाग्निमिति तं त्वेति च देवा ऋषयो गायत्री छन्दोऽग्निर्देवता अग्न्युपस्थाने विनियोगः।

---

[१०७] जिन अग्निदेव ने उषाकाल के प्रारम्भ में क्रमशः प्रकाश फैलाया, फिर समस्त उत्पन्न वस्तुओं का ज्ञान रखने वाले जिन प्रमुख देव ने दिनों को अभिव्यक्त किया तथा सूर्य की किरणों को अनेक रंग-रूपों में प्रकाशित किया, और जो आकाश एवं पृथ्वी को सब ओर से व्याप्त किये हुए हैं, उन अग्निदेव का हम साक्षात्कार कर रहे हैं।

[१०८] द्युलोक में कौन आदित्यरूप से तप रहा है? इस प्रकार, जिनके विषय में मुमुक्षुओं ने प्रश्न किया है, पृथ्वी अर्थात् अन्तरिक्षलोक में कौन 'विद्युत्' रूप से प्रकाशमान हो रहा है?—इस प्रकार, जिनके सम्बन्ध में जलार्थी लोगों द्वारा प्रश्न किया गया

ॐ समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्। अस्मिन् हव्या जुहोतन[१०९] ॥ (यजु.सं.३ । १)

ॐ तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्द्धयामसि बृहच्छोचा यविष्ठ्य [११०] ॥ (यजु.सं.३ । ३)

इसके पश्चात् नीचे लिखे (व्याहृतियोंसहित तीन) मन्त्रों से अग्नि को प्रज्वलित करे।

अग्नि-प्रज्वालनमन्त्र

त्रिव्याहृतीनां प्रजापतिर्ऋषिर्गायत्र्युष्णिगनुष्टुभश्छन्दांस्यग्निवायुसूर्या देवताः ताꣳ सवितुरिति कण्व ऋषिस्त्रिष्टुप् छन्दः सविता देवता, तत्सवितुरिति विश्वामित्र ऋषिर्गायत्री। छन्दः सविता देवता, विश्वानि देवेति नारायण ऋषिर्गायत्री छन्दः सविता देवता सन्धुक्षणे विनियोगः।

ॐ भूर्भुवः स्वः। ताꣳसवितुर्व्वरेण्यस्य चित्रामाऽहं व्वृणे सुमतीं व्विश्वजन्याम्! यामस्य कण्वोऽअदुहत् प्रपीनाꣳ सहस्त्रधारां पयासामहीं गाम्[१११] ॥ (यजु. सं. १७ । ७४)

है; जो सम्पूर्ण औषधियों (व्रीहि-यव आदि अन्नों) में व्याप्त होकर मनुष्यों की जिज्ञासा के विषय हो रहे हैं (अर्थात् ताप, फलपरिपाक और प्रकाश के द्वारा कौन समस्त प्राणियों का उपकार और उनके जीवन की रक्षा कर रहा है? इस प्रकार जिन्हें जानने के लिये लोग प्रश्न करते हैं) तथा यज्ञ में अध्वर्युद्वारा बलपूर्वक मन्थन करने पर (यह किसके लिये मन्थन किया जा रहा है?—ऐसा) लोगों ने जिनके विषय में प्रश्न किया है, वे वैश्वानर अग्निदेव दिन में और रात्रि में भी हमें नाश से बचावें।

१०९. हे ऋत्विग्गण! आप लोग घृताक्त समिधा से अग्निदेव की परिचर्या करें तथा आतिथ्य कर्म से पूजने योग्य उन अग्निदेव को घी से प्रज्वलित करें। फिर इस प्रज्वलित अग्नि में सब ओर नाना प्रकार के हविय का हवन करें।

११०. हे अङ्गिरः—हे गतिशील अग्निदेव! प्रसिद्ध गुणों से युक्त आप को हम समिधा और घी से प्रज्वलित कर रहे हैं। हे निर्जर देव! आप अत्यन्त देदीप्यमान होइये।

१११. मैं वरण करने योग्य सविता की विचित्र (नाना प्रकार के मनोवाञ्छित फल देने में समर्थ) तथा सब लोगों का हित-साधन करने वाली उस कल्याणमयी बुद्धि को

ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात्[११२]
(यजु.सं.३० ।२)

ॐ विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद् भद्रं तन्नऽआसुव[११३] ॥
(यजु.सं.३० ।३)

इस प्रकार इन मन्त्रोंसे अग्निको प्रज्वलित करके बायें हाथ में तीन कुश रखे और खड़ा होकर प्रादेशमात्र लम्बी तीन घृताक्त समिधाएँ अग्निमें छोड़े। अग्निसमिन्धनका मन्त्र इस प्रकार है—

समिन्धन-मन्त्र

पुनस्त्वेति प्रजापतिर्ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दोऽग्निर्देवता अग्निसमिन्धने विनयोगः ।

पुनस्त्वादित्या रुद्रा व्वसवः समिन्धताम्पुनर्ब्ब्रह्माणो व्वसुनीथ यज्ञैः ।
घृतेन त्वन्तन्वं व्वर्धयस्व सत्त्याः सन्तु यजमानस्य कामाः[११४] ॥
(यजु. सं. १२ । ४४)

फिर बैठकर जलसे अग्निका पर्युक्षण करे और घृत, दधि, खीर अथवा घृताक्त यव, चावल या तिल आदिसे अथवा मधुर फल से निम्नलिखित मन्त्रोंद्वारा चार आहुतियाँ दें । (इनमें आरम्भकी दो आहुतियाँ सायं-कालमें दी जाती हैं और अन्त की दो आहुतियाँ प्रातःकाल में । सायंकाल से आरम्भ करे । सायं-प्रातः मिल-

---

अङ्गीकार करता हूँ, जिस गौरूपा बुद्धि का कण्व ऋषिने दोहन किया था तथा जो अत्यन्त पुष्ट सहस्रों क्षीर-धाराओं से युक्त और दूध से परिपूर्ण है ।

[११२] हम स्थावर-जङ्गमरूप सम्पूर्ण विश्व को उत्पन्न करने वाले उन निरतिशय प्रकाशमय परमेश्वर के भजने योग्य तेज का ध्यान करते हैं, जो हमारी बुद्धियों को सत्कर्मों की ओर प्रेरित करते हैं ।

[११३] हे सूर्यदेव ! सम्पूर्ण पाप दूर कर दो और जो कल्याणस्वरूप वस्तु है, वह हमें प्राप्त कराओ ।

[११४] हे अग्निदेव ! आदित्य, रुद्र और वसुगण तुम्हें पुनः उद्दीप्त करें । हे वसुनीय (धननायक) ! ऋत्विक् और यजमानरूप ब्राह्मण लोग यज्ञों के द्वारा तुम्हें फिर से प्रज्वलित करें तथा तुम भी हमारे अर्पण किये हुए घी से अपने शरीर को बढ़ाओ (प्रज्वलित करो) और तुम्हारे प्रज्वलित होने पर यजमान की कामनाएँ पूर्ण हों ।

कर एक दिनका होम है। सायंकालमें जिस द्रव्यसे होम करे उसीसे प्रातः-काल भी करे।)

सायंहोम

ॐ अग्नये स्वाहा, इदमग्नये न मम ।
ॐ प्रजापतये स्वाहा, इदं प्रजापतये न मम ॥

प्रातर्होम

ॐ सूर्याय स्वाहा, इदं सूर्याय न मम ।
ॐ प्रजापतये स्वाहा, इदं प्रजापतये न मम ॥

इसके पश्चात् अग्निकी प्रदक्षिणा करके प्रणाम करे और—

त्र्यायुषमिति नारायण ऋषिरुष्णिक् छन्द आशीर्देवता भस्मधारणे विनियोगः।

इस वाक्यसे विनियोग करके—

ॐ त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्। यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नोऽअस्तु त्र्यायुषम्[११५] ॥ (यजु.मं.३ ।६२)

इस मन्त्रसे होमके भस्मको क्रमशः ललाट, ग्रींवा, दक्षिण बाहुमूल और हृदयमें लगावे। इसके बाद निम्नाङ्कित श्लोक पढ़कर न्यूनतापूर्तिके लिये भगवान से प्रर्थना करे।

ॐ प्रमादात् कुर्वतां कर्म प्रच्यवेताध्वरेषु यत् ।
स्मरणादेव तद्विष्णोः सम्पूर्णं स्यादिति श्रुतिः[११६] ॥

---

[११५] जमदग्नि ऋषि और कश्यप मुनिकी जो तीनों (बाल्य, कुमार, यौवन) अवस्थाओं में आयु का समूह है तथा इन्द्र आदि देवताओं की जो तीनों (बाल्य, कुमार और यौवन) अवस्थाओं की आयु का समाहार है, वह हमें प्राप्त हो।

[११६] यज्ञ में कर्म करनेवालों का जो कर्म प्रमादवश विधि से च्युत हो जाय, वह भगवान्—विष्णु के स्मरणमात्र से ही पूर्ण हो सकता है—ऐसा श्रुतिका वचन है।

यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु ।
न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम्[११७] ॥
ॐ विष्णवे नमः । ॐ विष्णवे नमः ॥

अन्तमें निम्नाङ्कित वाक्य कहकर यह हवन-कर्म भगवान को अर्पण करे ।

कृतेनानेन नित्यहोमकर्मणा श्रीपरमेश्वरः प्रीयताम् न मम ।

॥इति॥

---

[११७] जिनके स्मरण और नामोच्चारण से तप, यज्ञ आदि क्रियाओं में न्यूनता की तत्काल पूर्ति हो जाती है, उन भगवान् अच्युत को मैं प्रणाम करता हूँ।

देवर्षिमनुष्यपितृतर्पणविधि

प्रातःकाल ब्राह्मवेला के पूर्व शयन से उठकर शौचादि से निवृत्त हो किसी नदी, सरोवर या कुएँ पर ही अपनी सुविधा के अनुसार स्नान करके शुद्ध उज्ज्वल वस्त्र पहनकर पूर्वाभिमुख हो कुशासन पर बैठे, फिर तीन बार आचमन[११८] करके संध्योपासना एवं नित्यहोम करने के पश्चात् बायें और दायें हाथ की अनामिका अंगुलि में 'पवित्रेस्थो वेष्णव्यौ.'[११९]— इस मन्त्र को पढ़ते हुए पवित्री (पैंती) धारण करे। फिर हाथ में त्रिकुश, यव, अक्षत और जल लेकर निम्नाङ्कित रूप से संकल्प पढ़े—

ॐ विष्णवे नमः ३। हरिः ॐ तत्सदद्यैतस्य श्रीब्रह्मणोऽह्नि द्वितीयपरार्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे जम्बूद्वीपे भरतखण्डे आर्यावर्तैकदेशे कलियुगे कलिप्रथमचरणे अमुकसंवत्सरे अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकवासरे अमुकगोत्रोत्पन्नः अमुकशर्मा (वर्मा, गुप्तः) अहं श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं देवर्षिमनुष्यपितृतर्पणं करिष्ये।

तदनन्तर एक ताँबे अथवा चाँदी के[१२०] पात्र में श्वेत चन्दन, चावल, सुगन्धित पुष्प और तुलसीदल रखे, फिर उस पात्र के ऊपर एक हाथ या प्रादेशमात्र लम्बे तीन कुश रखे, जिनका अग्रभाग पूर्व की ओर रहे। इसके बाद उस पात्र में

---

[११८] यहाँ आचमन का प्रकार बतलाया जाता है—'ॐ केशवाय नमः स्वाहा, ॐ नारायणाय नमः स्वाहा, ॐ माधवाय नमः स्वाहा।' इन तीन मन्त्रों को पढ़कर प्रत्येक से एक-एक बार (कुल तीन बार) एक-एक माशा जल पीना चाहिये, फिर 'ॐ गोविन्दाय नमः' इस मन्त्र से दायाँ हाथ धोकर 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय', इस मन्त्र से अपने ऊपर प्रदक्षिणक्रम से जल सींचे।

[११९] इस मन्त्र का अर्थ इस प्रकार है—'हे पवित्र करने वाले युगल कुशमय पवित्रको ! तुम दोनों यज्ञ से सम्बन्ध रखने वाले हो।'

[१२०] तर्पण में सोना, चाँदी, ताँबा अथवा काँस का पात्र होना चाहिये, मिट्टी का नहीं जैसा कि पितामह का वचन है—

तर्पण के लिये जल भर दे, फिर उसमें रखे हुए तीनों कुशों को तुलसी सहित सम्पुटाकार दायें हाथ में लेकर बायें हाथ से उसे ढक ले और निम्नाङ्कित मन्त्र पढ़ते हुए देवताओं का आवाहन करे—

ॐ विश्वेदेवास आगत शृणुता म इमꣳ हवम् ।
एदं बर्हिर्निषीदत ॥ (यजु.७।३४)

हे विश्वेदेवगण ! आपलोग यहाँ पदार्पण करें, हमारे प्रेमपूर्वक किये हुए इस आवाहन को सुनें और इस कुश के आसनपर विराजमान हों ।

विश्वेदेवाः शृणुतेमꣳ हवं मे ये अन्तरिक्षे य उपद्यविष्ठ ये अग्निजिह्वा उत बा यजत्रा आसद्यास्मिन्बर्हिषि मादयध्वम् ॥ (यजु.३३।५३)

हे विश्वेदेवगण ! आप लोगों में से जो अन्तरिक्ष में हों, जो द्युलोक (स्वर्ग) के समीप हों तथा अग्नि के समान जिह्वावाले एवं यजन करने योग्य हों, वे सब हमारे इस आवाहन को सुनें और इस कुशासन पर बैठकर तृप्त हों ।

आगच्छन्तु महाभागा विश्वेदेवा महाबलाः ।
ये तर्पणेऽत्र विहिताः सावधाना भवन्तु ते ॥

जिनका इस तर्पण में वेदविहित अधिकार है, वे महान् बल वाले महाभाग विश्वेदेवगण यहाँ आवें और सावधान हो जायँ ।

इस प्रकार आवाहन कर कुशका आसन दे और उन पूर्वाग्रकुशोंद्वारा[१२१] दायें हाथ की समस्त अङ्गुलियों के अग्रभाग अर्थात् देवतीर्थ से ब्रह्मादि देवताओं

हेमंरौप्यंमयंपात्रताम्रकांस्यसमुद्भवम् ।
पितृणां तर्पणे पात्रं मृण्मयं तु परित्यजेत् ॥

[१२१] देवताओं का तर्पण कुश के अग्रभाग से, मनुष्यों का मध्यभाग से और पितरों का मूलाग्र एवं दक्षिणाग्रभाग से होना चाहिये । इसी प्रकार देवतर्पण में पूर्वाभिमुख, मनुष्यतर्पण में उत्तराभिमुख और पितृतर्पण में दक्षिणाभिमुख रहना चाहिये । दक्षस्मृति में लिखा है—

प्रादेशमात्रमुद्धृत्य सलिलं प्राङ्मुखः सुरान् ।
उदङ् मनुष्यांस्तृप्येत्तु पितृन् दक्षिणतस्तथा ॥

के लिये पूर्वोक्त पात्र में से[१२२] एक-एक अञ्जलि चावल मिश्रित जल लेकर दूसरे पात्र में गिरावे और निम्नाङ्कित रूप से उन-उन देवताओं के नाममन्त्र पढ़ता रहे—

देवतर्पण

ॐ ब्रह्मा तृप्यताम्। ॐ विष्णुस्तृप्यताम्। ॐ रुद्रस्तृप्यताम्। ॐ प्रजापतिस्तृप्यताम्। ॐ देवास्तृप्यन्ताम्। ॐछन्दांसि तृप्यन्ताम्। ॐ वेदास्तृप्यन्ताम्। ॐ ऋषयस्तृप्यन्ताम्। ॐ पुराणाचार्यास्तृप्यन्ताम्। ॐ गन्धर्वास्तृप्यन्ताम्। ॐ इतराचार्यास्तृप्यन्ताम्। ॐ संवत्सरः सावयवस्तृप्यताम्। ॐ देव्यस्तृप्यन्ताम्। ॐ अप्सरसस्तृप्यन्ताम्। ॐ देवानुगास्तृप्यन्ताम्। ॐ नागास्तृप्यंन्ताम्। ॐ सागरास्तृप्यन्ताम्। ॐ पर्वतास्तृप्यन्ताम्। ॐ सरितस्तृप्यन्ताम्। ॐ मनुष्यास्तृप्यन्ताम्। ॐ यक्षास्तृप्यन्ताम्। ॐ रक्षांसि तृप्यन्ताम्। ॐ पिशाचास्तृप्यन्ताम्। ॐ सुपर्णास्तृप्यन्ताम्। ॐ भूतानि तृप्यन्ताम्। ॐ पशवस्तृप्यन्ताम्। ॐ वनस्पतयस्तृप्यन्ताम्। ॐ ओषधयस्तृप्यन्ताम्। ॐ भूतग्रामश्चतुर्विधस्तृप्यन्ताम्।

ऋषितर्पण

इसी प्रकार निम्नाङ्कित मन्त्रवाक्यों से मरीचि आदि ऋषियों को भी एक-एक अञ्जलि जल दे—

अग्रैस्तु तर्पयेद देवान् मनुष्यान् कुशमध्यतः ।
पितृस्तु कुशमूलाग्रैर्विधिः कौशो यथाक्रमम् ॥

[१२२] देवताओं को एक-एक, मनष्यों को दो-दो और पितरों को तीन-तीन अञ्जलि जल देना चाहिये। स्त्रियों में माता, पितामही और प्रपितामही आदि को तीन-तीन, सौतेली माँ और आचार्य-पत्नी को दो-दो तथा अन्य सब स्त्रियों को एक-एक अञ्जलि जल देना चाहिये। व्यासजी कहते हैं—

एकैकमञ्जलिं देवा द्वौ द्वौ तु सनकादयः ।
अर्हन्ति पितरस्त्रींस्त्रीन् स्त्रिय एकैकमञ्जलिम् ।
सांख्यायनः — मातृमुख्यास्तु यास्तिस्नस्तासां त्रींस्त्रीञ्जलाञ्जलीन् ।
सपत्न्याचार्यपत्नीनां द्वौ द्वौ दद्याज्जलाञ्जलीम् ॥

ॐ मरीचिस्तृप्यताम्। ॐ अत्रिस्तृप्यताम्। ॐ अङ्गिरास्तृप्यताम्। ॐ पुलस्त्यस्तृप्यताम्। ॐ पुलहस्तृप्यताम्। ॐ क्रतुस्तृप्यताम्। ॐ वसिष्ठस्तृप्यताम्। ॐ प्रचेतास्तृप्यताम्। ॐ भृगुस्तृप्यताम्। ॐ नारदस्तृप्यताम्।

दिव्यमनुष्यतर्पण

इसके बाद जनेऊ को मालाकी भाँति गले में धारण कर [अर्थात् 'निवीती[१२३] हो] पूर्वोक्त कुशों को दायें हाथ की कनिष्ठिका के मूलभाग में उत्तराग्र रखकर स्वयं उत्तराभिमुख हो निम्नाङ्कित मन्त्र वचनों को दो-दो बार पढ़ते हुए दिव्य मनुष्यों के लिये प्रत्येक को दो-दो अञ्जलि यवसहित जल प्राजापत्यतीर्थ (कनिष्ठिका के मूलभाग) से अर्पण करे—

ॐ सनकस्तृप्यताम् ॥२॥ ॐ सनन्दनस्तृप्यताम् ॥२॥ ॐ सनातनस्तृप्यताम् ॥२॥ ॐ कपिलस्तृप्यताम् ॥२॥ ॐ आसुरिस्तृप्यताम् ॥२॥ ॐ वोढुस्तृप्यताम् ॥२॥ ॐ पञ्चशिखस्तृप्यताम् ॥२॥

दिव्यपितृतर्पण

तत्पश्चात् उन कुशों को द्विगुण-भुग्न करके उनका मूल और अनुभाग दक्षिण की ओर किये हुए ही उन्हें अँगूठे और तर्जनी के बीच में रखे और स्वयं दक्षिणाभिमुख हो बायें घुटने को पृथ्वी पर रखकर अपसव्य-भाव से (जनेऊ को दायें कंधे

---

[१२३] देवतर्पण तथा अन्य कार्यों में यज्ञोपवीत बायें कंधे पर रहता है, इसकी उपवीत संज्ञा है। कण्ठ में माला की भाँति किया हुआ यज्ञोपवीत निवीत कहलाता है— "निवीतं कण्ठलम्बनम्।" (औशनसस्मृति) दिव्य मनुष्यों के तर्पण में यज्ञोपवीत को निवीत भाव से ही रखना चाहिये—

निवीती हन्तकारेण मनुष्यांस्तर्पयेदथ । (वाचस्पति)

पितृकार्य में यज्ञोपवीत दायें कंधे पर रहता है, इसको प्राचीनावीत या अपसव्य कहते हैं—

सव्यबाहुं समुद्धृत्य दक्षिणेन धृतं द्विजैः ।
प्राचीनावीतमित्युक्तं पित्र्ये कर्मणि धारयेत् ॥ (औशनसस्मृति)

पर रखकर) पूर्वोक्त पात्रस्थ जल में काला तिल[१२४] मिलाकर पितृतीर्थ से (अँगूठा और तर्जनी के मध्यभाग से) दिव्य पितरों के लिये निम्नाङ्कित मन्त्रवाक्यों को पढ़ते हुए तीन-तीन अञ्जलि जल दे। यथा—

ॐ कव्यवाडनलस्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं (गङ्गाजलं वा) तस्मै स्वधा नमः ॥३॥ ॐ सोमस्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं (गङ्गाजलं वा) तस्मै स्वधा नमः ॥३॥ ॐ यमस्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं (गङ्गाजलं वा) तस्मै स्वधा नमः ॥३॥ ॐ अर्यमा तृप्यताम् इदं सतिलं जलं (गङ्गाजलं वा) तस्मै स्वधा नमः ॥३॥ ॐ अग्निष्वात्ताः पितरस्तृप्यन्ताम् इदं सतिलं जलं (गङ्गाजलं वा) तेभ्यः स्वधा नमः ॥३॥ ॐ सोमपाः पितरस्तृप्यन्ताम् इदं सतिलं जलं (गङ्गाजलं वा) तेभ्यः स्वधा नमः ॥३॥ ॐ बर्हिषदः पितरस्तृप्यन्ताम् इदं सतिलं जलं (गङ्गाजलं वा) तेभ्यः स्वधा नमः ॥३॥

यमतर्पण

इसी प्रकार निम्नलिखित मन्त्र-वाक्यों को पढ़ते हुए चौदह यमों के लिये भी पितृतीर्थ से ही तीन-तीन अञ्जलि तिलसहित जल दे—

---

[१२४] तिलसहित तर्पण का माहात्म्य वायुपुराण में यों लिखा है—

तिलदर्भैस्तु संयुक्तं श्रद्धया यत्प्रदीयते ।
तत्सर्वममृतं भूत्वा पितृणामुपतिष्ठते ॥

'तिल और कुशा के साथ श्रद्धा से जो कुछ दिया जाता है, वह अमृतरूप होकर पितरों को प्राप्त होता है।'

याज्ञवल्क्य ने देवताओं, दिव्य मनुष्यों और पितरों के लिये क्रमशः श्वेत, शबल और काले तिल का उपयोग बतलाया है—

शुक्लैस्तु तर्पयेद् देवान् मनुष्याञ्छबलैस्तिलैः ।
पितंस्तु तर्पयेत्कृष्णैस्तर्पणे सर्वदा द्विजैः ॥

अग्निपुराण में जीवात्पितृक (जिसका पिता जीवित हो उस) के द्वारा तिल-तर्पण का निषेध किया गया है—

दर्शश्राद्धं गयाश्राद्धं तिलैस्तर्पणमेव च ।
न जीवत्पितृको भूप कुर्यात् कृत्वाघमाप्नुयात् ॥

ॐ यमाय नमः ॥३ ॥ ॐ धर्मराजाय नमः ॥३ ॥ ॐ मृत्यवे नमः ॥३ ॥ ॐ अन्तकाय नमः ॥३ ॥ ॐ वैवस्वताय नमः ॥३ ॥ ॐ कालाय नमः ॥३ ॥ ॐ सर्वभूतक्षयाय नमः ॥३ ॥ ॐ औदुम्बराय नमः ॥३ ॥ ॐ दध्नाय नमः ॥३ ॥ ॐ नीलाय नमः ॥३ ॥ ॐ परमेष्ठिने नमः ॥३ ॥ ॐ वृकोदराय नमः ॥३ ॥ ॐ चित्राय नमः ॥३ ॥ ॐ चित्रगुप्ताय नमः ॥३ ॥

मनुष्यपितृतर्पण

इसके पश्चात् निम्नाङ्कित मन्त्र से पितरों का आवाहन करे—

ॐ उशन्तस्त्वा निधीमह्यु शन्तः समिधीमहि ।
उशन्नुशत आवाह पितृन्हविषे अत्तवे ॥ (यजु. १९ ।७०)

हे अग्ने ! तुम्हारे यजन की कामना करते हुए हम तुम्हें स्थापित करते हैं। यजन की ही इच्छा रखते हुए तुम्हें प्रज्वलित करते हैं। हविष्य की इच्छा रखते हुए तुम भी तृप्ति की कामनावाले हमारे पितरों को हविष्य भोजन करने के लिये बुलाओ।

आयन्तु नः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः।
अस्मिन्यज्ञे स्वधया मदन्तोऽधिब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥ (यजु.१९ ।५८)

हमारे सोमपान करने योग्य अग्निष्वात्त[१२५] पितृगण देवताओं के साथ गमन करने योग्य मार्गों से यहाँ आवें और इस यज्ञ में स्वधा से तृप्त होकर हमें मानसिक उपदेश दें तथा वे हमारी रक्षा करें।

तदनन्तर अपने पितृगणों[१२६] का नाम-गोत्र आदि उच्चारण करते हुए प्रत्येक के लिये पूर्वोक्त विधि से ही तीन-तीन अञ्जलि तिलसहित जल दे। यथा—

---

[१२५] जिनके शरीर का अग्नि ने आस्वादन किया है अर्थात् इस लोक में मृत्यु के पश्चात् जिनका शरीर दग्ध किया गया है, वे अग्निष्वात्त हैं।

[१२६] तर्पण में पित्तरों का क्रम यों समझना चाहिये—

तातांम्बात्रितयं सपत्नजननी मातामहादित्रयं
सस्त्रि स्त्रीतनयादि तातजननीस्वभ्रातरः सस्त्रियः।

ॐ अमुकगोत्रः[१२७] अस्मत्पिता (बाप) अमुकशर्मा[१२८] वसुरूपातृप्यताम् इदं सतिलं जलं (गङ्गाजलं वा) तस्मै स्वधा नमः ॥३ ॥ अमुकगोत्रः अस्मत्पितामहः (दादा) अमुकशर्मा रुद्ररूपस्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं (गङ्गाजलं वा) तस्मै स्वधा नमः ॥३ ॥ अमुकगोत्रः अस्मत्प्रपितामहः (परदादा) अमुकशर्मा आदित्यरूपस्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं ([१२९]गङ्गाजलं वा) तस्मै स्वधाः नमः ॥३ ॥ अमुकगोत्रा अस्मन्माता अमुकी देवी दा[१३०] वसुरूपा तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्यै स्वधा नमः ॥३ ॥ अमुकगोत्रा अस्मत्पितामही (दादी) अमुकी देवी दा रुद्ररूपा तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्यै स्वधा नमः ॥३ ॥

तातम्बात्मभगिन्यपत्यधवयुग् जायापिता सद्गुरुः
शिष्याप्ताः पितरो महालयविधौ तीर्थे तथा तर्पणे ॥

पिता, पितामह, प्रपितामह । माता, पितामही, प्रपितामही, सौतेली माता, मातामह, प्रमातामह, वृद्धप्रमातामह, मातामही, प्रभातामही, वृद्धप्रमातामही, पत्नी, पुत्र (सपत्नीक एवं पुत्र सहित), पति-पुत्रसहित पुत्री । पत्नी-पुत्रादिसहित पितृव्य (चाचा), मातुल (मामा), स्वभ्राता तथा सौतेला भाई । पति-पुत्रादिसहित फूआ तथा मौसी, बहिन तथा सौतेली बहिन । पत्नी आदि सहित श्वसुर, सद्गुरु, शिष्य तथा आप्तपुरुष-ये सभी इसी क्रम में महालयविधि (पितृपक्ष-श्राद्ध) तथा तीर्थश्राद्ध एवं तर्पण के लिये पितर निश्चित किये गये हैं ।

[१२७] पारस्कर गृह्यसूत्र के अनुसार क्रमशः गोत्र-सम्बन्ध नामका उच्चारण करना चाहिये ।

[१२८] बौधायनः—शर्मान्तं ब्राह्मणस्योक्तं वर्मान्तं क्षत्रियस्य तु ।
गुप्तान्तं चैव वैश्यस्य दासान्तं शूद्रजन्मनः ॥
चतुर्णामपि वर्णानां गोत्रत्वे पितृगोत्रता ।
पितृगोत्रं कुमारीणामूढानां भर्तृगोत्रता ॥

बृद्धयाज्ञवल्क्यः— तृप्यतामिति वक्तव्यं नाम्ना तु प्रणवादिना ।
आवाह्य पूर्ववन्मन्त्रैरास्तीर्य च कुशांश्च तान् ॥

[१२९] इसी प्रकार अन्यत्र भी 'गङ्गाजल' से तर्पण करते समय योजना कर लेनी चाहिये ।

[१३०] गोभिलसूत्र ने स्त्रीणां दान्तं नाम ज्ञेयम् । (नि. प्र. ७-८)

अमुकगोत्रा अस्मत्प्रपितामही (परदादी) अमुकी देवी दा आदित्यरूपा तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्यै स्वधा नमः ।।३ ।। अमुकगोत्रा अस्मत्सापत्नमाता (सौतेली मा) अमुकी देवी दा वसुरूपा तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्यै स्वधा नमः ।।३ ।।

इसके बाद निम्नाङ्कित नौ मन्त्रों को पढ़ते हुए पितृतीर्थ से जल गिराता रहे—

ॐ उदीरतामवर अत्परास उन्मध्यमाः पितरः सोम्यासः ।
असुं य ईयुरवृका ऋतज्ञास्ते नोऽवन्तु पितरो हवेषु ॥ (यजु.१९ ।४९)

इस लोक में स्थित, परलोक में स्थित और मध्यलोक में स्थित सोमभागी पितृगण क्रम से ऊर्ध्वलोकों को प्राप्त हों । जो वायुरूप को प्राप्त हो चुके हैं, वे शत्रुहीन सत्यवेत्ता पितर आवाहन करने पर [यहाँ उपस्थित हो] हमलोगों की रक्षा करें ।

अङ्गिरसो नः पितरो न वग्वा अथर्वाणो भृगवः सोम्यासः ।
तेषां वयꣳ सुमतौ यज्ञियानामपि भद्रे सौमनसे स्याम ॥ (यजु.१९.५०)

अङ्गिरा के कुल में, अथर्व मुनि के वंश में तथा भृगुकुल में उत्पन्न हुए नवीन गतिवाले एवं सोमपान करने योग्य जो हमारे पितर इस समय पितृलोक को प्राप्त हैं, उन यज्ञ में पूजनीय पितरों की सुन्दर बुद्धि में तथा उनके कल्याणकारी मन में हम स्थित रहें [अर्थात् उनकी मन-बुद्धि में हमारे कल्याण की भावना बनी रहे] ।

आयन्तु नः पितरः सोम्यासोऽग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः ।
अस्मिन्यज्ञे स्वधया मदन्तोऽधिब्रुवन्तु तेऽवन्त्वस्मान् ॥ (यजु.१९ ।५८)

इस मन्त्र का अर्थ पहले मनुष्य पितृ तर्पण में आ चुका है ।

ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम् । स्वधास्थ तर्पयत मे पितृन् । (यजु. २ ।३४)

हे जल ! तुम स्वादिष्ट अन्न के सारभूत रस, रोग— मृत्यु को दूर करनेवाले घी और सब प्रकार का कष्ट मिटाने वाले दुग्ध का बहन करते हो तथा सब ओर

प्रवाहित होते हो, अतएव तुम पितरों के लिये हविस्वरूप हो, इसलिये मेरे पितरों को तृप्त करो।

पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः पितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः प्रपितामहेभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः। अक्षन्पितरोऽमीमदन्त पितरोऽतीतृपन्त पितरः पितरः शुन्धध्वम्। (यजु. १९।३६)

स्वधा (अन्न) के प्रति गमन करनेवाले पितरों को स्वधा[१३१] संज्ञक अन्न प्राप्त हो, उन पितरों को हमारा नमस्कार है। स्वधा के प्रति जानेवाले पितामहों को स्वधा प्राप्त हो, उन्हें हमारा नमस्कार हैं। स्वधा के प्रति गमन करनेवाले प्रपितामहों को स्वधा प्राप्त हो, उन्हें हमारा नमस्कार है। पितर पूर्ण आहार कर चुके, पितर आनन्दित हुए, पितर तृप्त हुए। हे पितरो! अब आपलोग [आचमन आदि करके] शुद्ध हों।

ये चेह पितरो ये च नेह यांश्च विद्म याँ उ च न प्रविद्म।
त्वं वेत्थ यति ते जातवेदः स्वधाभिर्यज्ञꣳ सुकृतं जुषस्व॥ (यजु. १९।६७)

जो पितर इस लोक में वर्तमान हैं और जो इस लोक में नहीं (किन्तु पितृलोक में विद्यमान हैं) तथा जिन पितरों को हम जानते हैं और जिनको (स्मरण न होने के कारण) नहीं जानते हैं, वे सभी पितर जितने हैं, उन सबको हे जातवेदा— अग्निदेव! तुम जानते हो। (पितरों के निमित्त दी जानेवाली) स्वधाके द्वारा तुम इस श्रेष्ठ यज्ञ का सेवन करो— इसे सफल बनाओ।

मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः।
माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः॥ (यजु. १३।२७)

यज्ञ की इच्छा करनेवाले यजमान के लिये वायु मधु (पुष्परसमकरन्द) की वर्षा करती है। बहने वाली नदियाँ मधु के समान मधुर जल का स्रोत बहाती हैं। समस्त ओषधियाँ हमारे लिये मधुर रस से युक्त हों।

---

[१३१] 'स्वधा वै पितृणामन्नम्' इति श्रुतेः।

मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवꣳ रजः ।
मधु द्यौरस्तु नः पिता ॥ (यजु. १३ ।२८)

हमारे रात-दिन सभी मधुमय हों। पिता के समान पालन करनेवाला द्युलोक हमारे लिये मधुमय-अमृतमय हो। माता के समान पोषण करनेवाली पृथ्वी की धूल हमारे लिये मधुमयी हो।

मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँअस्तु सूर्यः। माध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥ (यजु.१३ ।२९)
ॐ मधु। मधु। मधु। तृप्यध्वम्। तृप्यध्वम्। तृप्यध्वम्।

वनस्पति और सूर्य भी हमारे लिये मधुमान (मधुर रससे युक्त) हों। हमारी समस्त गौएँ माध्वी— मधु के समान दूध देनेवाली हों।

फिर नीचे लिखे मन्त्र का पाठ मात्र करे—

ॐ नमो वः पितरो रसाय नमो वः पितरः शोषाय नमो वः पितरो जीवाय नमो वः पितरः स्वधायै नमो वः पितरो घोराय नमो वः पितरो मन्यवे नमो वः पितरः पितरो नमो वो गृहान्नः पितरो दत्त सतो वः पितरो देष्मैतद्वः पितरो वास आधत्त। (यजु.२ ।३२)

हे पितृगण! तुम से सम्बन्ध रखनेवाली रसस्वरूप वसन्त-ऋतु को नमस्कार है, शोषण करनेवाली ग्रीष्म-ऋतु को नमस्कार है, जीवनस्वरूप वर्षा ऋतु को नमस्कार है, स्वधारूप शरद्-ऋतु को नमस्कार है, प्राणियों के लिये घोर प्रतीत होने वाली हेमन्त ऋतु को नमस्कार है; क्रोधस्वरूप शिशिर-ऋतुको नमस्कार है। (अर्थात् तुमसे सम्बन्ध रखनेवली सभी ऋतुएँ तुम्हारी कृपा से सर्वथा अनुकूल होकर सबको लाभ पहुँचानेवाली हों) हे षड्ऋतुरूप[१३२] पितरो! तुम हमें (साध्वी पत्नी और सत्पुत्र आदि से युक्त) उत्तम गृह प्रदान करो। हे पितृगण! इन प्रस्तुत दातव्य वस्तुओं को हम तुम्हें अर्पण करते हैं, तुम्हारे लिये यह (सूत्ररूप) वस्त्र है,.इसे धारण करो।

---

[१३२] षड् वा ऋतवः पितरः इति श्रुतेः।

द्वितीयगोत्रतर्पण

इसके बाद द्वितीय गोत्र मातामह आदि का तर्पण करे, यहाँ भी पहले की ही भाँति निम्नलिखित वाक्यों को तीन-तीन बार पढ़कर तिलसहित जल की तीन-तीन अञ्जलियाँ पितृतीर्थ से दे। यथा—

ॐ अद्य अमुकगोत्रः अस्मन्मातामहः (नाना) अमुकशर्मा वसुरूपस्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं (गङ्गाजलं वा) तस्मै स्वधा नमः ॥३ ॥ अमुकगोत्रः अस्मत्प्रमातामहः (परनाना) अमुकशर्मा रुद्ररूपस्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्मै स्वधा नमः ॥३ ॥ अमुकशर्मा अमुकगोत्रः अस्मद्वृद्धप्रमातामहः (बूढ़े परनाना) आदित्यरूपस्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्मै स्वधा नमः ॥३ ॥ अमुकगोत्रा अस्मन्मातामही (नानी) अमुकी देवी दा वसुरूपा तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्यै स्वधा नमः ॥३ ॥ अमुकगोत्रा अस्मत्प्रमातामही (परनानी) अमुकी देवी दा रुद्ररूपा तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्यै स्वधा नमः ॥३ ॥ अमुकगोत्रा अस्मद्वृद्धप्रमातामही (बूढ़ी परनानी) अमुकी देवी दा आदित्यरूपा तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्यै स्वधा नमः ॥३ ॥

पत्न्यादितर्पण

अमुकगोत्रा अस्मत्पत्नी (भार्या) अमुकी देवी दा वसुरूपा तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्यै स्वधा नमः ॥१ ॥ अमुकगोत्रः अस्मत्सुतः (बेटा) अमुकशर्मा वसुरूपस्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्मै स्वधा नमः ॥३ ॥ अमुकगोत्रा अस्मत्कन्या (बेटी) अमुकी देवी दा वसुरूपा तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्यै स्वधा नमः ॥१ ॥ अमुकगोत्रः अस्मत्पितृव्यः (पिता के भाई) अमुकशर्मा वसुरूपस्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्मै स्वधा नमः ॥३ ॥ अमुकगोत्रः अस्मन्मातुलः (मामा) अमुकशर्मा वसुरूपस्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्मै स्वधा नमः ॥३ ॥ अमुकगोत्रः अस्मद्भ्राता (अपना भाई) अमुकशर्मा वसुरूपस्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्मै स्वधा नमः ॥३ ॥ अमुकगोत्रः अस्मत्सापत्नभ्राता (सौतेला भाई) अमुकशर्मा वसुरूपस्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्मै स्वधा नमः ॥३ ॥

अमुकगोत्रा अस्मत्पितृ-भगिनी (बूआ) अमुकी देवी दा वसुरूपा तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्यै स्वधा नमः ॥१ ॥ अमुकगोत्रा अस्मन्मातृभगिनी (मौसी) अमुकी देवी दा वसुरूपा तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्यै स्वधा नमः ॥१ ॥ अमुकगोत्रा अस्मदात्मभगिनी (अपनी बहिन) अमुकी देवी दा वसुरूपा तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्यै स्वधा नमः ॥१ ॥ अमुकगोत्रा अस्मत्सापत्नभगिनी (सौतेली बहिन) अमुकी देवी दा वसुरूपा तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्यै स्वधा नमः ॥१ ॥ अमुकगोत्रः अस्मच्छ्वशुरः (श्वशुर) अमुकशर्मा वसुरूपस्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्मै स्वधा नमः ॥३ ॥ अमुकगोत्रः अस्मद्गुरुः अमुकशर्मा वसुरूपस्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्मै स्वधा नमः ॥३ ॥ अमुकगोत्रा अस्मदाचार्यपत्नी अमुकी देवी दा वसुरूपा तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्यै स्वधा नमः ॥२ ॥ अमुकगोत्रः अस्मच्छिष्यः वसुरूपस्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्यै स्वधा नमः ॥३ ॥ अमुकगोत्रः अस्मत्सखा अमुकशर्मा वसुरूपस्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्मै स्वधा नमः ॥३ ॥ अमुकगोत्रः अस्मदाप्तपुरुषः अमुकशर्मा वसुरूपस्तृप्यताम् इदं सतिलं जलं तस्मै स्वधा नमः ॥३ ॥

इसके बाद सव्य होकर पूर्वाभिमुख हो नीचे लिखे श्लोकों को पढ़ते हुए जल गिरावे—

देवाऽसुरास्तथा यक्षा नागा गन्धर्वराक्षसाः ।
पिशाचा गुह्यकाः सिद्धाः कूष्माण्डास्तरवः खगाः ॥
जलेचरा भूनिलया वाय्वाधाराश्च जन्तवः ।
प्रीतिमेते प्रयान्त्वाशु मद्दत्तेनाम्बुनाखिलाः ॥
नरकेषु समस्तेषु यातनासु च ये स्थिताः ।
तेषामाप्यायनायैतद् दीयते सलिलं मया ॥
येऽबान्धवा बान्धवा वा येऽन्यजन्मनि बान्धवाः ।
ते सर्वे तृप्तिमायान्तु ये चास्मत्तोयकाङ्क्षिणः ॥

देवता, असुर, यक्ष, नाग, गन्धर्व, राक्षस, पिशाच, गुह्यक, सिद्ध, कूष्माण्ड, वृक्षवर्ग, पक्षी, जलचर तथा थलचर जीव और वायु के आधार पर रहनेवाले जन्तु— ये सभी मेरे दिये हुए जल से शीघ्र तृप्त हों। जो समस्त नरकों तथा वहाँ की यातनाओं में पड़े-पड़े दुःख भोग रहे हैं, उनको पुष्ट तथा शान्त करने की इच्छा से मैं यह जल देता हूँ। जो मेरे बान्धव न रहे हों, जो इस जन्म में मेरे बान्धव रहे हों अथवा किसी दूसरे जन्म में मेरे बान्धव रहे हों, वे सब तथा इनके अतिरिक्त भी जो मुझसे जल पाने की इच्छा रखते हों, वे भी मेरे दिये हुए जल से तृप्त हों।

ॐ आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं देवर्षिपितृमानवाः ।
तृप्यन्तु पितरः सर्वे मातृमातामहादयः ॥
अतीतकुलकोटीनां सप्तद्वीपनिवासिनाम् ।
आब्रह्मभुवनाल्लोकादिदमस्तु तिलोदकम् ॥
येऽबान्धवा बान्धवा वा येऽन्यजन्मनि बान्धवाः ।
ते सर्वे तृप्तिमायान्तु मया दत्तेन वारिणा ॥

ब्रह्माजी से लेकर कीटों तक जितने जीव हैं, वे तथा देवता, ऋषि, पितर, मनुष्य और माता, नाना आदि पितृगण— ये सभी तृप्त हों, मेरे कुल की बीती हुई करोड़ों पीढ़ियों में उत्पन्न हुए जो-जो पितर ब्रह्मलोक पर्यन्त सात द्वीपों के भीतर कहीं भी निवास करते हों, उनकी तृप्ति के लिये मेरा दिया हुआ यह तिलयुक्त जल उन्हें प्राप्त हो। जो मेरे बान्धव न रहे हों, जो इस जन्म में या किसी दूसरे जन्म में मेरे बान्धव रहे हों, वे सभी मेरे दिये हुए जल से तृप्त हो जायँ।

वस्त्र-निष्पीडन[१३३]

तत्पश्चात् वस्त्र को चार आवृत्ति लपेटकर जल में डुबावे और बाहर ले आकर निम्नाङ्कित मन्त्र को पढ़ते हुए अपसव्य-भाव से अपने बायें भाग में भूमिपर उस

---

[१३३] वस्त्र-निष्पीडन के विषय में स्मृतियों के वचन—

योगियाज्ञवल्क्यः—वस्त्रनिष्पीडित तोयं स्नातस्योच्छिष्टभागिनः ।
भागधेयं श्रुतिः प्राह तस्मान्निष्पीडयेत् स्थले ॥

वस्त्र को निचोड़े । (पवित्रक को तर्पण किये हुए जल में छोड़ दे । यदि घर में किसी मृत पुरुष का वार्षिक श्राद्ध आदि कर्म हो तो वस्त्र-निष्पीड़न नहीं करना चाहिये ।) वस्त्र-निष्पीड़न का मन्त्र यह है—

ये चास्माकं कुले जाता अपुत्रा गोत्रिणो मृताः ।
ते गृह्णन्तु मया दत्तं वस्त्रनिष्पीडनोदकम् ॥

भीष्मतर्पण

इसके बाद दक्षिणाभिमुख हो पितृतर्पण के समान ही जनेऊ अपसव्य करके हाथ में कुश धारण किये हुए ही बालब्रह्मचारी भक्तप्रवर भीष्म के लिये पितृतीर्थ से तिलमिश्रित जल के द्वारा तर्पण करे ।

उनके लिये तर्पण का मन्त्र निम्नाङ्कित श्लोक है—

वैयाघ्रपदगोत्राय शाङ्कृतिप्रवराय च ।
गङ्गापुत्राय भीष्माय प्रदास्येऽहं तिलोदकम् ।
अपुत्राय ददाम्येतत्सलिलं भीष्मवर्मणे ॥

अर्घ्यदान

फिर शुद्ध जल से आचमन करके प्राणायाम करे । तदनन्तर यज्ञोपवीत बायें कंधेपर करके एक पात्र में शुद्ध जल भरकर उसके मध्यभाग में अनामिका

वस्त्र निचोड़ने से जो जल निकलता है, वह स्नान करने वाले पुरुष के 'उच्छिष्टभागी जीवों का भाग है; ऐसा श्रुति कहती है ।' अतः उसे स्थल में निचोड़ना चाहिये ।

वृद्धयोगी—यावदेतानृषींश्चैव पितृंश्चापि न तर्पयेत् ।
तावन्न पीडयेद् वस्त्रं येन स्नातो भवेन्नरः ॥

जबतक इन ऋषियों और पितरों का तर्पण न कर ले, तब तक मनुष्य उस वस्त्र को न निचोड़े जिसे पहनकर उसने स्नान किया हो ।

स्मृत्यन्तरे—वस्त्रं चतुर्गुणीकृत्य पीडयेच्च जलाद् बहिः ।
वामकोष्ठे विनिक्षिप्य द्विराचम्य शुचिर्भवेत् ॥

से षड्दल-कमल[१३४] बनावे और उसमें श्वेत चन्दन, अक्षत, पुष्प तथा तुलसीदल छोड़ दे । फिर दूसरे पात्र में चन्दन से षड्दल-कमल बनाकर उसमें पूर्वादि दिशा के क्रम से ब्रह्मादि देवताओं का आवाहन-पूजन करे तथा पहले पात्र के जल से उन पूजित देवताओं के लिये अर्घ्य अर्पण करे । अर्घ्यदान के मन्त्र निम्नाङ्कित हैं—

ॐ ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेन आवः ।
स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च विवः (यजु.१३ ।३)

ॐ ब्रह्मणे नमः । ब्रह्माणं पूजयामि ।

सर्वप्रथम पूर्व दिशा से प्रकट होनेवाले आदित्यरूप ब्रह्म ने भूलोक के मध्यभाग से आरम्भ करके इन समस्त सुन्दर कान्तिवाले लोकों को अपने प्रकाश से व्यक्त किया है तथा वह अत्यन्त कमनीय आदित्य इस जगत् की निवास स्थानभूत अवकाशयुक्त दिशाओं को, विद्यमान— मूर्त्तपदार्थ के स्थानों को और अमूर्त्त वायु आदि के उत्पत्तिस्थानों को भी प्रकाशित करता है ।

वस्त्र को चार आवृत्ति लपेटकर उसे जल से बाहर ले जाकर निचोड़े । फिर उसे बायीं कलाई पर रखकर दो बार आचमन करके पवित्र हो जाय ।

[१३४] षड्दल-कमल

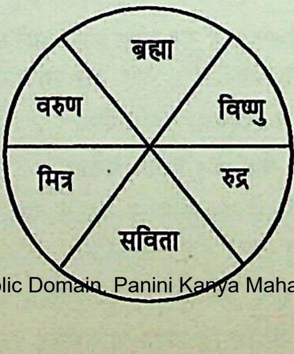

ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्। समूढमस्यपाᳬं सुरे स्वाहा ।। (यजु. ५ ।१५) ॐ विष्णवे नमः। विष्णुं पूजयामि।

सर्वव्यापी त्रिविक्रम (वामन) अवतारधारी भगवान् विष्णु ने इस चराचर जगत् को विभक्त करके [चरणों से] आक्रान्त किया है। उन्होंने पृथ्वी, आकाश और द्युलोक— इन तीनों स्थानों में अपना चरण स्थापित किया है। [अथवा उक्त तीनों स्थानों में वे क्रमशः अग्नि, वायु, सूर्यरूप से स्थित हैं] इन विष्णु भगवान् के चरणों में समस्त विश्व अन्तर्भूत है। हम इनके निमित्त स्वाहा (हविष्यदान) करते हैं।

ॐ नमस्ते रुद्र मन्यव उतो त इषवे नमः। बाहुभ्यामुत ते नमः ।। (यजु. १६ ।१) ॐ रुद्राय नमः। रुद्रं पूजयामि।

हे रुद्र ! आपके क्रोध और बाण को नमस्कार है तथा आपकी दोनों भुजाओं को नमस्कार है।

ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् ।। (यजु. ३६ ।३) ॐ सवित्रे नमः। सवितारं पूजयामि ।।

हम स्थावर जङ्गमरूप सम्पूर्ण विश्व को उत्पन्न करनेवाले उन निरतिशय प्रकाशमय सूर्यस्वरूप परमेश्वर के भजने योग्य तेज का ध्यान करते हैं, जो कि हमारी बुद्धि को सत्कर्मों की ओर प्रेरित करते रहते हैं।

ॐ मित्रस्य चर्षणीधृतोऽवोदेवस्य सानसि। द्युम्नं चित्रश्रवस्तमम् ।। (यजु. ११ ।६२) ॐ मित्राय नमः। मित्रं पूजयामि ।।

मनुष्यों का पोषण करनेवाले दीप्तिमान् मित्र देवता का यह रक्षण-कार्य सनातन, यशरूप से प्रसिद्ध, विचित्र तथा श्रवण करने के योग्य है।

ॐ इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय। त्वामवस्युराचके ।। (यजु. २१ ।१) ॐ वरुणाय नमः। वरुणं पूजयामि ।।

हे संसार-सागर के अधिपति वरुणदेव ! अपनी रक्षा के लिये मैं आपको बुलाना चाहता हूँ; आप मेरे इस आवाहन को सुनिये और [यहाँ शीघ्र पधारकर] आज हमें सब प्रकार से सुखी कीजिये।

सूर्योपस्थान

इसके बाद निम्नाङ्कित मन्त्र पढ़कर सूर्योपस्थान (सूर्य को प्रणाम एवं प्रार्थना) करे—

ॐ अदृश्रमस्य केतवो विरश्मयो जनाँ २ अनु भ्राजन्तो अग्नयो यथा। उपयामगृहीतोऽसि सूर्याय त्वा भ्राजायैष ते योनिः सूर्याय त्वा भ्राजाय। सूर्य भ्राजिष्ठ भ्राजिष्ठस्त्वं देवेष्वसि भ्राजिष्ठोऽहम्मनुष्येषु भूयासम् (यजु. ८/४०)
हꣳसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदातिथिर्दुरोणसत् नृषद्वरसदृतसद्व्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत् ॥ (यजु. १० .१४)

प्रज्ञा की हेतुभूत एवं सम्पूर्ण पदार्थों का ज्ञान कराने वाली इन सूर्यदेव की किरणें समस्त प्राणियों के भीतर विशेषरूप से अनुगत (ख्यात) देखी गयी हैं, जैसे देदीप्यमान अग्नि सर्वत्र व्याप्त देखी जाती है। हे सोम! तुम उपयामपात्रद्वारा गृहीत हो, मैं दीप्तिमान् सूर्यदेव के निमित्त तुम्हें ग्रहण करता हूँ। यह तुम्हारा स्थान है। मैं दीप्तिशाली भगवान् सूर्यदेव के लिये तुम्हें इस स्थान पर रखता हूँ। हे अत्यन्त देदीप्यमान सूर्यदेव! जिस प्रकार तुम सब देवताओं में अत्यन्त प्रकाशमान हो, उसी प्रकार तुम्हारे प्रकाश से मैं भी मनुष्यों में अत्यन्त प्रकाशमान होऊँ। (यजु. ८/४०) हे सूर्यभगवान्! आप अहंकार का नाश करने वाले (हंस), प्रकाश में गमन करने वाले (शुचिषत्) अपने में सबको निवासित करनेवाले (वसु), वायुरूप से अन्तरिक्ष में गमन करने वाले (अन्तरिक्षसत्), देवों को बुलाने वाले (होता), अग्निरूप से वेदी पर स्थित होने वाले (वेदिषत्), सबके पूजनीय (अतिथि), यज्ञशाला में आहवनीयादि अग्निरूप से प्राप्त होने वाले (दुरोणसत्), प्राण रूप से मनुष्यों में विचरने वाले (नृषत्), श्रेष्ठ स्थानों में गमन करने वाले (वरसत्), यज्ञ में प्राप्त होने वाले (ऋतसत्) और आकाश में विचरने वाले (व्योमसत्) हैं तथा आप जल में उत्पन्न होने वाले (अब्जा), चार प्रकार के प्राणियों के रूप में पृथ्वी पर उत्पन्न होने वाले (गोजा), सत्य से उत्पन्न होने वाले (ऋतजा), पर्वतों में होने वाले (अद्रिजा) एवं सत्यस्वरूप और महान् हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूँ।

इसके पश्चात् दिग्देवताओं को पूर्वादि क्रम से नमस्कार करे—

'ॐ इन्द्राय नमः' प्राच्यै ॥ 'ॐ अग्नये नमः' आग्नेय्यै ॥
'ॐ यमाय नमः' दक्षिणायै ॥ 'ॐ निर्ऋतये नमः' नैर्ऋत्यै ॥
'ॐ वरुणाय नमः' पश्चिमायै ॥ 'ॐ वायवे नमः' वायव्यै ॥
'ॐ सोमाय नमः' उदीच्यै ॥ 'ॐ ईशानाय नमः' ऐशान्यै ॥
'ॐ ब्रह्मणे नमः' उर्ध्वायै ॥ 'ॐ अनन्ताय नमः' अधरायै ॥

इसके बाद जल में नमस्कार करे—

ॐ ब्रह्मणे नमः । ॐ अग्नये नमः । ॐ पृथिव्यै नमः ।
ॐ ओषधिभ्यो नमः । ॐ वाचे नमः । ॐ वाचस्पतये नमः ।
ॐ महद्भ्यो नमः । ॐ विष्णवे नमः । ॐ अद्भ्यो नमः ।
ॐ अपाम्पतये नमः । ॐ वरुणाय नमः ।

मुखमार्जन

फिर नीचे लिखा मन्त्र पढ़कर शुद्ध जल से मुँह धो डाले—

ॐ संवर्चसा पयसा सन्तूनभिरगन्महि मनसा सꣳ शिवेन त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायाऽनुमार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम् । (यजु.२ ।२४)

हम ब्रह्मतेज से, क्षीर आदि रस से, कर्म करने में समर्थ सुदृढ़ अङ्गों से और शान्त मन से संयुक्त हों । सम्यक् प्रकार से दान करने वाले त्वष्टा देवता हमें धन दें और हमारे शरीर में जो शक्ति आदि की न्यूनता आ गयी है, उसका मार्जन करें । (अर्थात् हमारे धन और शरीर की पुष्टि करें) ।

विसर्जन

निम्नाङ्कित मन्त्र पढ़कर देवताओं का विसर्जन करे—

ॐ देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित ।
मनसस्पत इमं देव यज्ञꣳ स्वाहा वाते धाः ॥(यजु.८/२१)

हे यज्ञवेत्ता देवताओं ! आप लोग हमारे इस तर्पण रूपी यज्ञ को समाप्त जानकर अपने गन्तव्यमार्ग को पधारें । हे चित्तके प्रवर्तक परमेश्वर ! मैं इस यज्ञ को आप के हाथ में अर्पण करता हूँ । आप इसे वायु देवता में स्थापित करें ।

समर्पण

निम्नाङ्कित वाक्य पढ़कर यह तर्पण-कर्म भगवान् को समर्पित करे—

अनेन यथाशक्तिकृतेन देवर्षिमनुष्यपितृतर्पणाख्येन कर्मणा भगवान् मम समस्तपितृस्वरूपी जनार्दनवासुदेवः प्रीयतां न मम। ॐ तत्सद् ब्रह्मार्पणमस्तु। ॐ विष्णवे नमः।

॥ इति ॥

बलिवैश्वदेव-विधि

उपक्रम

द्विजोंको प्रतिदिन पञ्च महायज्ञ करनेके लिये शास्त्रकी आज्ञा है। प्रत्येक गृहस्थके यहाँ चूल्हा, चक्की, झाड़ू, ओखली और जलका घड़ा— ये पाँच हिंसाके स्थान हैं। इनका उपयोग करनेसे अनजानमें इच्छा न रहते हुए भी कुछ जीवोंकी हिंसा हो जाया करती है; इस हिंसा-दोषको दूर करनेके लिये पञ्च महायज्ञोंका विधान है[१]। इन यज्ञोंके नाम ये हैं— १-ब्रह्मयज्ञ, २-देवयज्ञ, ३-भूतयज्ञ, ४-पितृ-यज्ञ और ५-मनुष्ययज्ञ। ब्रह्मयज्ञको ऋषियज्ञ और स्वाध्याययज्ञ भी कहते हैं। मुख्यतः प्रतिदिन वेदोंका स्वाध्याय करनेसे ब्रह्मयज्ञ सम्पन्न होता है, परंतु याज्ञवल्क्यजीकी सम्मतिके अनुसार वेदोंके अतिरिक्त पुराण, महाभारत, अध्यात्मविद्या, गीता, एवं उपनिषदादिका पाठ अथवा श्रवण करनेसे भी ब्रह्मयज्ञ सम्पन्न होता है। यह सब न हो सकनेकी अवस्थामें गायत्री-जपमात्रसे भी ब्रह्मयज्ञकी पूर्ति हो जाती है। ब्रह्मयज्ञके पालनसे द्विज ऋषि-ऋणसे मुक्त होकर ज्ञान प्राप्त करता है और इस प्रकार वह सहज ही परमात्मप्राप्तिका अधिकारी हो जाता है। प्रातःकालिक होमके पश्चात् तर्पणके पहले या बलिवैश्वदेवके बाद ब्रह्मयज्ञ करना चाहिये[२]। ब्रह्मयज्ञको छोड़कर शेष चार देवयज्ञ आदि संक्षेपसे वैश्वदेव कर्ममें ही आ जाते हैं; अतः प्रतिदिन श्रद्धापूर्वक वैश्वदेव-कर्म अवश्य करना चाहिये।

---

[१] पञ्च सूना गृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्करः ।
कण्डनी चोदकुम्भश्च बध्यते यास्तु वाहयन् ॥
तासां क्रमेण सर्वासां निष्कृत्यर्थं महर्षिभिः ।
पञ्च क्लृप्ता महायज्ञाः प्रत्यहं गृहमेधिनाम् ॥ (मनु. ३।६८-६९)

[२] यश्च श्रुतिजपः प्रोक्तो ब्रह्मयज्ञस्तु स स्मृतः ।
स चार्वाक्तर्पणात् कार्यः पश्चाद्वा प्रातराहुतेः ॥
वैश्वदेवावसाने वा नान्यत्र ह्यनिमित्तकात् ॥ (याज्ञवल्क्य)

देवताओंके निमित्त अग्निमें हवन करना देवयज्ञ कहलाता है। सृष्टिके आदिसे ही देवतालोग मनुष्योंको सुख पहुँचानेके लिये, उनकी आवश्यकताओंको पूर्ण करनेके निमित्त पशु, पक्षी, तृण, वृक्ष, औषध आदिके सहित सबकी पुष्टि कर रहे हैं तथा अन्न, जल, पुष्प, फल, धातु आदि मनुष्योपयोगी समस्त वस्तुएँ मनुष्योंको दे रहे हैं। जो मनुष्य उन सब वस्तुओंको, उन देवताओंका ऋण चुकाये बिना— उनका न्यायोचित स्वत्व उन्हें अर्पण किये बिना स्वयं अपने काममें लाता है, वह कृतघ्न है। गीता (३ । १२) में उसे चोर कहा गया है। देवयज्ञसे द्विजातिगण देवताओंका ऋण चुकाते हैं। समस्त देवताओंको परमात्माका ही स्वरूप समझकर उनके निमित्त हवन करना चाहिये— इससे परम कल्याणकी प्राप्ति होती है।

धाता-विधाता आदि भूताधिष्ठातृदेवताओंके निमित्त अन्न अर्पण करना तथा कृमि, कीट, पतंग, पशु-पक्षी आदिके निमित्त भोज्य पदार्थ समर्पण करना भूतयज्ञ कहलाता है; अतः इससे द्विजोंको शीघ्र ही परमपदकी प्राप्ति हो जाती है। परलोकगत पितरोंकी तृप्तिके लिये 'स्वधा' शब्दके उच्चारणपूर्वक अन्न-जल समर्पण करना पितृयज्ञ है। इससे पितर प्रसन्न होकर अपने कल्याणमय आशीर्वादसे यजमानको अनुगृहीत करते हैं। द्वारपर आये हुए अतिथिको अन्नादिसे तृप्त करना और सनकादि दिव्य मनुष्योंके निमित्त अन्न समर्पण करना मनुष्ययज्ञ है। इससे अतिथिरूपी नारायणदेवकी आराधना होती है, जो मानवमात्रके लिये कल्याणकारिणी है।

बलिवैश्वदेव प्रतिदिन एक ही बार होता है। श्राद्धके दिन साग्निकको श्राद्ध के प्रथम और निरग्निकको भी श्राद्धके अन्तमें बलिवैश्वदेव करना चाहिये। नान्दीमुख-श्राद्धमें निरग्निकको भी श्राद्धके प्रथम ही बलिवैश्वदेव करना चाहिये। जननाशौच और मरणाशौचमें बलिवैश्वदेव नहीं होता है। पाकके अभावमें आमान्न, फल और शाक आदिसे भी बलिवैश्वदेव होता है। बलिवैश्वदेवमें उड़द, चना, मसूर, कोदो, कुल्थी, लवण, मटर, तैलपक्व, जुन्हरी, पर्युषित अन्न, भुक्तशेष अन्न आदि वर्जित हैं।

बलिवैश्वदेव के प्रथम अतिथि-अभ्यागत उपस्थित हो जायँ तो बलिवैश्वदेव-निमित्त अन्नको पृथक् करके अतिथि को भिक्षा देनी चाहिये । यदि दो भाई परस्पर अलग हो जायँ, उनका पाक पृथक् होने लगे तो श्राद्ध और बलिवैश्वदेव भी उन्हें अलग-अलग करने चाहिये[1] । यदि पाक एक ही हो तो उनमें से जो ज्येष्ठ हो उसे ही करना चाहिये । घर में अलग न होने पर भी यदि एक भाई परदेश में रहता हो तो उसे अलग ही श्राद्ध अथवा बलिवैश्वदेव करना चाहिये । नित्य बलिवैश्वदेव करने से मनुष्य के समस्त पाप दूर हो जाते हैं । बलिवैश्वदेव से बचा हुआ अन्न यज्ञशिष्ट अन्न है । यह अमृत के समान माना गया है । जो केवल अपने लिये भोजन बनाते हैं, वे पाप के भोगी हैं[2] । बलिवैश्वदेव के अनुष्ठान से बहुत बड़ा लाभ और त्याग से बहुत बड़ी हानि होती है— यह समझकर सभी को निरालस्यभाव से प्रतिदिन श्रद्धापूर्वक बलिवैश्वदेव करना चाहिये ।

बलिवैश्वदेव की विधि यों है— पहले आचमन और प्राणायाम करके दायें हाथ की अनामिका अङ्गुली में "[3]पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ." इस मन्त्र से कुश की पवित्री धारण करे । तत्पश्चात् निम्नाङ्कित संकल्प पढ़े । (यह संकल्प मानसिक भी किया जा सकता है ।)

हरिः ॐ तत्सत्[4]... अद्य शुभपुण्यतिथौ मम गृहे पञ्चसूनाजनितसकलदोषपरिहारपूर्वकं नित्यकर्मानुष्ठानसिद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं बलिवैश्वदेवाख्यं कर्म करिष्ये । (पंचवलि के प्रसंग में पंचवली कर्म करिष्ये ऐसा संकल्प करें)

इसके बाद लौकिक अग्नि प्रज्वलित करके अग्निदेव का निम्नाङ्कित मन्त्र पढ़ते हुए ध्यान करे ।

---

[1] एकपाके निवसतां पितृदेवद्विजार्चनम् ।
एकं भवेद् विभक्तानां तदेव स्याद् गृहे गृहे ॥ (छान्दोग्यपरिशिष्ट)

[2] यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्विषैः ।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ॥ (गीता ३ ।१३)

[3] पूरा मन्त्र इस प्रकार है— 'ॐ पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः। तस्य ते पवित्रपते पवित्रपूतस्य यत्कामः पुने तच्छकेयम् ॥'

[4] शून्य स्थान पर संध्या और तर्पण के अनुसार देश, काल, नाम आदि की योजना कर लेनी चाहिये।

ॐ चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य ।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महादेवो मर्त्यां आविवेश ॥

(ऋ.अ.३ अ.८ व.१०)

इस अग्निदेव के चार सींग, तीन पैर, दो सिर और सात हाथ हैं । कामनाओं की वर्षा करनेवाला यह महान् देव तीन स्थानों में बँधा हुआ शब्द करता है और प्राणियों के भीतर जठरानलरूप से प्रविष्ट हैं ।

फिर नीचे लिखे मन्त्र को पढ़कर अग्निदेव को मानसिक आसन दे—

ॐ एषो ह देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः पूर्वो ह जातः स उ गर्भे अन्तः ।
स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ्जनास्तिष्ठति सर्वतोमुखः ॥

(यजु.३२ ।४)

यह अग्निस्वरूप परमात्मदेव ही सम्पूर्ण दिशा-विदिशाओं में व्याप्त है । यही हिरण्यगर्भरूप से सबसे प्रथम उत्पन्न (प्रकट) हुआ था, माता के गर्भ में भी यही रहता है और यही उत्पन्न होनेवाला है, हे मनुष्यो ! यही सर्वव्यापक और सब ओर मुखोंवाला है ।

तत्पश्चात् अग्निदेवको नमस्कार करके पात्र में बिना लवण (लोन) का सुपक्व अन्न रख ले और यज्ञोपवीतको सव्यभाव में रखे हुए ही दायें घुटनों को पृथ्वी पर टेककर अन्नकी पाँच आहुतियाँ नीचे लिखे पाँच मन्त्रों को क्रमशः पढ़ते हुए बारी-बारी से अग्नि में छोड़े । (अग्नि के अभाव में एक पात्र में जल रखकर उसी में आहुतियाँ छोड़ सकते हैं ।)

(१) देवयज्ञ

१ ॐ ब्रह्मणे स्वाहा, इदं ब्रह्मणे न मम[1] ।

२ ॐ प्रजापतये स्वाहा, इदं प्रजापतये मम ।

---

[1] प्रथम मन्त्र का अर्थ इस प्रकार है— 'ब्रह्माजी के लिये इस अन्न का हवन किया जाता है, यह ब्रह्मा जी के लिये ही प्राप्त हो, इस पर मेरा अधिकार नहीं है' इसी

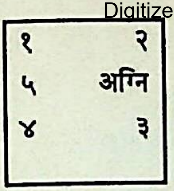

३ ॐ गृह्याभ्यः स्वाहा, इदं गृह्याभ्यो न मम।

४ ॐ कश्यपाय स्वाहा, इदं कश्यपाय न मम।

५ ॐ अनुमतये स्वाहा, इदं अनुमतये न मम।

पुनः अग्नि के पास ही पानी से एक चौकोना चक्र बनाकर उसका द्वार पूर्व की ओर रखे और उसी में बतलाये जानेवाले स्थानों पर क्रमशः बीस ग्रास अन्न देना चाहिये। जिज्ञासुओं की सुविधा के लिये नकशा और ग्रास अर्पण करने के मन्त्र नीचे दिये जाते हैं। नकशे में केवल अङ्क रखा गया है, उसमें जहाँ एक है वहाँ प्रथम ग्रास और दो की जगह दूसरा ग्रास देना चाहिये। इसी प्रकार तीन से चलकर बीसतक क्रमशः निर्दिष्ट स्थान पर ग्रास देना उचित है। नकशे के नीचे क्रमशः बीस मन्त्र दिये जाते हैं, एक-एक मन्त्र पढ़कर एक-एक ग्रास अर्पण करना चाहिये।

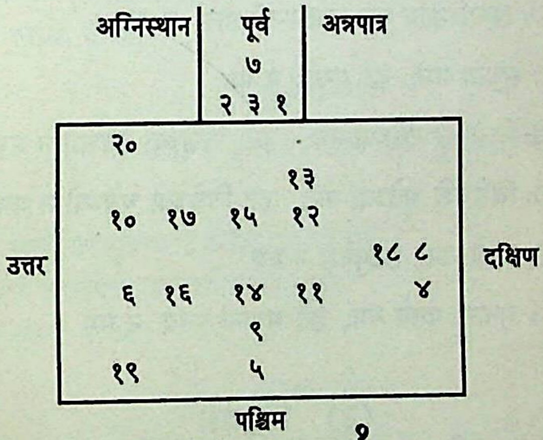
अग्निस्थान
पूर्व
अन्नपात्र
७
२ ३ १
२०
१३
१० १७ १५ १२
उत्तर
१८ ८
दक्षिण
६ १६ १४ ११
४
९
१९
५
पश्चिम

(२) भूतयज्ञ[1]

१. ॐ धात्रे नमः, इदं धात्रे न मम ।

प्रकार अन्य मन्त्रों का अर्थ समझना चाहिये। २,३,४ और ५ में क्रमशः प्रजापति, गृह्या, कश्यप तथा अनुमति के लिये, हवन किया गया है।

[1] यज्ञोपवीत को सव्य करके पके हुए अन्न के १७ ग्रास अङ्कित मण्डल में यथायोग्य स्थान पर नीचे लिखे हुए मन्त्रों द्वारा क्रमशः छोड़ दें।

२. ओ३म् विधात्रे नमः, इदं विधात्रे न मम ।

३. ओ३म् वायवे नमः, इदं वायवे न मम ।

४. ओ३म् वायवे नमः, इदं वायवे न मम ।

५. ओ३म् वायवे नमः, इदं वायवे न मम ।

६. ओ३म् वायवे नमः, इदं वायवे न मम ।

७. ओ३म् प्राच्यै नमः, इदं प्राच्यै न मम ।

८. ओ३म् अवाच्यै नमः, इदमवाच्यै न मम ।

९. ओ३म् प्रतीच्यै नमः, इदं प्रतीच्यै न मम ।

१०. ओ३म् उदीच्यै नमः, इदमुदीच्यै न मम ।

११. ओ३म् ब्रह्मणे नमः, इदं ब्रह्मणे न मम ।

१२. ओ३म् अन्तरिक्षाय नमः, इदमन्तरिक्षाय न मम ।

१३ ओ३म् सूर्याय नमः, इदं सूर्याय न मम ।

१४. ओ३म् विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः, इदं विश्वेभ्यो देवेभ्यो न मम ।

१५. ओ३म् विश्वेभ्यो भूतेभ्यो नमः, इदं विश्वेभ्यो भूतेभ्यो न मम ।

१६. ओ३म् उषसे नमः, इदमुषसे न मम ।

१७. ओ३म् भूतानां पतये नमः, इदं भूतानां पतये न मम ।

(३) पितृयज्ञ[१]

१८. ओ३म् पितृभ्यः स्वधा नमः, इदं पितृभ्यः स्वधा न मम ।

---

[१] यज्ञोपवीत को अपसव्य करके बायें घुटने को पृथ्वी पर रख दक्षिण की ओर मुख करके हो सके तो साथ में तिल लेकर, पक्व अन्न अङ्कित मण्डल में निर्दिष्ट स्थान पर मन्त्र पढ़कर रख दें।

निर्णेजनम्[१]

१९. ॐ यक्ष्मैतत्ते निर्णेजनं नमः, इदं यक्ष्मणे न मम ।

(४) मनुष्ययज्ञ[२]

२० ॐ हन्त ते सनकादिमनुष्येभ्यो नमः, इदं हन्त ते सनकादिमनुष्येभ्यो न मम ।

(१) गोबलि

इसके बाद निम्नाङ्कित मन्त्र पढ़ते हुए सव्यभाव से ही गौओं के लिये बलि अर्पण करे—

ॐ सौरभेय्यः सर्वहिताः पवित्राः पुण्यराशयः ।
प्रतिगृह्णन्तु मे ग्रासं गावस्त्रैलोक्यमातरः ॥
इदमन्नं गोभ्यो न मम ।

(२) श्वानबलि

फिर यज्ञोपवीत को कण्ठ में माला की भाँति करके कुत्तों के लिये ग्रास दे । मन्त्र यह है—

ॐ द्वौ श्वानौ श्यामशबलौ वैवस्वतकुलोद्भवौ ।
ताभ्यामन्नं प्रदास्यामि स्यातामेतावहिंसकौ ॥
इदमन्नं श्वभ्यां न मम ।

(३) काकबलि

पुनः यज्ञोपवीत को अपसव्य करके नीचे लिखे मन्त्र को पढ़ते हुए कौओं के लिये भूमि पर ग्रास दें ।

---

[१] यज्ञोपवीत को सव्य करके अन्न के पात्र को धोकर वह जल अङ्कित मण्डल में १९ वें अङ्क की जगह मन्त्र को पढ़ कर छोड़ दें ।

[२] यज्ञोपवीत को माला की भाँति कण्ठ में करके उत्तराभिमुख हो पक्व अन्न अङ्कित मण्डल में २० वें अङ्क की जगह मन्त्र द्वारा छोड़ दें ।

ॐ ऐन्द्रवारुणवायव्या याम्या वै नैर्ऋतास्तथा ।
वायसाः प्रतिगृह्णन्तु भूमौ पिण्डं चाऽन्नं मयार्पितम् ॥
इदमन्नं वायसेभ्यो न मम।

(४) देवादिबलि

फिर सव्यभाव से निम्नाङ्कित मन्त्र पढ़कर देवता आदि के लिये अन्न अर्पण करे—

ॐ देवा मनुष्याः पशवो वयांसि सिद्धाः सयक्षोरगदैत्यसङ्घाः ।
प्रेताः पिशाचास्तरवः समस्ता ये चान्नमिच्छन्ति मया प्रदत्तम् ॥
इदमन्नं देवादिभ्यो न मम।

(५) पिपीलिकादिबलि

इसी प्रकार निम्नाङ्कित मन्त्र से चींटी आदि के लिये अन्न दे—

ॐ पिपीलिकाः कीटपतङ्गकाद्या बुभुक्षिताः कर्मनिबन्धबद्धाः ।
तेषां हि तृप्त्यर्थमिदं मयान्नं तेभ्यो विसृष्टं सुखिनो भवन्तु ॥
इदमन्नं पिपीलिकादिभ्यो न मम।

इसके बाद सव्यभाव से पूर्वाभिमुख होकर पवित्र-भूमिपर थोड़ा अन्न तथा जल रखकर हाथ जोड़ निम्नाङ्कित श्लोकों को पढ़े—

देवा मनुष्याः पशवो वयांसि
सिद्धाः सयक्षोरगभूतसङ्घाः ॥
प्रेताः पिशाचास्तरवः समस्ता
ये चान्नमिच्छन्ति मया प्रदत्तम् ॥
पिपीलिकाः कीटपतङ्गकाद्या
बुभुक्षिताः कर्मनिबन्धबद्धाः ।
प्रयान्तु ते तृप्तिमिदं मयान्नं
तेभ्यो विसृष्टं सुखिनो भवन्तु ॥

भूतानि सर्वाणि तथान्नमेत-
दहं च विष्णुर्न ततोऽन्यदस्ति ।
तस्मादहं भूतनिकायभूत-
मन्नं प्रयच्छामि भवाय तेषाम् ॥
चतुर्दशो भूतगणो य एष
तत्र स्थिता येऽखिलभूतसङ्घाः ।
तृप्त्यर्थमन्नं हि मया विसृष्टं
तेषामिदं ते मुदिता भवन्तु ॥

देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, सिद्ध, यक्ष, सर्प, नाग, अन्य भूतसमूह, प्रेत, पिशाच तथा सम्पूर्ण वृक्ष एवं चींटी, कीड़े और पतंग आदि जीव जो कर्म-बन्धन में बँधे हुए भूख से कष्ट पा रहे हों और मुझसे अन्न चाहते हों, उनके लिये यह अन्न मैंने रख छोड़ा है; इससे उनकी तृप्ति हो और वे सुखी हों । सब जीव, यह अन्न और मैं— सब विष्णु ही हैं, उनसे अन्य कुछ भी नहीं है, इस कारण मैं जीवों के शरीर की उत्पत्ति और पोषण में हेतुभूत इस अन्न को उन प्राणियों की रक्षा के लिये देता हूँ । यह जो चौदह प्रकार का भूतों का समुदाय है, इसमें जो सम्पूर्ण जीव-समूह स्थित हैं, उनकी तृप्ति के लिये मैंने यह अन्न दिया है, वे प्रसन्न हों ।

तदनन्तर हाथ धोकर भस्म लगावे और निम्नाङ्कित मन्त्र से अग्नि का विसर्जन करे—

ॐ यज्ञ यज्ञं गच्छ यज्ञपतिं गच्छ स्वां योनिं गच्छ स्वाहा ।
एष ते यज्ञो यज्ञपते सहसूक्तवाकः सर्ववीरस्तं जुषस्व स्वाहा ॥ (यजु.सं.८।२२)

हे यज्ञ ! तू (अपनी प्रतिष्ठा के लिये) यज्ञस्वरूप विष्णु भगवान् को प्राप्त हो, कर्म के फलरूप से यज्ञपति-यजमान को प्राप्त हो तथा अपनी सिद्धि के लिये तू अपने कारणभूत— वायुदेव की क्रिया— शक्ति को प्राप्त हो, यह हवन सुन्दर रूप से सम्पन्न हो । हे यजमान ! स्तवनीय चरु, पुरोडाश आदि सब अङ्गों तथा सूक्त, अनुवाक और स्तोत्रों के सहित यह किया जानेवाला यज्ञ तुम्हारा हो, तुम इस यज्ञ का सेवन करो । यह हवन कर्म सुन्दर रूप से सम्पन्न हो ।

फिर कर्म में न्यूनता की पूर्ति के लिये निम्नाङ्कित श्लोकों को पढ़ते हुए भगवान् से प्रार्थना करे—

ॐ प्रमादात्कुर्वतां कर्म प्रच्यवेताध्वरेषु यत् ।
स्मरणादेव तद्विष्णोः सम्पूर्णं स्यादिति श्रुतिः ॥
यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु ।
न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम् ॥

फिर नीचे लिखे वाक्य को पढ़कर यह कर्म भगवान् को अर्पण करे ॥

अनेन वैस्वदेवाख्येन कर्मणा श्रींयज्ञनारायणस्वरूपी परमेश्वरवासुदेवः प्रीयतां न मम । ॐ तत्सद् ब्रह्मार्पणमस्तु । ॐ विष्णवे नमः ॥३ ॥

॥इति ॥

पितरों से प्रार्थना

ॐ गोत्रन्नो वर्द्धतां दातारो नोऽभिवर्द्धन्तां वेदाः सन्ततिरेवच। श्रद्धा च नो मा व्यगमद् बहुदेयं च नोऽस्तु। अन्नंच नो बहु भवेदतिथींश्च लभेमही। याचितारश्च नः सन्तु मा च या चिश्मकंचन। एताः सत्याः आशिषः सन्तु।

अर्थात्—हमारा गोत्र बढे, हमें देने वाले देवता बढ़ें, वेद-रूप ज्ञानकी बृद्धि हो, संतान की बृद्धि हो। श्रद्धा मुझसे कभी अलग न हो। सदा देने के लिए हमारे पास बहुत हो। प्रचुर मात्रा हो, हम सदा अतिथि के सत्कार का लाभ पायें। लोग हमसे मांगने वाले हों, हमें किसीसे मांगना न पड़े। ये मंगल कामनाएँ पूरी हों।

स्व. पूज्य पिताजी सेठ ईश्वरदासजी सिंघानिया

जन्म-आषाढ़ शुक्ल १२ गुरुवार सम्वत् १९६२.

(१३-७-१९०५)

निर्वाण—ज्येष्ठ शुक्ल १४ रविवार सम्वत् २०२९

(सन- २५.६.१९७२)

श्राद्ध-विधि

श्राद्धकर्त्ता श्राद्धके उपयुक्त ब्राह्मणोंको पहिले दिन निमन्त्रित करें। वार्षिक तिथिको एकोद्दिष्ट और महालय तथा पर्वमें पार्वणादि श्राद्ध करें। यदि इस प्रकार न कर सकें तो पितृ-तृप्ति के लिये सांकल्पिक श्राद्ध तथा तर्पण अवश्य करें। श्राद्धके समय लोहेके पात्रमें पाकादि न रखें तथा लोहेका पात्र किसी काम में न लें।

न जातीकुसुमैर्विद्वान् विल्वपत्रैश्च नार्चयेद्। सुरभिनागकर्णाद्यैर्हयारिकाञ्चनारकैः। बिल्वपत्रैर्नार्चयेत्तान् पितृन् श्राद्धविगर्हितैः। तद् भुञ्जन्त्यसुराः श्राद्धं निराशैः पितृभिर्गतम्। सर्वाणि रक्तपुष्पाणि निषिद्धान्यपराणि तु। वर्जयेत् पितृश्राद्धेषु केतकीकुसमानि च ॥ (बृ. पा. स्मृ.)

श्राद्धमें बिल्वपत्र, मालती, चम्पा, नागकेशर, कर्ण, जवा, कनेर, कचनार, केतकी और समस्त रक्तपुष्प वर्जित हैं। इन पुष्पोंसे पूजन करने से पितरोंको नहीं मिलता है उसे राक्षस ग्रहण करते हैं।

खञ्जो वा यदि वा काणो दातुः प्रेष्योऽपि वा भवेत् ।
हीनातिरिक्तगात्रो वा तमप्यपनयेत् पुनः ॥ (मनुस्मृति)

लँगड़ा, काना, दाताका दास, अङ्गहीन और अधिक अङ्गवाला निषिद्ध है।

अस्रून् गमयति प्रेतान् कोपोऽरीननृतं शुनः ।
पादस्पर्शस्तु रक्षांसि दुष्कृतीनवधूननम् ॥(मनुस्मृति)

श्राद्धके समय आँसू आनेसे पाक प्रेतोंको, क्रोधसे शत्रुओंको, झूठ बोलनेसे कुत्तोंको, पैरसे छूने से राक्षसोंको और पाक उछालनेसे पापियोंको मिलता है।

ब्राह्मण पादप्रक्षालन का फल

यत्फलं कपिलादाने कार्तिक्यां ज्येष्ठपुष्करे ।
तत्फलं पाण्डवश्रेष्ठ ! विप्राणां पादशौचने ॥

हे पाण्डवश्रेष्ठ ! कार्तिक पूर्णिमा को पुष्करतीर्थ में कपिला गौके दानका जो फल होता है, वही फल ब्राह्मणके पैर धोनेसे होता है ।

श्राद्ध (पितृ-श्राद्ध)

आसनपर पूर्वाभिमुख बैठ दूसरा वस्त्र ले बाईं अनामिका अँगुली की जड़में तीन और दाहिनीमें दो कुशाओंको सीधी बटकर ग्रन्थी लगा अग्रभाग पूर्व में रखते हुए नीचे लिखे मन्त्रसे पाक तथा सामग्रीको पवित्र करें ।

ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा ।
यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥
दृष्टिस्पर्शनदोषात् पाकादीनां पवित्रतास्तु ॥

बाँयें हाथमें पीली सरसों ले नीचे लिखा मंत्र बोलें—

ॐ नमो नमस्ते गोविन्द पुराणपुरुषोत्तम ।
इदं श्राद्धं हृषीकेश रक्ष त्वं सर्वतो दिशः ॥

पश्चात् उस सरसोंको दाहिने हाथसे "**ॐ प्राच्यै नमः**" (पूर्वमें) "**ॐ अवाच्यै नमः**" (दक्षिणमें) "**ॐ प्रतीच्यै नमः**" (पश्चिममें) "**ॐ उदीच्यै नमः**" (उत्तरमें) "**ॐ अन्तरिक्षाय नमः**" (ऊपर) "**ॐ भूम्यै नमः**" (नीचे) छोड़ें ।

जौ और पुष्पोंसे "**ॐ भूम्यै नमः**" बोलते हुए तीनबार पृथ्वीका पूजन करें । गायत्री तथा नीचे लिखा मन्त्र तीन बार जपें—

ॐ देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च ।
नमः स्वधायै स्वाहायै नित्यमेव नमोनमः ॥

पिता के श्राद्ध का प्रतिज्ञा-संकल्प

पितुः की जगह, दादाको "**पितामहस्य**", परदादाको "**प्रपितामहस्य**" कहें ।

ॐ अद्य विक्रमसम्वत्सरे (अमुक) **सङ्ख्यके** (अमुक) **मासे** (अमुक) **पक्षे** (अमुक) **तिथौ** (अमुक) **वासरे** (अमुक) **गोत्रस्य अस्मत् पितुः** (अमुक) (पितरोंके

नामके अन्तमें ब्राह्मणको शर्मणः, क्षत्रियको वर्मणः, वैश्यको गुप्तस्य कहें) **सांकल्पिक-श्राद्धं करिष्ये ॥**

आसन, पत्ता आदि दक्षिणमें रखें ।

अपसव्य तथा दक्षिणाभिमुख हो बाँया घुटना मोड़ पितृलोकसे आते हुए पिताका ध्यानकर नीचे लिखा संकल्प आसन पर छोड़े । (पितुः की जगह, दादाको 'पितामहस्य', परदादाको 'प्रपितामहस्य' कहें ।)

अद्य (अमुक) गोत्रस्य पितुः अमुक (शर्मणः, वर्मणः, गुप्तस्य) सांकल्पिक श्राद्धे इदं आसनं ते स्वधा ।

गन्धादि

आसन पर गन्ध, पुष्प, ताम्बूल, सिन्दूर और वस्त्रादि रखें । पाक लेकर नीचे लिखे मन्त्रसे बायीं ओर भूस्वामीके निमित्त पृथ्वीपर रखें ।

ॐ इदमन्नमेतद् भूस्वामिपितृभ्यो नमः

पात्रमें पाकादि परोस, पाकके ऊपर मधु लगा, पितृ आसनके सन्मुख रखें । उस पात्रके पूर्वमें जलपात्रादि तथा पत्तेपर घृत रखें । पश्चात् पितृ आसन तथा अन्न पात्रादिके चारों ओर जलसे मण्डल करें । फिर पात्रका स्पर्श करते हुए बायाँ हाथ अपनी दाहिनी ओर उलटा उसपर दाहिना हाथ बायीं ओर उलटा रखकर नीचे लिखा मन्त्र बोलें–

ॐ पृथ्वी ते पात्रं द्यौरपिधानं ब्राह्मणस्य मुखे अमृते अमृतं जुहोमि स्वाहा । ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् । समूढमस्य पाᳪँसुरे । ॐ कृष्णकव्यमिदं रक्ष मदीयम् ।

बायें हाथको वैसे ही रखते हुए दाहिने हाथके अंगुठेसे अन्नादि का स्पर्श करें-"इदमन्नम्" (पाकस्पर्श), "इमा आपः" (जलस्पर्श), "इमाज्यम्" (घृतस्पर्श), "इदं हविः" (फिर पाकस्पर्श करें) । पाककी रक्षाके लिये नीचे लिखे वाक्यसे पात्रके बाहर तिल छोड़ें ।

ॐ अपहता असुरा रक्षाᳪँसि वेदिषदः ।

पाकका संकल्प

पिताकी जगह दादाको "पितामहाय", परदादाको "प्रपितामहाय" कहें।
ॐ अद्य (अमुक) गोत्राय पित्रे (अमुक) (शर्मणे, वर्मणे, गुप्ताय) साङ्कल्पिक-श्राद्धे इदमन्नं परिविष्टं परिविष्यमाणं ब्राह्मणभोजनतृप्तिपर्यन्तं सोपकरणं ते स्वधा।

"सव्य" तथा "पूर्वाभिमुख" होकर आशिर्वादके लिए प्रार्थना करें।ॐ गोत्रं नो वर्द्धतां दातारो नोऽभिवर्द्धन्ताम्। वेदाः सन्ततिरेव च। श्रद्धा च नो मा व्यगमद्बहुदेयं च नोऽस्तु॥ अन्नं च नो बहु भवेदतिथींश्च लभेमहि। याचिताश्च नः सन्तु मा च याचिष्म कञ्चन॥ एताः सत्या आशिषः सन्तु॥

फिर "अपसव्य" तथा "दक्षिणाभिमुख" होकर नीचे लिखे संकल्पसे वस्त्रपर दक्षिणा रखें।

कृतैतत् श्राद्धप्रतिष्ठार्थं दक्षिणाद्रव्यं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दातुमह मुत्सृजे॥

"सव्य तथा पूर्वाभिमुख" होकर नीचे लिखित प्रार्थना करें—

अन्नहीनं क्रियाहीनं विधिहीनं च यद्भवेद् ।
यत्सर्वमच्छिद्रमस्तु पित्रादीनां प्रसादतः ॥
प्रमादात् कुर्वतां कर्म प्रच्यवेताध्वरेषु यत् ।
स्मरणादेव तद्विष्णोः सम्पूर्ण स्यादिति श्रुतिः ॥

काक और स्वान बलि छोड़कर बाकी सभी बलि गौको दें। पश्चात् ब्राह्मणों के पैर धोकर आसनपर बैठावें, पाक परोसकर भोजन करनेकी प्रार्थना करें। श्राद्धकर्ता पाकका गुण वर्णन करते हुए नम्रतापूर्वक बार-बार परोसें। ब्राह्मण पाककी प्रशंसा न करें। भोजनके पश्चात् तिलक करके दक्षिणा देकर उनसे पूछे 'शेषान्नं किं कर्त्तव्यम्', ब्राह्मण कहे 'इष्टैः सह भोक्तव्यम्', पश्चात् पितृ-तृप्तिके लिए तर्पण, (पीछे के पृष्ठ से देख करके) काकबलि कौवेको और श्वानबलि कुत्तेको देकर इष्ट मित्रों सहित भोजन करें।

श्राद्ध (मातृश्राद्ध)

आसनपर पूर्वाभिमुख बैठ दूसरा वस्त्र ले बाईं अनामिका अंगुली की जड़में तीन और दाहिनीमें दो कुशाओंकी पवित्री धारण कर आचमन प्राणायाम करके तीन कुशाओं को सीधी बटकर ग्रन्थि लगा अग्रभाग पूर्वमें रखते हुए नीचे लिखे मन्त्रसे सामग्रीको पवित्र करें—

ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा ।
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥
दृष्टिस्पर्शनदोषात् पाक़ादीनां पवित्रताऽस्तु ।

बायें हाथ में पीली सरसों ले नीचे लिखा मन्त्र बोलें—

ॐ नमो नमस्ते गोविन्द पुराणपुरुषोत्तम ।
इदं श्राद्धं हृषीकेश रक्ष त्वं सर्वतो दिशः ॥

पश्चात् उन सरसों को दाहिने हाथ से "ॐ प्राच्यै नमः" (पूर्व में), "ॐ अवाच्यै नमः" (दक्षिण में), "प्रतीच्यै नमः" (पश्चिम में), "ॐ उदीच्यै नमः" (उत्तर में), "अन्तरिक्षाय नमः" (ऊपर), "ॐ भूम्यै नमः" (नीचे छोड़े) ।

जौ और पुष्पों से "ॐ भूम्यै नमः" बोलते हुए तीन बार पृथ्वी का पूजन करें ।

गायत्री तथा नीचे लिखा मन्त्र तीन बार जपें—

ॐ देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च ।
नमः स्वधायै स्वाहायै नित्यमेव नमोनमः ॥

माता के श्राद्ध का प्रतिज्ञा संकल्प

मातुः की जगह, दादी को "पितामह्याः", परदादी को "प्रपितामह्या", कहें ।

ॐ अद्य विक्रम-सम्वत्सरे (अमुक) सङ्ख्यके (अमुक) गोत्रायाः मातुः (अमुकी) देव्याः साङ्कल्पिकश्राद्धं तदङ्गत्वेन बलिवैश्वदेवाख्यं पञ्चवलि कर्म च करिष्ये। बलिवैश्वदेव तथा पञ्चबलि भी (पिछले पृष्ठ से देखकर) करें।

आसन (पत्ता आदि दक्षिण में रखें।)

"अपसव्य" तथा "दक्षिणाभिमुख़" हो बायाँ घुटना मोड़ पितृलोक से आती हुई माता का ध्यान कर नीचे लिखा संकल्पकर आसन पर छोड़ें ।

मातुः की जगह दादी को **"पितामह्याः"**, परदादी को **"प्रपितामह्याः"**, कहे । **ॐ अद्य (अमुक) गोत्रायाः मातुः (अमुकी) देव्याः साङ्कल्पिकश्राद्धे इदमासनं ते स्वधा ।**

गन्धादि

आसन पर गन्ध, पुष्प, ताम्बूल, सिन्दूर और वस्त्रादि रखें । माता की जगह, दादी को **"पितामही"**, परदादी को **"प्रपितामही"** कहें । अद्य (अमुक) गोत्रे मातुः (अमुकी) देवी एतानि गन्ध-पुष्प-ताम्बूल-पूगीफल-सिन्दूर-वासांसि ते स्वधा ।

पाक लेकर नीचे लिखे मन्त्रों से बाईं ओर भूस्वामी के निमित्त पृथ्वी पर रखें—

ॐ इदमन्नमेतद् भूस्वामि-पितृभ्यो नमः ।

पात्र में पाकादि परोस पाक के ऊपर मधु लगा मातृ-आसन के सन्मुख रखें । उस पात्र के पूर्व में जलपात्रादि तथा पत्ते पर घृत रखें पश्चात् मातृ आसन तथा अन्न-पात्रादि के चारों ओर जल से मण्डल बनायें । फिर पात्र का स्पर्श करते हुए बायाँ हाथ अपनी दाहिनी ओर उलटा, उस पर दाहिना हाथ बाईं ओर उलटा रखकर नीचे लिखा मन्त्र बोलें—

ॐ पृथ्वी ते पात्रंद्यौरपिधानं ब्राह्मणस्य मुखे अमृते अमृतं जुहोमि स्वाहा ।। ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् । समुढमस्य पाꣳ सुरे ।। ॐ कृष्णकव्यमिदं रक्ष मदीयम् ।

बायें हाथ को वैसे ही रखते हुए दाहिने हाथ के अंगूठे से अन्नादिका स्पर्श करें— **"इदमन्नम्"** (पाकस्पर्श), **"इमा आपः"** (जलस्पर्श), **"इदमाज्यम्"** (घृत-स्पर्श), **"इदं हविः"** (फिर पाकस्पर्श करें) । पाक की रक्षा के लिए नीचे लिखे वाक्य से पात्र के बाहर तिल छोड़ें—

ॐ अपहता असुरा रक्षाᳬं सि वेदिषदः ।

पाक का संकल्प

“मात्रे” की जगह, दादी को “पितामह्यै”, परदादी को “प्रपितामह्यै” कहें । ॐ अद्य (अमुक) गोत्रायै मात्रे (अमुकी देव्यै) इदमन्नं परिविष्टं परिविष्यमाणं ब्राह्मणभोजनतृप्तिपर्यन्तं सोपस्करं ते स्वधा ॥

सव्य तथा पूर्वाभिमुख होकर आशीर्वाद के लिए प्रार्थना करें ।

ॐ गोत्रं नो वर्द्धतां दातारो नोऽभिवर्द्धन्ताम् । वेदाः सन्ततिरेव च । श्रद्धा च नो मा व्यगमद्बहुदेयं च नोऽस्तु ॥ अन्नं च नो बहु भवेदतिथींश्च लभेमहि । याचितारश्च नः सन्तु मा च याचिष्म कञ्चन ॥ एताः सत्याः आशिषः सन्तुः ॥

अपसव्य तथा दक्षिणाभिमुख होकर नीचे लिखे संकल्प से वस्त्र पर दक्षिणा रखें—

कृतैतत् श्राद्धप्रतिष्ठार्थं दक्षिणाद्रव्यं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दातुमहमुत्सृजे ॥

सव्य तथा पूर्वाभिमुख होकर नीचे लिखी प्रार्थना करें—

अन्नहीनं क्रियाहीनं विधिहीनं च यद्भवेत् ।
तत्सर्वमच्छिद्रमस्तु पित्रादीनां प्रसादतः ॥
प्रमादात् कुर्वतां कर्म प्रच्यवेताध्वरेषु यत् ।
स्मरणादेव तद्विष्णोः सम्पूर्णं स्यादिति श्रुतिः ॥

काक और श्वान बलिको छोड़कर बाकी सभी बलि गौको दें । पश्चात् ब्राह्मणों के पैर धोकर आसन पर बैठा, पाक परोसकर भोजन करने की प्रार्थना करें । श्राद्धकर्ता पाक का गुण वर्णन करते हुए नम्रतापूर्वक बार-बार परोसें । ब्राह्मण पाक की प्रशंसा न करें । भोजन के पश्चात् तिलक करके दक्षिणा देकर उनसे पूछें ‘शेषान्नं किं कर्त्तव्यम्’ ब्राह्मण कहें ‘इष्टैः सह भोक्तव्यम्’, पश्चात् पितृतृप्ति के लिए तर्पण, (पीछे छपे पृष्ठ से देख करके) काकबलि कौवे को और श्वानबलि कुत्ते को देकर इष्ट मित्रों सहित भोजन करें ।

इति श्राद्धकर्म सम्पूर्णम् ॥

आपोशान

नीचे लिखे प्रत्येक मन्त्र से एक-एक ग्रास देकर जल छोड़ें—

ॐ भूपतये स्वाहा १ । ॐ भुवनपतये स्वाहा २ । ॐ भूतानाम्पतये स्वाहा ३ । "ॐ अमृतोपस्तेरणमसि स्वाहा ॥"

नीचे लिखे प्रत्येक मन्त्र से ग्रास लेकर आचमन करके भोजन करें—

ॐ प्राणाय स्वाहा । ॐ अपानाय स्वाहा २ । ॐ व्यानाय स्वाहा ३ । ॐ उदानाय स्वाहा ४ । ॐ समानाय स्वाहा ॥५ ॥ भोजन के अन्त में "ॐ अमृतपिधानमसि स्वाहा' बोलकर आचमन करके उच्छिष्ट अन्न को नीचे लिखे मन्त्र से दक्षिण में फेंक दें—

मद्भुक्तोच्छिष्टशेषं ये भुञ्जते पितरोऽधमाः ।
तेषामन्नं मया दत्तमक्षय्यमुपतिष्ठतु ॥

मुखशुद्धि के लिए सोलह कुल्ले करके नीचे लिखे मन्त्र बोलें ।

अगस्त्यं कुम्भकर्णञ्च शनिञ्च वडवानलम् ।
आहारपरिपाकाय संस्मरामि वृकोदरम् ॥
आतापी भक्षितो येन वातापी च महाबलः ।
समुद्रः शोषितो येन स मेगस्त्यः प्रसीदतु ॥

सूर्यास्त के बाद सूर्योदय तक घर में दीपक जलते रहने से दरिद्रता नहीं रहती है, अतः दीपक जलाकर प्रार्थना करें—

दीपोज्योतिः परं ब्रह्म दीपो ज्योतिर्जनार्दनः ।
दीपो हरतु मे पापं सन्ध्यादीप नमोऽस्तुते ॥

शयन-विधि

ब्राह्म मुहूर्त्त में उठकर हमने ऋषियों द्वारा निर्देशित मार्ग—

सन्ध्या स्नानं जपश्चैव देवतानाञ्च पूजनम् ।
वैश्वदेवं तथातिथ्यं षट् कर्माणि दिनेदिने ॥

का अनुसरण करके स्नान, सन्ध्या, जप, होम, देवपूजन, वैश्वदेव, अतिथि सत्कार आदि नित्य कर्म करते हुए दैनिक जीवन यात्रा के रात्रिकालीन पड़ाव तक आ गये ।

अब शान्त चित्त बैठकर दिन में किये कर्मों का स्मरण करना चाहिये । यदि कहीं त्रुटि समझ पड़े तो प्रभु स्मरण करके क्षमा प्रार्थना करें तथा भविष्य में त्रुटि के प्रति सावधान रहें ।

शयन के समय शिर पूर्व अथवा दक्षिण की तरफ रखें ।

परमपूज्य स्व. श्री डोंगरे जी महाराज ने बताया है कि यदि भगवान का नाम स्मरण करते-करते नींद आ जाये तो जागने तक नाम स्मरण का फल प्राप्त होता है । अतः सोते समय प्रभुस्मरण अवश्य करना चाहिये ।

देवपूजा-विधि

पूजन सामग्री को शुद्ध करके यथास्थान रखकर विधिपूर्वक पूजा करे ।

नाङ्गुष्ठैर्मर्दयेद्देवं नाधः पुष्पैः समर्चयेत् ।
कुशाग्रैर्न क्षिपेत्तोयं वज्रपातसमं भवेत् ॥ —आचारमयूख

देवताओं को अँगूठे से न मलें और पुष्प अधोमुख करके न चढ़ायें तथा कुशा के अग्रभाग से देवताओं पर जल न छिड़कें । ऐसा करना वज्रपात तुल्य है ।

त्रिर्देवेभ्यः प्रक्षालयेत् सकृत् पितृभ्यः ॥ —आपस्तम्ब

देवताओं को तीन बार और पितर को एक बार धोकर अक्षत चढ़ायें ।

नाक्षतैरर्चयेद्विष्णुं न तुलस्या गणाधिपम् ।
न दूर्वया यजेत् दुर्गां विल्वपत्रैश्च भास्करम् ॥
दिवाकरं वृन्तहीनैर्विल्वपत्रः समर्चयेत् ॥

विष्णु को चावल, गणेश को तुलसी, दुर्गा को दूब और सूर्यनारायण को विल्वपत्र न चढ़ायें । किन्तु डंडी तोड़कर विल्वपत्र सूर्यनारायण को चढ़ा सकते हैं ।

अधोवस्त्रधृतं चैव जलेऽन्तःक्षालितं च यत् ।
देवतास्तन्न गृह्णन्ति पुष्पं निर्माल्यतां गतम् ॥ —आह्निक

धोती में रखा हुआ और जल में डुबोया हुआ पुष्प निर्माल्य हो जाता है । इसलिये देवता उसे ग्रहण नहीं करते हैं ।

शिवे विवर्जयेत् कन्दमुन्मत्तं च तथा हरौ ।
देवीनामर्कमन्दारौ सूर्यस्य तगरं तथा ॥

शिवजी को कुन्द, विष्णु को धतूरा, देवी को आक तथा मदार और सूर्य को तगर का पुष्प न चढ़ायें ।

तुलसी-मञ्जरीभिर्यः कुर्यात् हरिहरार्चनम् ।
न स गर्भगृहं याति मुक्तिभागी न संशयः ॥

तुलसी की मञ्जरी से जो विष्णु भगवान् तथा शिव की पूजा करता है। उनको गर्भ में वास नहीं करना पड़ता, वह अवश्य मुक्ति पाता है।

पत्रं वा यदि वा पुष्पं फलं नेष्टमधोमुखम् ।
यथोत्पन्नं तथा देयं विल्वपत्रमधोमुखम् ॥ —आह्निक

पत्र, पुष्प तथा फल का मुख नीचे करके न चढ़ायें। वे जैसे उत्पन्न होते हैं, उनको वैसे ही चढ़ाना चाहिये। किन्तु विल्वपत्र उलटा करके चढ़ायें।

पर्णमूले भवेद् व्याधिः पर्णाग्रे पापसम्भवः ।
जीर्णपत्रं हरत्यायुः शिरा बुद्धिविनाशिनी ॥ —आचारार्क

पान की डंडी से व्याधि और अग्रभाग से पाप होता है। सड़ा पान आयु और शिरा बुद्धि को नष्ट करती है। इसलिये डंडी, अग्रभाग और शिरा निकाल दें।

वृक्ष से तुलसी ग्रहण मन्त्र

तुलस्यमृतजन्मासि सदा त्वं केशवप्रिया ।
केशवार्थे चिनोमि त्वां वरदा भव शोभने! ॥

संक्रान्ति, द्वादशी, अमावस्या, पूर्णिमा, रविवार और सन्ध्या के समय तुलसी तोड़ना निषिद्ध है। यदि विशेष आवश्यक हो तो नीचे लिखे मन्त्र से तोड़ सकते हैं।

त्वदङ्गसम्भवेन त्वां पूजयामि यथा हरिम् ।
तथा नाशय विघ्नं मे ततो यान्ति पराङ्गतिम् ॥

पूर्वाभिमुख बैठकर बायीं ओर घण्टा, धूप तथा दाहिनी ओर शंख, जल-पात्र तथा पूजन की सामग्री रख, आचमन, प्राणायाम करके संकल्प वाक्य के अन्त में, **"शालग्रामपूजनं तदङ्गत्वेन गणपत्यादिदेवानां मण्डले स्थापनं पूजनञ्च करिष्ये"** कहकर जलादि छोड़ें।

दीपक-पूजन

घीका दीपक अपनी बाईं तथा तेलका दाहिनी ओर पूर्व या उत्तरमुख करके चावल आदि पर रख प्रज्वलितकर हाथ धो नीचे लिखी प्रार्थना करें ।

भो दीप ! देवरूपस्त्वं कर्मसाक्षी ह्यविघ्नकृत् ।
यावत्कर्मसमाप्तिः स्यात् तावत् त्वं सुस्थिरो भव ॥

घंटा-पूजन

आवाहन के लिये घंटा बजा पश्चात् घंटे का पूजन करें ।

आगमार्थन्तु देवानां गमनार्थन्तु रक्षसाम् ।
घण्टा-नादं प्रकुर्वीत पश्चात् घण्टां प्रपूजयेत् ॥

शंख-पूजन

शंख में जल भरकर शंख-मुद्रा दिखा पूजाकर नीचे लिखी प्रार्थना करें ।

त्वं पूरा सागरोत्पन्नो विष्णुना विधृतः करे ।
निर्मितः सर्वदेवैश्च पाञ्चजन्य ! नमोस्तु ते ॥

स्वस्तिवाचन

श्रीमन्महागणाधिपतये नमः १ । लक्ष्मीनारायणाभ्यां नमः २ । उमामहेश्वराभ्यां नमः ३ । वाणीहिरण्यगर्भाभ्यां नमः ४ । शचीपुरन्दराभ्यां नमः ५ । मातापितृचरणकमलेभ्यो नमः ६ । इष्टदेवताभ्यो नमः ७ । कुलदेवताभ्यो नमः ८ । ग्रामदेवताभ्यो नमः ९ । वास्तुदेवताभ्यो नमः १० । स्थानदेवताभ्यो नमः ११ । एतत्कर्मप्रधानदेवताभ्यो नमः १२ । सर्वेभ्यो देवेभ्यो नमः १३ । सर्वेभ्यो ब्राह्मणेभ्यो नमः १४ । अविघ्नमस्तु १५ । ॐ स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः । स्वस्ति नस्ताक्ष्र्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु १६ । ॐ पयः पृथिव्यां पय ओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयो धाः । पयस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम् १७ । ॐ विष्णो रराटमसि विष्णोःश्नप्त्रेस्थो विष्णोःस्यूरसि विष्णोर्ध्रुवोसि वैष्णवमसि विष्णवे त्वा १८ । ॐ अग्निर्देवता वातो देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता

वसवो देवता रुद्रा देवताऽऽदित्या देवता मरुतो देवता विश्वेदेवा देवता बृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता वरुणो देवता १९। ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वꣳ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि २०। ॐ पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभं यावानो विदथेषु जग्मयः। अग्निजिह्वा मनवः सूरचक्षसो विश्वे नो देवा अवसागमन्निह २१। ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳ सस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः २२। ॐ शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा यत्रा नश्चक्रा जरसंतनूनाम्। पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मानो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः २३। ॐ अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः। विश्वेदेवा अदितिः पञ्च जना अजितिर्जातमदितिर्जनित्वम् २४। ॐ यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु। शं नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः २५। ॐ विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद् भद्रं तन्न आसुव २६। ॐ एतं तेदेव सवितर्यज्ञं प्राहुर्बृहस्पतये ब्रह्मणे। तेन यज्ञमव तेन यज्ञपतिं तेन मामव २७। ॐ मनो जूतिर्जुषतामाज्यस्यबृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनोत्वरिष्टं यज्ञꣳ समिमं दधातु। विश्वे देवास इह मादयन्तामो ३ म् प्रतिष्ठ २८। एष वै प्रतिष्ठा नाम यज्ञो यत्रैतेन यज्ञेन यजन्ते सर्वमेव प्रतिष्ठितम्भवति २९। ॐगणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिꣳ हवामहे निधीनां त्वा निधिपतिꣳ हवामहे वसो मम। आहमजानि गर्भधमा त्वमजासि गर्भधम् ३०। ॐ नमोगणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमो नमो व्रातेभ्यो व्रातपतिभ्यश्च वो नमो नमो गृत्सेभ्यो गृत्सपतिभ्यश्च वो नमो नमो विरूपेभ्यो विश्वरूपेभ्यश्च वो नमः ३१। सुमुखश्चैकदन्तश्च कपिलो गजकर्णकः। लम्बोदरश्च विकटो विघ्ननाशो विनायकः। धूम्रकेतुर्गणाध्यक्षो भालचन्द्रो गजाननः। द्वादशैतानि नामानि यः पठेच्छृणुयादपि। विद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निर्गमे तथा। संग्रामे संकटे चैव विघ्नस्तस्य न जायते ३२।

पुण्याहवाचन

तत्रादौ युग्मब्राह्मणानां हस्तेषु।

(यजमानः) "शिवा आपः सन्तु"। (ब्राह्मणाः) "सन्तु शिवा आपः।" इति जलम्॥ (यजमानः) "सुगन्धाः पान्तु।" (ब्राह्मणाः) "सौमङ्गल्यं चास्तु।" इति

गंधम् ॥ (यजमानः) "सौमनस्यमस्तु ।" (ब्राह्मणाः) "अस्तु सौमनस्यम् ।" इति पुष्पम् ।(यज.) "अक्षतं चारिष्टं चास्तु ।"(ब्रा.) "अस्त्वक्षतमरिष्टं च ।" इत्यक्षतान् । (यज.) "सफलताम्बूलानि पान्तु ।" (ब्रा.) "ऐश्वर्यमस्तु ।" इति सफलताम्बूलम् । (यज.) "दक्षिणाः पान्तु ।"(ब्रा.) "बहुदेयं चास्तु" इति दक्षिणा ।(यज.) "ॐ स्वर्चितमस्तु ।" (ब्रा.) "अस्त्वर्चितं मङ्ग च ।" इति जलम् । दीर्घायुः शान्तिः पुष्टिस्तुष्टिः श्रीर्यशो विद्या विनयो बहुपुत्रं बहुधनं चास्तु । यं कृत्वा सर्ववेदयज्ञक्रियाप्रारम्भाः शुभाः शोभनाः प्रवर्तन्ते तमहमोंकारमादिं कृत्वा ऋग्यजुः सामाथर्वणाशीर्वचनं बह्वृषिसमनुज्ञातं भवद्भिरनुज्ञातः पुण्यं पुण्याहं वाचयिष्ये । वाच्यतामिति ब्राह्मणवचनम् ।(पुनः यजमानो ब्रूयात्) " व्रत-जप नियमतपस्वाध्यायस्क्रतुदमदानविशिष्टानां सर्वेषां ब्राह्मणानां मनः समाधीयताम्" । (ब्राह्मणाः) "समाहितमनसः स्मः" (यजमानो ब्रूयात्) "प्रसीदन्तु भवन्तः" । (ब्राह्मणाः) प्रसन्नाः स्म" । ततो यजमानः अवनीकृतजानुमण्डलः कमलमुकुलसदृशमञ्जलिं शिरस्याधाय दक्षिणेन पाणिना जलपूर्णं (सुवर्णयुक्त) कलशं धारयित्वा भूमौ स्थापिते पात्रद्वये प्रथमपात्रे किंचिदुदकं पातयेत् ।

(ततः ब्राह्मणाः वदेयुः) ॐ शान्तिरस्तु । पुष्टिरस्तु । वृद्धिरस्तु । ऋद्धिरस्तु । अविघ्नमस्तु । आयुष्यमस्तु । आरोग्यमस्तु । शिवमस्तु । शिवं कर्मास्तु । कर्मसमृद्धिरस्तु । पुत्रसमृद्धिरस्तु । वेदसमृद्धिरस्तु । शास्त्रसमृद्धिरस्तु । धनधान्यसमृद्धिरस्तु । इष्टसम्पदस्तु ॥ अरिष्टनिरसनमस्तु । यच्छ्रेयस्तदस्तु । ततो द्वितीय पात्रे पातयेत् । यत्पापमकल्याणं तद्दूरे प्रतिहतमस्तु । पुनः प्रथमपात्रे पातयेत् । उत्तरोत्तरे कर्मण्यविघ्नमस्तु । उत्तरोत्तरमहरहरभिवृद्धिरस्तु । उत्तरोत्तराः क्रियाः शुभाः शोभनाः संपद्यन्ताम् । तिथिकरणमुहुर्तनक्षत्रग्रहलग्नाधिदेवताः प्रीयन्ताम् । तिथिकरणे सुमुहूर्ते सुनक्षत्रे सुग्रहे सुदैवते प्रीयेताम् । अग्निपुरोगा विश्वेदेवाः प्रीयन्ताम् । इन्द्रपुरोगा मरुद्गणाः प्रीयन्ताम् । माहेश्वरीपुरोगा मातरः प्रीयन्ताम् । वसिष्ठपुरोगा ऋषिगणाः प्रीयन्ताम् । अरुन्धतीपुरोगा एकपत्न्यः प्रीयन्ताम् । ब्रह्मपुरोगाः सर्ववेदाः प्रीयन्ताम् । विष्णुपुरोगाः सर्वे देवाः प्रीयन्ताम् । ऋषयश्छन्दांस्याचार्या वेदा देवा यज्ञाश्च प्रीयन्ताम् । ब्रह्म च ब्राह्मणाश्च प्रीयन्ताम् । अम्बिकासरस्वत्यौ प्रीयेताम् । श्रद्धामेधे प्रीयेताम् । दुर्गापाञ्चाल्यौ प्रीयेताम् । भगवती

कात्यायिनी प्रीयताम्। भगवती माहेश्वरी प्रीयताम्। भगवती ऋद्धिकरी प्रीयताम्। भगवती वृद्धिकरी प्रीयताम्। भगवती पुष्टिकरी प्रीयताम्। भगवती तुष्टिकरी प्रीयताम्। भगवन्तौ विघ्नविनायकौ प्रीयेताम्। सर्वाः कुलदेवताः प्रीयन्ताम्। पुनः द्वितीयपात्रे पातयेत्। हताश्च ब्रह्मद्विषः। हताश्च परिपन्थिनः। हताश्च विघ्नकर्तारः। शत्रवः पराभवं यान्तु। शाम्यन्तु घोराणि। शाम्यन्तु पापानि। शाम्यन्त्वीतयः। पुनः प्रथमपात्रे पातयेत्। शुभानि वर्द्धन्ताम्। शिवा आपः सन्तु। शिवा ऋतवः सन्तु। शिवा अग्नयः सन्तु। शिवा आहुतयः सन्तु। शिवा वनस्पतयः सन्तु। शिवा अतिथयः सन्तु। अहोरात्रे शिवे स्याताम्। निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्ताम्। योगक्षेमो नः कल्पताम्। शुक्रांगारकबुधबृहस्पतिशनैश्चरराहुकेतुसोमादित्यरूपाः सर्वे ग्रहाः प्रीयन्ताम्। भगवान्नारायणः प्रीयताम्। भगवान् पर्जन्यः प्रीयताम्। भगवान् स्वामी महासेनः प्रीयताम्। पुरोनुवाक्यया यत्पुण्यं तदस्तु। याज्यया यत्पुण्यं तदस्तु। वषट्कारेण यत्पुण्यं तदस्तु। प्रातः सूर्योदये यत्पुण्यं तदस्तु।

ततो यजमानः सुवर्णकलशं भूमौ निधाय प्रथमपात्रपातितजलेन शिरः संमृज्य सपरिवारगृहांश्चाभिषेचयेत्। द्वितीयपात्रजलमेकान्ते पातयेत्।

(यजमानो ब्रूयात्) ब्राह्मं पुण्यमहर्यच्च सृष्ट्युत्पादनकारकम्। वेदवृक्षोद्भवं पुण्यं तत्पुण्याहं ब्रुवन्तु नः॥ भो ब्राह्मणाः! मम सपरिवारस्य गृहे पुण्याहं भवन्तो ब्रुवन्तु। (ब्राह्मणाः) ॐ पुण्याहम् ३। ॐ पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसा धियः। पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि मा॥ (यजमानः) पृथिव्यामुद्धृतायान्तु यत् कल्याणं पुराकृतम्। ऋषिभिः सिद्धगन्धर्वैस्तत्कल्याणं ब्रुयन्तु नः॥ भो ब्राह्मणाः। मम सपरिवारस्य गृहे कल्याणं भवन्तो ब्रुवन्तु॥ (ब्राह्मणाः) ॐ कल्याणम् ३। ॐ यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः। ब्रह्मराजन्याभ्या ँ शूद्राय चार्य्याय च स्वाय चारणाय। प्रियो देवानां दक्षिणायै दातुरिह भूयासमयं मे कामः समृद्ध्यतामुपपादो नमतु॥ (यजमानः) सागरस्य च या लक्ष्मीर्महालक्ष्म्यादिभिः कृता। संपूर्णा सुप्रभावा च तां च ऋद्धिं ब्रुवन्तु नः॥ भो ब्रह्मणाः! मम सपरिवारस्य गृहे ऋद्धिं भवन्तो ब्रुवन्तु॥ (ब्राह्मणाः) ॐ ऋद्ध्यताम् ३। ॐ

सत्रस्य ऋद्धिरस्यगन्म ज्योतिरमृता अभूम। दिवं पृथिव्या अध्याऽरुहामाविदाम देवान्त्स्वर्ज्योतिः ॥ (यजमानः) स्वस्त्यस्तु ह्यविवाशाख्या नित्यं मङ्गलदायिनी। विनायकप्रिया नित्यं तां च स्वस्ति ब्रुवन्तु नः ॥ भो ब्राह्मणाः ! मम सपरिवारस्य गृहे स्वस्ति भवन्तो ब्रुवन्तु ॥ (ब्राह्मणाः) ॐ स्वस्ति ३ ॥ ॐ स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः। स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥ (यजमानः) समुद्रमथनाज्जाता जगदानन्दकारिका। हरिप्रिया च माङ्गल्या तां श्रियं च ब्रुवन्तु नः ॥ भो ब्राह्मणाः ! मम सपरिवारस्य गृहे श्रीरस्त्विति भवन्तो ब्रुवन्तु। (ब्राह्मणाः) ॐ अस्तु श्रीः ३ ॥ ॐ श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम्। इष्णन्निषाणामुं म ईषाण सर्वलोकं म ईषाण। (ततस्तिलकाशीर्वादः) अथ दक्षिणादानम्॥ ॐ अद्य पुण्याह-वाचनसाङ्गतासिद्ध्यर्थं पुण्याहवाचकेभ्यो नानानामगोत्रेभ्यो ब्राह्मणेभ्य इमां यथाशक्ति हिरण्यमूल्यद्रव्यदक्षिणां संप्रददे ॥ इति पुण्याहवाचनम्॥

अङ्गन्यास

पूरे मन्त्र शालग्राम पूजन में लिखे हैं।

ॐ सहस्रशीर्षा॰-वामकरे। ॐ पुरुष एवेद ँ सर्वं॰-दक्षिणकरे। ॐ एतावानस्य महिमा॰- वामपादे। ॐ त्रिपादूर्ध्व॰- दक्षिणपादे। ॐ ततो विराड॰-वामजानुनि। ॐ तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत॰-दक्षिणजानुनि। ॐ तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः॰-वामकट्याम्। ॐ तस्मादश्वा॰-दक्षिणकट्याम्। ॐ तं यज्ञम्॰-नाभौ। ॐ यत्पुरुषं व्यदधुः॰-हृदि। ॐ ब्राह्मणोऽस्य॰— कण्ठे। ॐ चन्द्रमा मनसो॰— वामबाहौ। ॐ नाभ्या आसी॰— दक्षिणबाहौ। ॐ यत्पुरुषेण॰— मुखे। ॐ सप्तास्या॰— अक्ष्णोः। ॐ यज्ञेन यज्ञ॰— मूर्ध्नि।

पञ्चाङ्गन्यास

ॐ अद्भ्यः सम्भृतः॰ — हृदये। ॐ वेदाहमेतम्॰ — शिरसि। ॐ प्रजापतिश्च॰— शिखायाम्। ॐ यो देवेभ्य आतपति॰— कवचाय हुम्। ॐ रुचं ब्राह्मम्॰— अस्त्राय फट्।

करन्यास

ॐ ब्राह्मणोऽस्य ०— अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । ॐ चन्द्रमा ०— तर्जनीभ्यां नमः । ॐ नाभ्या ०— मध्यमाभ्यां नमः । ॐ यत्पुरुषेण ०— अनामिकाभ्यां नमः । ॐ सप्तास्यासन् ०— कनिष्ठिकाभ्यां नमः । ॐ यज्ञेन ०—करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ।

गणपति तथा अम्बिका-पूजन

सुपारीपर मौली लपेट चावलोंपर स्थापित कर नीचे लिखा ध्यान करके आवाहनमंत्रसे अक्षत छोड़ें । मूर्ति हो तो पुष्प छोड़ें ।

ॐ गजाननं भूतगणादिसेवितं कपित्थजम्बूफलचारुभक्षणम् ।
उमासुतं शोकविनाशकारकं नमामि विघ्नेश्वरपादपङ्कजम् ॥
ॐ अम्बे अम्बिके अम्बालिके न मा नयति कश्चन ।
ससस्त्यश्वकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम् ॥
आवाहन—आगच्छ भगवन् देव ! स्थाने चात्र स्थिरो भव ।
यावत्पूजां करिष्यामि तावत्त्वं सन्निधो भव ॥
गणेशाम्बिकाभ्यां नमः, आवाहयामि

प्रतिष्ठा — अस्यै प्राणाः प्रतिष्ठन्तु अस्यै प्राणाः क्षरन्तु च ।
अस्यै देवत्वमर्चायै मामहेति च कश्चन ॥ प्र.
आसन — रम्यं सुशोभनं दिव्यं सर्वसौख्यकरं शुभम् ।
आसनञ्च मया दत्तं गृहाण परमेश्वर ॥ आसनं स.
पाद्य — उष्णोदकं निर्मलं च सर्वसौगन्ध्यसंयुतम् ।
पादप्रक्षालनार्थाय दत्तं ते प्रतिगृह्यताम् ॥ पा.स.
अर्घ्यं — अर्घ्यं गृहाण देवेश गन्धपुष्पाक्षतैः सह ।
करुणां कुरु मे देव ! गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तुते ॥ अ.स.

आचमन— सर्वतीर्थसमायुक्तं सुगन्धि निर्मलं जलम् ।
आचम्यतां मया दत्तं गृहीत्वा परमेश्वर ॥ आ.स.

स्नान — गङ्गा-सरस्वती-रेवा-पयोष्णी-नर्मदाजलैः ।
स्नापितोऽसि मया देव तथा शान्तिं कुरुष्व मे ॥ स्ना.स.

दुग्धस्नान— कामधेनुसमुत्पन्नं सर्वेषां जीवनं परम् ।
पावनं यज्ञहेतुश्च पयः स्नानार्थमर्पितम् ॥ दु.स.

दधिस्नान— पयसस्तुसमुद्भूतं मधुराम्लं शशिप्रभम् ।
दध्यानीतं मया देव स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥ द.स.

घृतस्नान— नवनीतसमुत्पन्नं सर्वसन्तोषकारकम् ।
घृतं तुभ्यं प्रदास्यामि स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥ घृ.स.

मधुस्नान— तरुपुष्पसमुद्भूतं सुस्वादु मधुरं मधु ।
तेजःपुष्टिकरं दिव्यं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥ म.स.

शर्करास्नान— इक्षुसारसमुद्भूता शर्करापुष्टिकारिका ।
मलापहारिका दिव्या स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥ श.स.

पञ्चामृत— पयो दधि घृतं चैव मधु च शर्करायुतम् ।
पञ्चामृतं मयानीतं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥ पं.स.

शुद्धस्नान— मन्दाकिन्यास्तु यद्वारि सर्वपापहरं शुभम् ।
तदिदं कल्पितं देव ! स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥ शु.स.

वस्त्र — सर्वभूषाधिके सौम्ये लोकलज्जानिवारणे ।
मयोपपादिते तुभ्यं वाससी प्रतिगृह्यताम् ॥ व.स.

उपवस्त्र — सुजातो ज्योतिषा सह शर्म वरूथमाऽसदत्सवः ।
वासोअग्ने विश्वरूपꣳ सं व्ययस्व विभावसो ॥ उ.स.

यज्ञोपवीत— नवभिस्तन्तुभिर्युक्तं त्रिगुणं देवतामयम् ।
उपवीतं मया दत्तं गृहाण परमेश्वर ॥ य.स.

मधुपर्क — कांस्ये कास्येन पिहितो दधिमध्वाज्यसंयुतः ।
मधुपर्को मयानीतः पूजार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥ म.स.

गन्ध — श्रीखण्डचन्दनं दिव्यं गन्धाढ्यं सुमनोहरम् ।
विलेपनं सुरश्रेष्ठ ! चन्दनं प्रतिगृह्यताम् ॥ गं.स.

रक्तचन्दन— रक्तचन्दनसम्मिश्रं पारिजातसमुद्भवम् ।
मया दत्तं गृहाणाशु चन्दनं गन्धसंयुतम् ॥ र.स.

रोली — कुङ्कुमं कामनादिव्यं कामनाकामसम्भवम् ।
कुङ्कुमेनार्चितो देव गृहाण परमेश्वर ! ॥ कु.स.

सिन्दूर — सिन्दूरं शोभनं रक्तं सौभाग्यं सुखवर्द्धनम् ।
शुभदं कामदं चैव सिन्दूरं प्रतिगृह्यताम् ॥ सिं.स.

अक्षत — अक्षताश्च सुरश्रेष्ठकुङ्कुमाक्ताः सुशोभिताः ।
मया निवेदिता भक्त्या गृहाण परमेश्वर ! ॥ अ.स.

पुष्प — पुष्पैर्नानाविधैर्दिव्यैः कुमुदैरथ चम्पकैः ।
पूजार्थं नीयते तुभ्यं पुष्पाणि प्रतिगृह्यताम् ॥ पु.स.

माला — माल्यादीनि सुगन्धीनि मालत्यादीनि वै प्रभो ।
मयानीतानि पुष्पाणि गृहाण परमेश्वर ! ॥ पु.मा.स.

विल्वपत्र— त्रिशाखैर्विल्वपत्रैश्च अच्छिद्रैः कोमलैः शुभैः ।
तव पूजां करिष्यामि गृहाण परमेश्वर ! ॥ वि.प.स.

दूर्वा — त्वं दूर्वेऽमृतजन्मासि वन्दितासि सुरैरपि ।
सौभाग्यं सन्ततिं देहि सर्वकार्यकरी भव ॥ दू.स.

दूर्वाङ्कुर — दूर्वाङ्कुरान् सुहरितानमृतान् मंगलप्रदान् ।
आनीतांस्तव पूजार्थं गृहाण गणनायक ! ॥ दुर्वा.स.

शमीपत्र— शमी शमय मे पापं शमी लोहितकण्टका ।
धारिण्यर्जुनबाणानां रामस्य प्रियवादिनी ॥ श.स.

आभूषण— अलङ्कारान्महादिव्यान्नानारत्नविनिर्मितान् ।
गृहाण देवदेवेश ! प्रसीद परमेश्वर ! ।। आ.स.

अबीर-गुलाल— अबीरं च गुलालं च चोवा चन्दनमेव च ।
अबीरेणार्चितो देव ! अतः शान्ति प्रयच्छ मे ।। अ.स.

सुगन्ध तैल— चम्पकाशोक-वकुल-मालती-मोगरादिभिः ।
वासितं स्निग्धताहेतुं तैलं चारु प्रगृह्यताम् ।। सु.स.

धूप — वनस्पतिरसोद्भूतो गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः ।
आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ।। धू.आ.

दीप — आज्यं च वर्तिसंयुक्तं वह्निना योजितं मया ।
दीपं गृहाण देवेश ! त्रैलोक्यतिमिरापहम् ।। दी.द.

नैवेद्य — शर्कराघृतसंयुक्तं मधुरं स्वादु चोत्तमम् ।
उपहारसमायुक्तं नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ।। नै.निवे.

मध्ये पानीयं— अतितृप्तिकरं तोयं सुगन्धि च पिबेच्छया ।
त्वयि तृप्ते जगत्तृप्तं नित्यतृप्ते महात्मनि ।। म.पा.स.

ऋतुफल— नारिकेलफलं जम्बूफलं नारङ्गमुत्तमम् ।
कूष्माण्डं पुरतो भक्त्या,कल्पितं प्रतिगृह्यताम् ।। ऋ.स.

आचमन— गङ्गाजलं समानीतं सुवर्णकलशे स्थितम् ।
आचम्यतां सुरश्रेष्ठ ! शुद्धमाचमनीयकम् ।। आ.स.

अ.ऋ. — इदं फलं मया देव ! स्थापितं पुरतस्तव ।
तेन मे सफलावाप्तिर्भवेज्जन्मनि जन्मनि ।। अ.ऋ.स.

ताम्बूलपूगीफल— पूगीफलं महद्दिव्यं नागवल्लीदलैर्युतम् ।
एलाचूर्णादिसंयुक्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम् ।। तां.पू.स.

दक्षिंणा — हिरण्यगर्भगर्भस्थं हेमबीजं विभावसोः ।
अनन्तपुण्यफलदमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ।। द्रव्यं स.

आरती — चन्द्रादित्यौ च धरणी विद्युदग्निस्तथैव च ।
त्वमेव सर्वज्योतींषि आर्तिक्यं प्रतिगृह्यताम् ॥ आ.स.

पुष्पाञ्जलि— नानासुगन्धिपुष्पाणि यथाकालोद्भवानि च ।
पुष्पाञ्जलिर्मया दत्तो गृहाण परमेश्वर ! ॥ पु.स.

प्रार्थना — रक्ष रक्ष गणाध्यक्ष ! रक्ष त्रैलोक्यरक्षक ! ।
भक्तानामभयं कर्त्ता त्राता भव भवार्णवात् ॥

अनया पूजया गणेशाम्बिके प्रीयेतां न मम ॥

अष्टदल कमल बना, धान्य रख, उसपर कलश-स्थापन करें ।

भू. स्प.— ॐ भूरसि भूमिरस्यदितिरसि विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री ।
पृथिवीं यच्छ पृथिवीं दृꣳह पृथिवीं मा हिꣳसीः ॥

धान्य— ॐ धान्यमसि धिनुहि देवान् प्राणाय त्वो दानाय त्वा व्यानाय त्वा । दीर्घामनु प्रसितिमायुषे धां देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेणपाणिना चक्षुषे त्वा महीनां पयोऽसि ॥

सप्तधान्यपर कलश-स्थापन— ॐ आ जिघ्र कलशं मह्या त्वा विशन्त्विन्दवः । पुनरूर्जा निवर्तस्व सा नः सहस्रं धुक्ष्वोरुधारा पयस्वती पुनर्माविशताद्रयिः ॥

कलश में जल— ॐ वरुणस्योत्तम्भनमसि वरुणस्य स्कम्भसर्जनी स्थो वरुणस्य ऋतसदन्यसि वरुणस्य ऋतसदनमसि वरुणस्य ऋतसदनमासीद ॥

कलश में गन्ध— ॐ गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम् ॥ गं.स.

कलश में सर्वौषधि— ॐ या औषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा ।
मनै नु बभ्रूणामहꣳशनं धामानि सप्त च ॥

कलश में दूर्वा— ॐ काण्डात् काण्डात् प्ररोहन्ती परुषः परुषस्परि ।
एवानो दूर्वे प्रतनु सहस्रेणशतेन च ॥ दू.स.

कलशपर पञ्च-पल्लव— ॐ अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृतः ।
गोभाज इत्किलासथ यत्सनवथ पूरुषम् ॥ प.प.

कलश में सप्तमृत्तिका— ॐ स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी ।
यच्छा नः शर्म्म सप्रथाः ॥ स.मृ.स.

पूगीफल— ॐ याः फलिनीर्या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः ।
बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्व ँ हसः ॥ पू.स.

कलश में पञ्चरत्न— ॐ परि वाजपतिः कविरग्निर्हव्यान्यक्रमीत् ।
दधद्रत्नानि दाशुषे ॥ पं.स.

कलश में सुवर्ण या द्रव्य— ॐ हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् । स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥
द्र.स.

वस्त्र — ॐ वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम् । देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः पवित्रेण शतधारेण सुप्वा कामधुक्षः ॥ वस्त्रं स.

पूर्णपात्र— ॐ पूर्णादर्वि परापत सुपूर्णा पुनरापत । वस्नेव विक्रीणावहा इषमूर्ज- ँ शतक्रतो ॥ पू.पा.स.

(पूर्णपात्रको कलश पर रखें)

श्रीफल— ॐ श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम् ।
इष्णन्निषाणामुं म इषाण सर्वलोकं म इषाण ॥ श्रीफलं स.

(नारियलपर लाल वस्त्र लपेटकर पूर्णपात्र पर रखें ।)

वरुणावाहन— ॐ तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः । अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशꣳस मा न आयुः प्र मोषीः ॥ अस्मिन् कलशे वरुणं साङ्गं सपरिवारं सायुधं सशक्तिकमावाहयामि, ॐ भूर्भुवः स्वः भो वरुण ! इहागच्छ, इह तिष्ठ, स्थापयामि, पूजयामि ॥

आवाहन— सर्वे समुद्राः सरितस्तीर्थानि जलदा नदाः ।। आयान्तु देवपूजार्थं दुरितक्षयकारकाः ।। कलशस्य मुखे विष्णुः कण्ठे रुद्रः समाश्रितः । मूले तस्य स्थितो ब्रह्मा मध्ये मातृगणाः स्मृताः । कुक्षौ तु सागरा सर्वे सप्तद्वीपा वसुन्धरा । ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदो ह्यथर्वणः ।। अङ्गैश्च सहिताः सर्वे कलशं तु समाश्रिताः । अत्र गायत्री सावित्री शान्तिः पुष्टिकरी तथा ।। आयान्तु मम शान्त्यर्थं दुरितक्षयकारकाः ।।

प्रतिष्ठा— ॐ मनो जूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनोत्वरिष्टं यज्ञᳬं समिमं दधातु । विस्वे देवास इह मादयन्ता मो३म् प्रतिष्ठ ।।

कलशे वरुणाद्यावाहिताः देवताः सुप्रतिष्ठिताः वरदाः भवन्तु ।।
पूजनकर नीचे लिखी प्रार्थना करें ।

देवदानवसंवादे मथ्यमाने महोदधौ । उत्पन्नोऽसि यदा कुम्भ विधृतो विष्णुना स्वयम् ।। त्वत्तोये सर्वतीर्थानि देवाः सर्वे त्वयि स्थिताः । त्वयि तिष्ठन्ति भूतानि त्वयि प्राणाः प्रतिष्ठिताः ।। शिवः स्वयं त्वमेवासि विष्णुस्त्वं च प्रजापतिः । आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवाः सपैतृकाः । त्वयि तिष्ठन्ति सर्वेऽपि यतः कामफलप्रदाः । त्वत्प्रसादादिमां पूजां कर्तुमीहे जलोद्भव ।। सान्निध्यं कुरु मे देव प्रसन्नो भव सर्वदा ।। (अक्षत छोड़ें)

नवग्रह पूजन

बायें हाथ में अक्षत ले दाहिने हाथ से प्रत्येक मन्त्र के बाद अक्षत छोड़ें ।

सूर्य-'मण्डल के मध्य में' (गोलाकार, लाल)

ॐ आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यञ्च । हिरण्येन सविता रथेन देवो याति भुवनानि पश्यन् ।। ॐ भूर्भुवः स्वः सूर्य इहागच्छ, इह तिष्ठ । सूर्याय नमः ।

चन्द्र– 'अग्निकोण में' (अर्धचन्द्र, श्वेत)

ॐ इमं देवा आसपत्न ꣳ सुवध्वं महते क्षत्राय महते ज्येष्ठ्याय महते जानराज्यायेन्द्रस्येन्द्रियाय। इमममुष्य पुत्रममुष्यै पुत्रमस्यै विश एष वोऽमी राजा सोमोऽस्माकं ब्राह्मणाना ꣳ राजा ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः चन्द्र इहागच्छ, इह तिष्ठ । सोमाय नमः ।

मङ्गल– 'दक्षिण में' (त्रिकोण, लाल)

ॐ अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम् । अपाꣳ रेता ꣳ सि जिन्वति ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः भौम इहागच्छ, इह तिष्ठ । भौमाय नमः ।

बुध– 'ईशानकोण में' (हरा बाण)

ॐ उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि त्वमिष्टापूर्ते स ꣳ सृजेतामयं च । अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः बुध इहागच्छ, इह तिष्ठ । बुधाय नमः ।

बृहस्पति– 'उत्तर में' (पीला अष्टदल)

ॐ बृहस्पते अति यदर्यो अर्हाद् द्युमद्विभाति क्रतुज्जनेषु । यद्दीदयच्छवस ऋतप्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम् ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः बृहस्पते इहागच्छ, इह तिष्ठ । बृहस्पतये नमः ।

शुक्र– 'पूर्व में (श्वेत पञ्चकोण)

ॐ अन्नात्परिस्रुतो रसं ब्रह्मणा व्यपिबत्क्षत्रं पयः सोमं प्रजापतिः । ऋतेन सत्यमिन्द्रियं बिपान ꣳ शुक्रमन्थस इन्द्रस्येन्द्रियमिदं पयोऽमृतं मधु ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः शुक्र ! इहागच्छ, इह तिष्ठ । शुक्राय नमः ।

शनि— 'पश्चिम में' (काला मनुष्य)

ॐ शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये । शं योरभि स्रवन्तु नः ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः शनैश्चर ! इहागच्छ, इह तिष्ठ । शनैश्चराय नमः ।

राहु— 'नैर्ऋत्यकोण में' (काला मकर)

ॐ कया नश्चित्र आ भुवदूती सदाबृधः सखा । कया शचिष्ठया वृता ।

ॐ भूर्भुवः स्वः राहो ! इहागच्छ, इह तिष्ठ । राहवे नमः ।

केतु— 'वायव्य कोण में' (काली ध्वजा)

ॐ केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे समुषद्भिरजायथाः ।

ॐ भूर्भुवः स्वः केतो ! इहागच्छ, इह तिष्ठ । केतवे नमः ।

ॐ सूर्यादि-नवग्रहेभ्यो नमः ॥ पूजन करके नीचे लिखी प्रार्थना करें ॥

ॐ ब्रह्मा मुरारिस्त्रिपुरान्तकारी भानुः शशी भूमिसुतो बुधश्च ।
गुरुश्च शुक्रः शनिराहुकेतवः सर्वे ग्रहाः शान्तिकरा भवन्तु ॥

"अनया पूजया सूर्यादिनवग्रहाः प्रीयन्तां न मम ।" अक्षत छोड़ें।

पञ्चलोकपाल-पूजन

बायें हाथ में अक्षत ले, दाहिने हाथ से प्रत्येक मंत्र के बाद अक्षत छोड़ें ।

गणपति— ॐ गणानां त्वा गणपतिꣳ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपति ꣳ हवामहे निधीनां त्वा निधिपति ꣳ हवामहे वसो मम । आहमजानिगर्भधमा त्वमजासि गर्भधम ।

ॐ भूर्भुवः स्वः गणपते ! इहागच्छ, इह तिष्ठ । गणपतये नमः ।

देवी— ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममराती यतो निदहाति वेदः । स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः दुर्गे ! इहागच्छ, इह तिष्ठ । दुर्गायै नमः ॥

वायु— ॐ आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरण्वर ꣳ सहस्त्रिणीभीरुप याहि यज्ञम्। वायो अस्मिन्त्सवने मादयस्व यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥

ॐ भूर्भुवः स्वः वायो ! इहागच्छ, इह तिष्ठ। वायवे नमः ॥

आकाश— ॐ घृतं घृतपावानः पिबत वसां वसापावानः पिबतान्तरिक्षस्य हविरसि स्वाहा ॥ ॐ भूर्भुवः स्वः आकाश ! इहागच्छ, इह तिष्ठ। आकाशाय नमः ॥

अस्विनी— ॐ या वां कशा मधुमत्यश्विना सूनृतावती। तया यज्ञं मिमिक्षतम् ॥ उपयाम गृहीतोऽस्यश्विभ्यांत्वैष ते योनिर्माध्वीभ्यां त्वा ॥

ॐ भूर्भुवः स्वरश्विना ! इहागच्छ, इह तिष्ठ, अश्विनिभ्यां नमः।

(इत्यावाह्य) ॐ गणपत्यादिपञ्चलोकपालेभ्यो नमः ॥

पूजन करें। पश्चात् "अनया पूजया पञ्चलोकपालाः प्रीयन्तां न मम" बोलकर अक्षत छोड़ें।

दश-दिक्पाल-पूजन

बायें हाथ में अक्षत लेकर दाहिने हाथ से प्रत्येक मंत्र के बाद अक्षत छोड़ें।

इन्द्र— (पूर्व में) ॐ त्रातारमिन्द्रसवितारमिन्द्र ꣳ हवे हवे सुहव ꣳ शूरमिन्द्रम्। ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्र ꣳ स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः ॥ (इन्द्राय नमः)

अग्नि— (अग्निकोण में) ॐ अग्निं दूतं पुरो दधे हव्यवाहमुप ब्रुवे। देवाँ आ सादयादिह ॥ (अग्नये नमः)

यम— (दक्षिण में) ॐ असि यमो अस्यादित्यो अर्वन्नसि त्रितो गुह्येन व्रतेन। असि सोमेन समया विपृक्त आहुस्ते त्रीणि दिवि बन्धनानि ॥ (यमाय नमः)

निर्ऋति— (नैर्ऋत्य कोण में) ॐ असुन्वन्तमयजमानमिच्छ स्तेनस्येत्यामन्विहि तस्करस्य। अन्यमस्मदिच्छ सा त इत्या नमो देवि निर्ऋते तुभ्यमस्तु ॥ (नैर्ऋत्याय नमः)

वरुण— (पश्चिम में) ॐ इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय ।
त्वामवस्युराचक्रे ॥ (वरुणाय नमः) व.आ.स्था.।

वायु— (उत्तरकोण में) ॐ वायुरग्रेगा यज्ञप्रीः साकं गन्मनसा यज्ञम् ।
शिवो नियुद्भिः शिवाभिः ॥ (वायवे नमः ।) वा.आ.

कुबेर — (उत्तर में) ॐ कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय ।
इहेहैषां कृणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नम उक्तिं यजन्ति ॥
(कुबेराय नमः) कु.आ.स्था

ईशान— (ईशान कोण में) ॐ तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियञ्जिन्वमवसे हूमहे
वयम् । पूषा नो यथा वेदसामसद् वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥
(ईशानाय नमः)

ब्रह्मा— (ईशानपूर्व के मध्य में) ॐ ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो
वेन आवः । स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च
विवः ॥ (ब्रह्मणे नमः)

अनन्त— (नैर्ऋत्य पश्चिम के मध्य में) ॐ नमोऽस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु ।
ये अन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥ (अनन्ताय नमः)
अनन्तं आ. स्था. "ॐ इन्द्रादि दश दिक्पालेभ्यो नमः" से पूजन करें, पश्चात् "अनया पूजया दश दिक्पालदेवताः प्रीयन्तां न मम" कहकर अक्षत छोड़ें ।

षोडशमातृका-पूजन

बायें हाथ में अक्षत लेकर दाहिने हाथ से प्रत्येक नाम पर अक्षत छोड़ें ।

ॐ गौरी पद्मा शची मेधा सावित्री विजया जया ।
देवसेना स्वधा स्वाहा मातरो लोकमातरः ॥
हृष्टिः पुष्टिस्तथा तुष्टिरात्मनः कुलदेवताः ।
गणेशेनाधिका ह्येता वृद्धौ पूज्याश्च षोडश ॥

"ॐ भूर्भुवः स्वः षोडशमातृकाभ्यो नमः इहागच्छन्त इह तिष्ठत" ॥

ॐगौर्यादिषोडशमातृकाभ्यो नमः ॥

पूजन करके नीचे लिखी प्रार्थना करें ।

ॐ जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी ।
दुर्गा क्षमा शिवा धात्री स्वाहा स्वधा नमोऽस्तु ते ॥

'अनया पूजया गौर्यादिषोडशमातरः प्रीयन्तां न मम' (अक्षत छोड़ें) ।

चतुःषष्टि-योगिनी-पूजन

बायें हाथ में अक्षत लेकर दाहिने हाथ से नीचे लिखे मंत्र से छोड़ते जायें ।

आवाहयाम्यहं देवीः योगिनीः परमेश्वरीः ।
योगाभ्यासेन सन्तुष्टाः परध्यानसमन्विताः ।
चतुःषष्टिः समाख्याता योगिन्यो हि वरप्रदाः ॥

"ॐचतुःषष्टियोगिनीमातृकाभ्यो नमः" कहकर पूजन करें । पश्चात् "अनया पूजया चतुःषष्टियोगिन्यः प्रीयन्तां न मम" कहकर अक्षत छोड़ें ।

रक्षा-विधान

बायें हाथ में पीली सरसों अथवा चावल, द्रव्य और तीन तारकी मौली लेकर दाहिने हाथ से ढक कर नीचे लिखे मंत्र बोलें ।

ॐ गणाधिपं नमस्कृत्य नमस्कृत्य पितामहम् । विष्णुं रुद्रं श्रियं देवीं वन्दे भक्त्या सरस्वतीम् ॥ स्थानाधिपं नमस्कृत्य ग्रहनाथं निशाकरम् । धरणीगर्भसम्भूतं शशिपुत्रं बृहस्पतिम् ॥ दैत्याचार्यं नमस्कृत्य सूर्यपुत्रं महाग्रहम् । राहुं केतुं नमस्कृत्य यज्ञारम्भे विशेषतः ॥ शक्राद्या देवताः सर्वाः मुनींश्चैव तपोधनान् । गर्गं मुनिं नमस्कृत्य नारदं मुनिसत्तमम् ॥ वसिष्ठं मुनिशार्दूलं विश्वामित्रं च गोभिलम् । व्यासं मुनिं नमस्कृत्य सर्वशास्त्रविशारदम् ॥ विद्याधिका ये मुनयः आचार्याश्च तपोधनाः । तान् सर्वान् प्रणमाम्येवं यज्ञरक्षाकरान् सदा ॥

नीचे लिखे मन्त्रों से दशों दिशाओं में पीली सरसों या चावल छोड़ें ।

पूर्वे रक्षतु वाराहः आग्नेय्यां गरुड़ध्वजः। दक्षिणे पद्मनाभस्तु नैर्ऋत्यां मधुसूदनः॥ पश्चिमे चैव गोविन्दो वायव्यां तु जनार्दनः। उत्तरे श्रीपती रक्षेत् ऐशान्यां तु महेश्वरः॥ ऊर्ध्वं रक्षतु धाता वो ह्यधोऽनन्तश्च रक्षतु। एवं दशदिशो रक्षेद् वासुदेवो जनार्दनः॥ रक्षाहीनन्तु यत्स्थानं रक्षत्वीशो ममाद्रिधृक्। यदत्र संस्थितं भूतं स्थानमाश्रित्य सर्वदा॥ स्थानं त्यक्त्वा तु तत्सर्वं यत्रस्थं तत्र गच्छतु। अपक्रामन्तु ते भूता ये भूता भूतले स्थिताः॥ ये भूता विघ्नकर्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया। अपक्रामन्तु भूतानि पिशाचाः सर्वतो दिशम्॥ सर्वेषामविरोधेन पूजाकर्म समारभे॥

पश्चात् मौली गणेशजी के सन्मुख रख दें। फिर उस मौली में से गणपत्यादि समस्त देवताओं को चढ़ाकर रक्षाबन्धन करें।

ब्राह्मण-रक्षाबन्धन-मन्त्र

ब्राह्मण के हाथ में दक्षिणा देकर रक्षा बाँधे।

ॐ व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाऽऽप्नोति दक्षिणाम् ।
दक्षिणा-श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ॥

ब्राह्मण-तिलक मन्त्र

ॐ नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च ।
जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः ॥

यजमान-रक्षाबन्धन-मन्त्र

येन बद्धो बली राजा दानवेन्द्रो महाबलः ।
तेन त्वामनुबध्नामि रक्षे मा चल मा चल ॥

यजमान-तिलक-मन्त्र

शतमानं भवति शतायुव पुरुषः ।
शतेन्द्रिय आयुरेवेन्द्रियं वीर्यमात्मन् धत्ते ॥

शालग्राम-पूजन

शालग्राम तथा प्रतिष्ठित मूर्तियों में आवाहन न करें, केवल पुष्प छोड़ें ।

आवाहन— ॐ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमि ꣳ सर्वतस्पृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥ आवाहयामि

आसन— ॐ पुरुष एवेद ꣳ सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम् ।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहाम ॥ आसनं समर्पयामि

पाद्य — ॐ एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पुरुषः ।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥ पा.

अर्घ्य — ॐ त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः ।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने अभि ॥अर्घ्यं समर्पयामि

आचमन— ॐ ततो विराडजायत विराजो अधि पुरुषः ।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथो पुरः ॥ आ.स.

स्नान — तस्माद्यज्ञात सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम ।
पशूँस्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये ॥ स्नान स.

दुग्ध — ॐ पयः पृथिव्यां पय ओषधीषु पयो दिव्यन्तरिक्षे पयो धाः ।
पयस्वतीः प्रदिशः सन्तु मह्यम ॥ दुग्ध स्नान समर्पयामि

दधि — ॐ दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः ।
सुरभिनो मुखा करत्प्रण आयुꣳ षि तारिषत् ॥ द.स्नान

घृत स्नान— ॐ घृतं घृतपावानः पिबत वसां वसापावानः पिबतान्तरिक्षस्य हविरसि स्वाहा। दिशाः प्रदिश आदिशो विदिश उद्दीसो दिग्भ्यः स्वाहा ॥ घृ.स्ना.स.

मधु स्नान— ॐ मधुवाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः ॥ मधुनक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिव ꣳ रजः। मधुद्यौरस्तु नः पिता ॥ मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमांऽअस्तु सूर्यः। माध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥ मधुस्नानांते पुनर्जलस्नानं समर्पयामि

शर्करा— ॐ अपा ꣳ रसमुद्वयस ꣳ सूर्ये सन्त ꣳ समाहितम्। अपा ꣳ रसस्य यो रसस्तं वो गृह्णाम्युत्तममुपयाम गृहीतोऽसीन्द्राय त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते योनिरिन्द्राय त्वा जुष्टतमम्॥ श.स्ना.स.पु.समर्पयामि।

पञ्चामृत स्नान— ॐ पञ्चनद्यः सरस्वतीमपि यन्ति सस्त्रोतसः ।
सरस्वती तु पञ्चधा सो देशेऽभवत्सरित् ॥पं.स्ना.स.

शुद्धोदक स्नान— कावेरी नर्मदा वेणी तुङ्गभद्रा सरस्वती ।
गङ्गा च यमुना चैव ताभ्यः स्नानार्थमाहृतम् ।
गृहाण त्वं रमाकान्त स्नानाय श्रद्धया जलम् ॥ शु.स्ना.स.

वस्त्र — तस्माद्यज्ञात सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दाꣳसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत॥
वस्त्रार्थे उपवस्त्रं समर्पयामि

यज्ञोपवीत— ॐ तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः ।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः ॥ य.समर्पयामि

मधुपर्क— दधि मध्वाज्यसंयुक्तं पात्रयुग्म-समन्वितम् ।
मधुपर्कं गृहाण त्वं वरदो भव शोभन ॥ मधुपर्क समर्पयामि

गन्ध— ॐ तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः ।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥ गन्धं समर्पयामि।

अक्षत— (श्वेततिल चढ़ायें किन्तु चावल नहीं) ॐ अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया अधूषत। अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती यो जान्विन्द्र ते हरी॥ अक्षतान् समर्पयामि

पुष्प — ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् ।
समूढमस्य पाꣳसुरे स्वाहा ॥ पुष्पं समर्पयामि।

पुष्पमाला— ॐ ओषधीः प्रतिमोदध्वं पुष्पवतीः प्रसूवरीः ।
अश्वा इव सजित्वरीर्वीरुधः पारयिष्णवः ॥ पु. स.

तुलसीपत्र— ॐ यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुखङ्किमस्यासीत् किम्बाहू किमूरू पादा उच्येते ॥ तु.स.

तुलसीं हेमरूपां च रत्नरूपाञ्च मञ्जरीम् ।
भवमोक्षप्रदां तुभ्यमर्पयामि हरिप्रियाम् ॥ तु.स.

ॐ विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे ।
इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ तु.समर्पयामि

विल्वपत्र— तुलसीविल्वनिम्बैश्च जंबीरैरामलैः शुभैः ।
पञ्चविल्वमिति ख्यातं प्रसीद परमेश्वर ! ॥ वि.स.

दूर्वा — विष्ण्वादिसर्वदेवानां दूर्वे त्वं ! प्रीतिदा सदा ।
क्षीरसागरसंभूते ! वंशवृद्धिकरी भव ॥ दू.स.

शमीपत्र— शमी शमयते पापं शमी शत्रुविनाशिनी ।
धारिण्यर्जुनबाणानां रामस्य प्रियवादिनी ॥ श.स.

आभूषण— ॐ रत्नकङ्कणवैदूर्यमुक्ताहारादिकानि च ।
सुप्रसन्नेन मनसा दत्तानि स्वीकुरुष्व भोः ॥ आ.स.

अबीरगुलाल — नानापरिमलैर्द्रव्यैर्निर्मितं चूर्णमुत्तमम् ।
अबीरनामकं चूर्णगन्धं चारु प्रगृह्यताम् ॥ अ.स.

सु. तै. — ॐ तैलानि च सुगन्धीनि द्रव्याणि विविधानि च ।
मया दत्तानि लेपार्थं गृहाण परमेश्वर ॥ सु.तैलं स.

धूप — ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः ।
उरू तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्याꣳ शूद्रो अजायत ॥

धूप — ॐ धूरसि धूर्व धूर्वन्तं धूर्व तं योऽस्मान् धूर्वति तं धूर्व यं वयं धूर्वामः ।
देवानामसि वह्नितमꣳ सस्नितमं पप्रितमं जुष्टतमन्देवहूतमम् ।।
धूपमाघ्रापयामि ।

दीप — ॐ चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत ।
श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ।। दीपं दर्शयामि ।

नैवेद्य (तुलसी छोड़कर पाँच ग्रास-मुद्रा दिखायें)

'प्राणाय स्वाहा'— कनिष्ठा, अनामिका और अँगूठा मिलायें ।।१ ।।

'अपानाय स्वाहा'— अनामिका, मध्यमा और अँगूठा मिलायें ।।२ ।।

'व्यानाय स्वाहा'— मध्यमा, तर्जनी और अँगूठा मिलायें ।।३ ।।

'उदानाय स्वाहा'— तर्जनी, मध्यमा, अनामिका और अँगूठा मिलायें ।।४ ।।

'समानाय स्वाहा'— सब अँगूलियाँ तथा अँगूठा मिलायें ।।५ ।।

ॐ नाभ्या आसीदन्तरिक्ष ꣳ शीर्ष्णो द्यौः समवर्त्तत । पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ २ अकल्पयन् ।। यत् पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत । वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ।। सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः । देवा यद्यज्ञन्तन्वाना अबध्नन् पुरुषम्पशुम् ।। यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् । ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्तिदेवाः ।। अद्भ्यः सम्भृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मणः समवर्तताग्रे । तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति तन्मर्त्यस्य देवत्वमाजानमग्रे ।। वेदाहमेतं पुरुषंमहान्तमादित्यवर्णन्तमशः परस्तात् । तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ।। प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते । तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरास्तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा ।। यो देवेभ्य आतपति यो देवानां पुरोहितः । पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये ।। रुचम्ब्राह्मञ्जनयन्तो देवा अग्रे तदब्रुवन् । यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात्तस्य देवा असन् वशे ।। श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम् । इष्णन्निषाणामुं म इषाण सर्वलोकं म इषाण ।। नैवेद्यं निवेदयामि ।

मध्ये पानीयं— एलोशीरलवङ्गादि कर्पूरपरिवासितम् ।
प्राशनार्थं कृतं तोयं गृहाण परमेश्वर ! ।।म.पा.समर्पयामि।

ऋतुफल-पनस— बीजपूराम्र-खर्जूरी-कदली-फलम् ।
नारिकेलफलं दिव्यं गृहाण परमेश्वर ! ।। ऋतु फलं समर्पयामि ।

आचमन— कर्पूरवासितं तोयं मन्दाकिन्याः समाहृतम् ।
आचम्यतां जगन्नाथ ! मया दत्तं हि भक्तितः ।। आ.स.

अखण्ड ऋतुफल— फलेन फलितं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।
तस्मात् फलप्रदानेन पूर्णाः सन्तु मनोरथाः ।। अ.स.

ताम्बूल-पूगीफल— ॐ यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।
वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ।। तां.स.

दक्षिणा— पूजाफलसमृद्ध्यर्थं दक्षिणा च तवाग्रतः ।
स्थापिता तेन मे प्रीतः पूर्णान् कुरु मनोरथान् ।। दक्षिणा स.

आरती

प्रथम चरणोंकी चार, नांभीकी दो, मुखकी एक या तीन बार और समस्त अङ्गोंकी सात बार आरती करें । पश्चात् शंख का जल भक्तोंपर छिड़कें ।

कदलीगर्भसम्भूतं कर्पूरस्तु प्रदीपितम् ।
आरार्तिकमहं कुर्वे पश्य मां वरदो भव ।।

श्रीसत्यनारायणजीकी आरती

जय लक्ष्मीरमणा श्रीलक्ष्मीरमणा ।
सत्यनारायण स्वामी जनपातकहरणा ।।जय ।। टेर ।।

रत्न जड़ित सिंहासन अद्भुत छवि राजे ।
नारद करत निराजन घण्टाध्वनि बाजे ॥जय॰ ॥

प्रगट भये कलिकारण द्विजको दरश दियो ।
बूढ़ो ब्राह्मण बनके कञ्चनमहल कियो ॥जय॰ ॥

दुर्बल भील कठारो जिनपर कृपा करी ।
चन्द्रचूड़ एक राजा जिनकी विपति हरी ॥जय॰ ॥

वैश्य मनोरथ पायो श्रद्धा तज दीनी ।
सो फल भोग्यो प्रभुजी फिर स्तुति कीनी ॥जय॰ ॥

भावभक्ति के कारण छिन-छिन रूप धर्‍यो ।
श्रद्धा धारण कीनी तिनको काज सर्‍यो ॥जय॰ ॥

ग्वालबाल संग राजा बनमें भक्ति करी ।
मनवांछित फल दीन्यो दीनदयाल हरी ॥जय॰ ॥

चढ़त प्रसाद सवायो कदलीफल मेवा ।
धूप दीप तुलसीसे राजी सतदेवा ॥जय॰ ॥

श्रीसत्यनारायणजीकी आरती जो गावे ।
भणत शिवानन्द स्वामी सुख सम्पति पावे ॥जय॰ ॥

विष्णु-स्तुति

शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं
विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभाङ्गम् ।
लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानगम्यं
वन्दे विष्णुं भवभयहरं सर्वलोकैकनाथम् ॥१॥

आदौ रामतपोवनादिगमनं हत्वा मृगं काञ्चनम् ।
वैदेहीहरणं जटायुमरणं सुग्रीवसम्भाषणम् ।
बालीनिग्रहणं समुद्रतरणं लङ्कापुरीदाहनम् ।
पश्चाद्रावणकुम्भकर्णहननं चैतद्धि रामायणम् ॥२॥

आदौ देवकिदेवगर्भजननं गोपीगृहे वर्द्धनम् ।
मायापूतनजीवितापहरणं गोवर्द्धनोद्धारणम् ।
कंसच्छेदनकौरवादिहननं कुन्तीसुतापालनम् ।
एतद्भागवतं पुराणकथितं श्रीकृष्णलीलामृतम् ॥३॥

कस्तूरीतिलकं ललाटपटले वक्षःस्थले कौस्तुभम् ।
नासाग्रे वरमौक्तिकं करतले वेणुं करे कंकणम् ।
सर्वाङ्गे हरिचन्दनं सुललितं कण्ठे च मुक्तावली ।
गोपस्त्रीपरिवेष्टितो विजयते गोपालचूड़ामणिः ॥४॥

फुल्लेन्दीवरकान्तिमिन्दुवदनं वर्हावतंसप्रियम् ।
श्रीवत्साङ्कमुदारकौस्तुभधरं पीताम्बरं सुन्दरम् ।
गोपीनां नयनोत्पलार्चिततनुं गोगोपसङ्घावृतम् ।
गोविन्दं कलवेणुवादनपरं दिव्याङ्गभूषं भजे ॥५॥

यं ब्रह्मावरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवै- ।
र्वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः ।
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो ।
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणाः देवाय तस्मै नमः ॥६॥

आदौ पाण्डवधार्तराष्ट्रजननं लाक्षागृहे दाहनम् ।
द्यूतस्त्रीहरणं वने विचरणं मत्स्यालयावेक्षणम् ।

लीला गोहरणं रणे विचरणं सन्ध्याक्रियावर्धनम् ।
पश्चाद्भीष्मसुयोधनादिहननं चैतन्महाभारतम् ॥७॥

श्रियः पतिर्यज्ञपतिः प्रजापतिर्धियांपतिर्लोकपतिर्धरापतिः । पतिर्गतिश्चान्धकवृष्णिसात्वतां प्रसीदतां मे भगवान् सतां पतिः ॥८॥ मत्स्याश्वकच्छपनृसिंहवराहहंस राजन्यविप्रविबुधेषु कृतावतारः । त्वं पाहि नस्त्रिभुवनञ्च यथाधुनेश ! भारं भुवो हर यदूत्तम ! वन्दनं ते ॥९॥ सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं सत्यस्य योनिं निहितञ्च सत्ये । सत्यस्य सत्यामृतसत्यनेत्रं सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः ॥१०॥ नमोऽस्त्वनन्ताय सहस्त्रमूर्तये, सहस्त्रपादाक्षि शिरोरुबाहवे । सहस्त्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते, सहस्त्रकोटियुगधारिणे नमः ॥११॥ नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च । जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः ॥१२॥ आकाशात्पतितं तोयं यथा गच्छति सागरम् । सर्वदेव नमस्कारः केशवं प्रतिगच्छति ॥१३॥ मूकं करोति वाचालं पंगु लङ्घयते गिरिम् । यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम् ॥१४॥ त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव । त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देव देव ॥१५॥ पापोऽहं पापकर्माहं पापात्मा पापसम्भवः । त्राहि मां पुण्डरीकाक्ष ! सर्व पापहरो भव ॥१६॥ कृष्णाय वासुदेवाय देवकीनन्दनाय च । नन्दगोपकुमाराय गोविन्दाय नमोनमः ॥१७॥ ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्टदोहं, तीर्थास्पदं शिवविरञ्चिनुतं शरण्यम् । भृत्यार्तिहं प्रणतपालभवाब्धिपोतं, वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥१८॥ त्यक्त्वा सुदुस्त्यजसुरेप्सितराज्यलक्ष्मीं, धर्मिष्ठ आर्यवचसा यदगादरण्यम् । मायामृगं दयितयेत्सितमन्वधावन्, वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥१९॥ अपराधसहस्त्रभाजनं पतितं भीमभवार्णवोदरे । अगतिं शरणागतं हरे ! कृपया केवलमात्मसात् कुरु ॥२०॥ एकोऽपि कृष्णस्य कृतः प्रणामो, दसाश्वमेधावभृथेन तुल्यः । दशाश्वमेधी पुनरेति जन्म कृष्णप्रणामी न पुनर्भवाय ॥२१॥

पुष्पाञ्जलि

ॐ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्न । ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥ ॐ राजाधिराजाय प्रसह्य साहिने । नमो

वयं वैश्रवणाय कुर्महे स मे कामान् कामकामाय मह्यम्। कामेश्वरो वैश्रवणो ददातु। कुबेराय वैश्रवणाय महाराजाय नमः॥ ॐ स्वस्ति साम्राज्यं भोज्यं स्वाराज्यं वैराज्यं पारमेष्ठ्यं राज्यं महाराज्यमाधिपत्यमयं समन्तपर्यायी स्यात् सार्वभौमः सार्वायुष आन्तादापरार्धात् पृथिव्यै समुद्रपर्यन्ताया एकराडिति। तदप्येष श्लोकोऽभिगीतो मरुतः परिवेष्टारो मरुत्तस्यावसन् गृहे आवि क्षितस्य कामप्रेर्विश्वेदेवाः सभासदः॥ पुष्पाञ्जलिं समर्पयामि॥ ॐ विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात्। संबाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देव एकः। कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा बुद्ध्यात्मना वानुसृतस्वभावात्। करोमि यद्यत् सकलं परस्मै नारायणायेति समर्पये तत्॥

प्रदक्षिणा

ये तीर्थानि प्रचरन्ति सृकाहस्तानिषङ्गिणः ।
तेषांᳪ सहस्रयोजनेऽव धन्वानि तन्मसि ॥

क्षमा-प्रार्थना

मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं जनार्दन ।
यत्पूजितं मया देव ! परिपूर्णं तदस्तु मे ॥
यदक्षरपदभ्रष्टं मात्राहीनं च यद् भवेत् ।
तत्सर्वं क्षम्यतां देव ! प्रसीद परमेश्वर ! ॥

विसर्जन

यजमानहितार्थाय पुनरागमनाय च ।
गच्छन्तु च सुरश्रेष्ठाः ! स्वस्थानं परमेश्वर ! ॥

यजमान को आशीर्वाद का मन्त्र (अक्षत दें)।

अक्षतान् विप्रहस्तात्तु नित्यं गृह्णन्ति ये नराः।
चत्वारि तेषां वर्धन्ते आयुर्विद्यायशोबलम् ॥

मन्त्रार्थाः सफलाः सन्तु पूर्णाः सन्तु मनोरथाः ।
शत्रूणां बुद्धिनाशोऽस्तु मित्राणामुदयस्तव ॥
श्रीर्वर्चस्वमायुष्यमारोग्यमाविधात् पवमानं महीयते ।
धनं धान्यं पशुं बहुपुत्रलाभं शतसम्वत्सरं दीर्घमायुः ॥

चरणामृत-ग्रहण-विधि

बायें हाथपर दोहरा वस्त्र रखकर दाहिना हाथ रखें, पश्चात् चरणामृत लेकर पान करें । जमीन पर न गिरने दें ।

तुलसी-ग्रहण-मन्त्र

पूजनानन्तरं विष्णोरर्पितं तुलसीदलम् ।
भक्षये देहशुद्ध्यर्थं चान्द्रायणशताधिकम् ॥

चरणामृत-ग्रहण-मन्त्र

कृष्ण ! कृष्ण ! महाबाहो ! भक्तानामार्तिनाशनम् ।
सर्वपापप्रशमनं पादोदकं प्रयच्छ मे ॥

पश्चात् नीचे लिखा मन्त्र बोलते हुए चरणामृत पान करें ।

अकालमृत्युहरणं सर्वव्याधिविनाशनम् ।
विष्णुपादोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते ॥

पञ्चामृत-ग्रहण-मन्त्र

दुःखदौर्भाग्यनाशाय सर्वपापक्षयाय च ।
विष्णोः पञ्चामृतं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते ॥

नैवेद्य-ग्रहण-मन्त्र

नैवेद्यमन्नं तुलसीविमिश्रितं विशेषतः पादजलेन विष्णोः ।
योऽश्नाति नित्यं पुरतो मुरारेः प्राप्नोति यज्ञायुतकोटिपुण्यम् ॥

शिव-पूजन

पवित्र होकर आचमन-प्राणायाम करके संकल्प वाक्यके अन्तमें "श्रीसाम्ब-सदाशिवप्रीत्यर्थं गणपत्यादि सकलदेवता-पूजन-पूर्वकं श्रीभवानीशङ्करपूजनं करिष्ये" कहकर संकल्प करें। नीचे लिखे आवाहन मन्त्रों से मूर्तियोंके समीप पुष्प छोड़ें। मूर्ति न हो तो आवाहन करके पूजन करें।

गणपति-पूजन— आवाहयामि पूजार्थं रक्षार्थं च मम क्रतोः ।
इहागत्य गृहाण त्वं पूजां यागं च रक्ष मे ॥

पूजन करके निचे लिखी प्रार्थना करें।

प्रार्थना — लम्बोदर ! नमस्तुभ्यं सततं मोदकप्रिय ! ।
निर्विघ्नं कुरु मे देव सर्वकार्येषु सर्वदा ॥

पार्वती-पूजन— हिमाद्रितनयां देवीं वरदां शङ्करप्रियाम् ।
लम्बोदरस्य जननीं गौरीमावाहयाम्यहम् ॥

पूजन करके नीचे लिखी प्रार्थना करें।

ॐ अम्बे अम्बिकेऽम्बालिके न मा नयति कश्चन ।
ससस्त्यश्वकः सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम् ॥

नन्दीश्वर-पूजन

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन्मातरं पुरः ।
पितरञ्च प्रयन्त्स्वः ॥

पूजन करके नीचे लिखी प्रार्थना करें।

प्रैतु वाजी कनिक्रदन्नानदद्रासभः पत्वा ।
भरन्नग्निपुरीष्यं मा पाद्यायुषः पुरा ॥

वीरभद्र-पूजन

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाᳪं सस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ॥

पूजन करके नीचे लिखी प्रार्थना करें ।

भद्रो ने अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः ।
भद्रा उत प्रशस्तयः ॥

स्वामीकार्तिक-पूजन

यदक्रन्दः प्रथमं जायमान उद्यन्त्समुद्रादुत वा पुरीषात् ।
श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू उपस्तुत्यं महि जातं ते अर्वन् ॥

पूजन करके नीचे लिखी प्रार्थना करें ।

यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिषा इव ।
तन्न इन्द्रो बृहस्पतिरदितिः शर्म यच्छतु विश्वाहा शर्म यच्छतु ॥

कुबेर-पूजन

कुविदङ्ग यवमन्तो यवं चिद्यथा दान्त्यनुपूर्वं वियूय ।
इहेहैषां कुणुहि भोजनानि ये बर्हिषो नम उक्तिं यजन्ति ॥

पूजन करके नीचे लिखी प्रार्थना करें ।

वयꣳ सोमव्रते तव मनस्तनूषु बिभ्रतः प्रजावन्तः सचेमहि ॥

कीर्तिमुख-पूजन

असवे स्वाहा वशवे स्वाहा विभुवे स्वाहा विवस्वते स्वाहा गणश्रिये स्वाहा गणपतये स्वाहाऽभिभुवे स्वाहाऽधिपतये स्वाहा शूषाय स्वाहा सꣳसर्पाय स्वाहा चन्द्राय स्वाहा ज्योतिषे स्वाहा मलिम्लुचाय स्वाहा दिवापतये स्वाहा ॥

पूजन करके नीचे लिखी प्रार्थना करें ।

ओजश्च मे सहश्च मे आत्मा च मे तनूश्च मे शर्म च मे वर्म च मेऽङ्गानि च मेऽस्थीनि च मे परूꣳषि च मे शरीराणि च मे आयुश्च मे जरा च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ।

जलहरी में सर्प का आकार हो तो सर्प का पूजनकर पश्चात् शिव-पूजन करें ।

पाद्य — ॐ नमोस्तु नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुषे ।
अथो ये अस्य सत्वानोऽहन्तेभ्योऽकरं नमः ॥ पा.स.

अर्घ्य — ॐ गायत्री त्रिष्टुब्जगत्यनुष्टुप्पङ्क्त्या सह ।
बृहत्युष्णिहा ककुप्सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ अ.स.

आचमन— ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिम्पुष्टिवर्द्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात् ॥ आ.स.

स्नान — ॐ वरुणस्योत्तम्भनमसि वरुणस्य स्कम्भसर्ज्जनी स्थो वरुणस्य ऋतसदन्यसि वरुणस्य ऋतसदनमसि वरुणस्य ऋतसदनमासीद ॥

स्नानं समर्पयामि ।

दुग्धस्नान—गोक्षीरधामन् देवेश ! गोक्षीरेण मया कृतम् ।
स्नपनं देवदेवेश ! गृहाण शिवशङ्कर ॥

दु.स्ना.स.। पुनर्जलस्नानं समर्पयामि ।

दधिस्नान— दध्ना चैव मया देव ! स्नपनं क्रियते तव ।
गृहाण भक्त्या दत्तं मे सुप्रसन्नो भवाव्यय ! ॥ द.स.,पु.स.

घृतस्नान— सर्पिषा देवदेवेश ! स्नपनं क्रियते मया ।
उमाकान्त ! गृहाणेदं श्रद्धया सुरसत्तम ! ॥ घृ.स.,पु.स.

मधुस्नान— इदं मधु मया दत्तं तव तुष्ट्यर्थमेव च ।
गृहाण शम्भो ! त्वं भक्त्या मम शान्तिप्रदो भव ॥ म.स.,पु.स.

शर्करास्नान—सितया देवदेवेश ! स्नपनं क्रियते मया ।
गृहाण शम्भो ! मे भक्त्या मम शान्तिप्रदो भव ॥ श.स.,पु.स.

पञ्चामृतस्नान—पञ्चामृतं मयानीतं पयोदधिसमन्वितम् ।
घृतं मधु शर्करया स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥ पं.स.

शुद्धोदकस्नान— ॐ शुद्धवालः सर्वशुद्धवालो मणिवालस्त। अश्विनाः श्येतः श्येताक्षोरुणस्ते रुद्राय पशुपतये कर्णा। यामा अवलिप्ता रौद्रा नभोरूपाः पार्जन्याः ॥ शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि।

अभिषेक (जलधारा छोड़ें)

ॐ नमस्ते रुद्र मन्यव उतो त इषवे नमः। बाहुभ्यामुत ते नमः ॥१ ॥ या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी। तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभि चाकशीहि ॥२ ॥ यामिषुङ्गिरिशन्त हस्ते विभर्ष्यस्तवे। शिवां गिरित्र तां कुरु मा हिꣳसीः पुरुषञ्जगत् ॥३ ॥ शिवेन वचसा त्वा गिरिशाच्छा व्वदामसि। यथा नः सर्वमिज्जगदयक्ष्मꣳ सुमना असत् ॥४ ॥ अध्यवोचदधिवक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक्। अहींश्च सर्वाञ्जम्भयन् सर्वाश्च यातुधान्योऽधराचीः परासुव ॥५ ॥ असौ यस्ताम्रो अरुण उत बभ्रुः सुमङ्गलः। ये चैनꣳ रुद्रा अभितो दिक्षु श्रिताः सहस्रशोऽवैषाꣳ हेड ईमहे ॥६ ॥ असौ योऽवसर्पति नीलग्रीवो विलोहितः। उतैनङ्गोपा अदृश्रन्नदृश्रन्नुदहार्यः स दृष्टो मृडयाति नः ॥७ ॥ नमोस्तु नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुषे। अथो ये अस्य सत्वानोऽहं तेभ्योऽकरन्नमः ॥८ ॥ प्रमुञ्च धन्वनस्त्वमुभयो रार्त्न्योर्ज्याम्। याश्च ते हस्त इषवः पराता भगवो वप ॥९ ॥ विज्यन्धनुः कपर्दिनो विशल्यो बाणवां २ उत। अनेशन्नस्य या इषव आभुरस्य निषङ्गधिः ॥१० ॥ या ते हेतिर्मीढुष्टम हस्ते बभूव ते धनुः। तयास्मान्विश्वतस्त्वमयक्ष्मया परिभुज ॥११ ॥ परि ते धन्वनो हेतिरस्मान् वृणक्तु विश्वतः। अथो य इषुधिस्तवारे अस्मिन्नि धेहि तम् ॥१२ ॥ अवतत्य धनुष्ट्वꣳ सहस्राक्ष शतेषुधे। निशीर्य शल्यानाम्मुखा शिवो नः सुमना भव ॥१३ ॥ नमस्त आयुधायानातताय धृष्णवे। उभाभ्यामुत ते नमो बाहुभ्यान्तव धन्वने ॥१४ ॥ मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकम्मा न उक्षन्तमुत मा नः उक्षितम्। मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः ॥१५ ॥ मा नस्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः। मा नो व्वीरान्रुद्र भामिनो व्वधीर्हविषमंतः सदमित्त्वा हवामहे ॥१६ ॥ अभिषेकं समर्पयामि।

विजया — ॐ विज्यं धनुः कपर्दिनो विशल्यो बाणवाँ २ उत ।
अनेशन्नस्य या इषव आभुरस्य निषङ्गधिः ॥ वि.स.

वस्त्र-उपवस्त्र— ॐ प्रमुञ्च धन्वनस्त्वमुभयोरार्त्न्योर्ज्याम् ।
यश्च ते हस्त इषवः परा ता भगवो वप ॥वस्त्रं उपवस्त्रं स.

यज्ञोपवीत—ॐ ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्विसीमतः सुरुचो
वेन आवः। स बुध्न्या उपमा अस्य विष्ठाः
सतश्च योनिमंसतश्च विवः ॥ य.स., आचमनं समर्पयामि।

गन्ध — ॐ नमः श्वभ्यः श्वपतिभ्यश्च वो नमो नमो भवाय च रुद्राय च नमः शर्वाय च पशुपतये च नमो नीलग्रीवाय च शितिकण्ठाय च ॥
गन्धं समर्पयामि।

अक्षत — ॐ नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च। अ.स.

पुष्प — ॐ नमः पार्याय चावार्याय च नमः प्रतरणाय चोत्तरणाय च नमस्तीर्थ्याय च कुल्याय च नमः शष्प्याय च फेन्याय च ॥ पुष्पं समर्पयामि।

पुष्पमाला— नानापङ्कजपुष्पैश्च ग्रथितां पल्लवैरपि ।
विल्वपत्रयुतां मालां गृहाण सुमनोहराम् ॥ मा.स.

विल्वपत्र—ॐ नमो विल्मिने च कवचिने च नमो वर्मिणे च वरूथिने च नमः श्रुताय च श्रुतसेनाय च नमो दुन्दुभ्याय चाहनन्याय च ॥१ ॥ काशीवास निवासो च कालभैरवपूजनम्। प्रयागे माघमासे च विल्वपत्रं शिवार्पणम् ॥२ ॥ दर्शनं विल्वपत्रस्य स्पर्शनं पापनाशनम्। अघोरपापसंहारं विल्वपत्रं शिवार्पणम् ॥३ ॥ त्रिदलं त्रिगुणाकारं त्रिनेत्रं च त्रिधायुधम्। त्रिजन्मपापसंहारं विल्वपत्रं शिवार्पणम् ॥४ ॥ अखण्डैर्विल्वपत्रैश्च पूजये शिवशङ्करम्। कोटिकन्यामहादानं विल्वपत्रं शिवार्पणम् ॥५ ॥ गृहाण विल्वपत्राणि सपुष्पाणि महेश्वर। सुगन्धीनि भवानीश शिवत्वं कुसुमप्रिय ॥ विल्वपत्राणि समर्पयामि।

तुलसी मंजरी—ॐ शिवो भव प्रजाभ्यो मानुषीभ्यस्त्वमङ्गिरः ।
मा द्यावापृथिवी अभि शोचीर्मान्तरिक्षं मा वनस्पतीन् ॥
तुलसी-पत्राणि समर्पयामि ।

दूर्वा— ॐ काण्डात् काण्डात्प्ररोहन्ती परुषः परुषस्परि ।
एवा नो दूर्वे प्रतनु सहस्रेण शतेन च ॥दूर्वा समर्पयामि ।

शमीपत्र —ॐ अमङ्गलानां शमनीं शमनीं दुष्कृतस्य च ।
दुःस्वप्ननाशिनीं धन्यां प्रपद्येऽहं शमीं शुभाम् ॥ श.समर्पयामि ।

आभूषण— व्रज-माणिक-वैदूर्य-मुक्ता-विद्रुममण्डितम् ।
पुष्पराग-समायुक्तं भूषणं प्रतिगृह्यताम् ॥ आ.स.

सुगन्ध तैल—(अतर)—अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुँ ज्याया- हेतिं परिबाधमानः ।
हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान्पुमान् पुमाᳪं सं परिपातु विश्वतः ॥
सु.तैल स.

धूप — ॐ नमः कपर्दिने च व्युप्तकेशाय च नमः सहस्राक्षाय च शतधन्वने च नमो
गिरिशयाय च शिपिविष्टाय च नमो मिढुष्टमाय चेषुधिमते च ॥
धूपमाघ्रापयामि ।

दीप — ॐ नमः आशवे चाजिराय च नमः शीघ्र्याय च शीभ्याय च नमः ऊर्म्याय
चावस्वन्याय च नमो नादेयाय च द्वीप्याय च ॥
दीपं दर्शयामि । हस्तप्रक्षालनम्

नैवेद्य — नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च नमः पूर्वजाय चापरजाय च नमो मध्यमाय
चापगल्भाय च नमो जघन्याय च बुध्न्याय च ॥ नैवेद्यं निवेदयामि

मध्ये पानीयं—ॐ नमः सोभ्याय च प्रतिसर्याय च नमो याम्याय च क्षेम्याय च नमः
श्लोक्याय चावसान्याय च नम ऊर्वर्याय च खल्याय च ॥
मध्ये पानीयं समर्पयामि ।

ऋतुफल— फलानि यानि रम्याणि स्थापितानि तवाग्रतः ।
तेन मे सफलावाप्तिर्भवेज्जन्मनि जन्मनि ॥ ऋ.स.

अखण्ड फल— कूष्माण्डं मातुलुङ्गञ्च नारिकेलफलानि च ।
रम्याणि पार्वतीकान्त सोमेश प्रतिगृह्यताम् ॥ अ.ऋ.स.

ताम्बूल पूगीफल—ॐ इमा रुद्राय़ तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्रभरामहे मती: ।
यथा समसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम् ॥
तां.पू.फ.समर्पयामि ।

दक्षिणा— न्यूनातिरिक्तपूजायां सम्पूर्णफलहेतवे ।
दक्षिणां काञ्चनीं देव स्थापयामि तवाग्रत: ॥ द.द्रव्यं.स.

आरती

कर्पूरगौरं करुणावतारं संसारसारं भुजगेन्द्रहारम् ।
सदा वसन्तं हृदयारविन्दे भवं भवानीसहितं नमामि ॥

शिवजी की आरती

जै शिव ओंकारा, हो शिव-पार्वती प्यारा,
हो शिव ऊपर जलधारा ।
ब्रह्मा विष्णु सदाशिव अर्द्धङ्गी धारा ॥१ ॥
ॐ हर हर हर महादेव ॥टेक ॥
एकानन चतुरानन पञ्चानन राजै ।
हंसासन गरुड़ासन वृषवाहन साजै ॥२ ॥ ॐहर. ॥
दोय भुज चार चतुर्भुज दशभुज ते सोहै ।
तीनों रूप निरखता त्रिभुवनजन मोहै ॥३ ॥ ॐ हर. ॥
अक्षमाला वनमाला रुण्डमालाधारी ।
चन्दन मृगमद चन्दा भाले शुभकारी ॥४ ॥ ॐ हर. ॥
श्वेताम्बर पीताम्बर बाघाम्बर अंगे ।
सनकादिक प्रभुतादिक भूतादिक संगे ॥५ ॥ ॐ हर. ॥

करमध्ये कमण्डलु चक्र त्रिशूल धरता ।
जगकर्त्ता जगहर्त्ता जगपालनकर्त्ता ॥६ ॥ ॐ हर. ॥
ब्रह्मा विष्णु सदाशिव जानत अविवेका ।
प्रणव अक्षर ॐ मध्ये ये तीनों एका ॥७ ॥ ॐ हर. ॥
त्रिगुण स्वामी की आरती जो कोई नर गावै ।
भणत शिवानन्द स्वामी वांछित फल पावै ॥८ । ॐ हर. ॥
जै शिव ओंकारा, हो मन भज शिव ओंकारा,
हो मन रट शिव ओंकारा, हो शिव गल रुण्डनमाला,
हो शिव ओढ़त मृगछाला, हो शिव पीते भंगप्याला,
हो शिव रहते मतवाला, हो शिव पार्वती प्यारा,
हो शिव ऊपर जलधारा ॥ ब्रह्माविष्णु सदाशिव अर्द्धङ्गी धारा ॥९ ॥
ॐ हर हर हर महादेव ॥

शिव-स्तुति (पुष्पांजलि)

असितगिरिसमं स्यात्कज्जलं सिन्धुपात्रे ।
सुरतरुवरशाखा लेखनीपत्रमूर्वी ॥
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं ।
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति ॥१ ॥
वन्दे देवमुमापतिं सुरगुरुं वन्दे जगत् कारणं ।
वन्दे पन्नगभूषणं मृगधरं वन्दे पशूनां पतिम् ।
वन्दे सूर्य-शशांक-वह्निनयनं वन्दे मुकुन्दप्रियम् ।
वन्दे भक्तजनाश्रयञ्च वरदं वन्दे शिवं शङ्करम् ॥२ ॥
शान्तं पद्मासनस्थं शशधरमुकुटं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रं ।
शूलं वज्रं च खड्गं परशुमभयदं दक्षिणाङ्गे वहन्तम् ।

नागंपाशं च घण्टां डमरुकसहितं साङ्कुशं वामभागे ।
नानालङ्कारयुक्तं स्फटिकमणिनिभं पार्वतीशं नमामि ॥३॥
श्मशानेष्वाक्रीड़ा स्मरहर पिशाचाः सहचरा-
श्चिताभस्मालेपः स्त्रगपि नृकरोटीपरिकरः ।
अमङ्गल्यं शीलं तव भवतु नामैवमखिलं
तथापि स्मर्तृणां वरद परमं मंगलमसि ॥४॥
त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देवदेव ॥५॥
पापोऽहं पापकर्माहं पापात्मा पापसम्भवः ।
त्राहि मां पार्वतीनाथ सर्वपापहरो भव ॥

"कालहर कण्टकहर दुःखहर दारिद्र्यहर ।"

आगे लिखे मन्त्रों से गाल बजाते हुए वं-वं बोलकर जलहरी का जल नेत्रों पर लगायें ।

निरावलम्बस्य ममावलम्बं विपाटिताशेषविपत्कदम्बम् ।
मदीयपापाचलपातशम्बं प्रवर्ततां वाचि सदैव बम्-बम् ।

पञ्चाङ्ग-प्रणाम, मन में स्मरण, नेत्रों से दर्शन, वाणी से नामोच्चारण करते हुए, दोनो हाथ जोड़कर मस्तक झुकाकर प्रणाम करें ।

प्रदक्षिणा (अर्ध प्रदक्षिणा करें)

यानि कानि च पापानि ज्ञाताज्ञातकृतानि च ।
तानि सर्वाणि नश्यन्ति प्रदक्षिण पदे-पदे ॥

क्षमा-प्रार्थना—प्रपन्नं पाहि मामीश भीतं मृत्युग्रहार्णवात् ।
आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम् ।
पूजां चैव न जानामि क्षमस्व परमेश्वर ॥

शिवे भक्तिः शिवे भक्तिः शिवे भक्ति र्भवे भवे ।
अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं मम ।
तस्मात् कारुण्य-भावेन रक्ष मां परमेश्वर ! ॥
"अनेन पूजनेन श्रीसाम्बसदाशिवः प्रीयताम्"

पार्थिव-शिव-पूजन

पवित्र होकर संकल्पवाक्य के अन्त में "पार्थिवलिङ्गपूजनं करिष्ये" कहकर सङ्कल्प का जल छोड़ें ।

भूमि-प्रार्थना

ॐ सर्वाधारे धरे देवी त्वद्रूपां मृत्तिकामिमाम् ।
ग्रहिष्यामि प्रसन्ना त्वं लिङ्गार्थं भव सुप्रभे ॥
"ॐ ह्रां पृथिव्यै नमः ।"
उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना ।
मृत्तिके त्वां च गृहणामि प्रजया च धनेन च ॥

"ॐ हराय नमः" यह कहकर मृत्तिका ग्रहण करें ॥ "ॐ बं अमृताय नमः" इससे जल को अभिमन्त्रित करे । "ॐ महेश्वराय नमः" से मूर्ति बनायें । "ॐ शूलपाणये नमः" से मूर्ति-स्थापना करें ।

ॐ अस्य श्रीशिवपञ्चाक्षरमन्त्रस्य वामदेव ऋषिनुष्टुप् छन्दः श्रीसदाशिवो देवता ॐ बीजं, नमः शक्तिः, शिवाय कीलकं मम साम्बसदाशिवप्रीत्यर्थं न्यासे पूजने जपे च विनियोगः ।

अङ्गन्यासः—ॐ वामदेवाय ऋषये नमः शिरसि । ॐअनुष्टुप्छन्दसे नमः मुखे । ॐ सदाशिवदेवतायै नमः हृदि । ॐ बीजाय नमो गुह्ये । ॐ शक्तये नमः पादयोः । ॐ शिवाय कीलकाय नमः सर्वाङ्गे । ॐ नं तत्पुरुषाय नमो हृदये । ॐ मं अघोराय नमः पादयोः । ॐ शिं सद्योजाताय नमो गुह्ये । ॐ वां वामदेवाय नमो मूर्ध्नि । ॐ यं ईशानाय नमो मुखे । ॐ अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । ॐ नं तर्जनीभ्यां

स्वाहा। ॐ मं मध्यमाभ्यां वषट्। ॐ शिं अनामिकाभ्यां हुं। ॐ वां कनिष्ठाभ्यां वौषट्। ॐ यं करतलकरपृष्ठाभ्यां फट्। ॐ हृदयाय नमः। ॐ नं शिरसे स्वाहा। ॐ मं शिखायै वषट्। ॐ शिं कवचाय हुं। ॐ वां नेत्रत्रायाय वौषट्। ॐ यं अस्त्राय फट्।

विनियोगः—ॐ अस्य श्रीप्राणप्रतिष्ठामन्त्रस्य ब्रह्म-विष्णु-महेश्वरा ऋषयः ऋग्यजुःसामानिच्छन्दांसि क्रियामयवपुः प्राणाख्या देवता आं बीजं, ह्रीं शक्तिः, क्रौं कीलकं देवप्राणप्रतिष्ठापने विनियोगः॥

प्रतिष्ठाः—ॐ ब्रह्माविष्णु-रुद्रऋषिभ्यो नमः शिरसि। ऋग्यजुः सामच्छन्देभ्यो नमो मुखे। प्राणाख्यदेवतायै नमः हृदि। आं बीजाय नमो गुह्ये। ह्रीं शक्तये नमः पादयोः। क्रौं कीलकाय नमः सर्वाङ्गे। इति अङ्गन्यासं कृत्वा।

ॐ आं ह्रीं क्रौं यं रं लं वं शं षं सं हं सः सोऽहं शिवस्य प्राणा इह प्राणाः। आं ह्रीं क्रौं यं रं० शिवस्य जीव इह स्थितः। ॐ आं ह्रीं क्रौं यं रं शिवस्य सर्वेन्द्रियाणि वाङ्मनस्त्वक्चक्षुः श्रोत्रघ्राणजिह्वापाणिपादपायूपस्थानि इहागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्ति स्वाहा॥

नीचे लिखे मन्त्र से पुष्प समर्पण करें।

ॐ भूः पुरुषं साम्बसदाशिवमावाहयामि। ॐ भुवः पुरुषं साम्बसदाशिवमावाहयामि। ॐ स्वः पुरुषं साम्बसदाशिवमावाहयामि। इत्यावाहयेत्। ॐ स्वामिन् सर्वजगन्नाथ यावत्पूजावसानकम्। तावत्त्वम्प्रीतिभावेन लिङ्गेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु॥

पूजन करके नीचे लिखे मन्त्र से विसर्जन करे।

हरो महेश्वरश्चैव शूलपाणिः पिनाकधृक्।
शिवः पशुपतिश्चैव महादेव-विसर्जनम्॥

दुर्गा-पूजन

शुद्धमृत्तिका में यव अथवा गेहूँ रोपण कर उसपर कलश स्थापनविधि से कलश स्थापन करें, आचमन प्राणायाम करके संकल्पवाक्य के अन्त में “ममेह-

जन्मनि दुर्गा-प्रीतिद्वारा सर्वापच्छान्तिपूर्वकं दीर्घायुर्विपुलधनपुत्रपौत्राद्यविच्छिन्नसन्ततिवृद्धिस्थिरलक्ष्मीकीर्तिलाभशत्रुपराजजयप्रमुखचतुर्विधपुरुषार्थसिद्ध्यर्थं कलशस्थापनं दुर्गापूजनं तत्र निर्विघ्नतासिद्ध्यप्रर्थं स्वस्तिवाचनम्, पुण्याहवाचनम्, गणपत्यादिपूजनं च करिष्ये" कहकर संकल्प करें। पश्चात् नीचे लिखे संकल्प से ब्राह्मण का वरण करें।

ॐ अद्य दुर्गापूजनपूर्वकं मार्कण्डेयपुराणान्तर्गतदुर्गासप्तशतीपाठकरणार्थं एभिर्वरणद्रव्यैः अमुकगोत्रं अमुकशर्माणं ब्राह्मणं त्वामहं वृणे॥ पश्चात् ब्राह्मण "वृतोस्मि" कहें।

पूर्वोक्त विधि से स्वस्तिवाचन, पुण्याहवाचन, गणपतिगौरीपूजन, कलशस्थापन, नवग्रह, पंचलोकपाल, दशदिक्पाल, षोडषमातृका तथा चतुःषष्ठियोगिनी पूजन करके भगवतीवाहन, भैरव, क्षेत्रपाल तथा ध्वजा आदिका पूजन करें।

भैरव-पूजन

ॐ करकलितकपालः कुण्डली दण्डपाणिस्तरुणतिमिरनीलो व्यालयज्ञोपवीती। क्रतुसमयसपर्या विघ्नविच्छेदहेतुर्जयति बटुकनाथः सिद्धिदः साधकानाम्।

देवीध्यान

पूजन करके नीचे लिखी प्रार्थना करें।

ॐ विद्युद्दामसमप्रभां मृगपतिस्कन्धस्थितां भीषणां
कन्याभिः करवालखेटविलसद्धस्ताभिरासेवितां ।
हस्तैश्चक्रगदासिखेटविशिखांश्चापं गुणं तर्जनीं
विभ्राणामनलात्मिकां शशिधरां दुर्गां त्रिनेत्रां भजे ॥

आवाहन— आगच्छ वरदे देवि दैत्यदर्पनिषूदिनि ।
पूजां गृहाण सुमुखि नमस्ते शङ्करप्रिये ॥

आसन— अनेकरत्नसंयुक्तं नानामणिगणान्वितम् ।
कार्तस्वरमयं दिव्यमासनं प्रतिगृह्यताम् ॥

पाद्य — गङ्गादिसर्वतीर्थेभ्यो मया प्रार्थनयाहृतम् ।
तोयमेतत्सुखस्पर्शं पाद्यार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥ पा.स.

अर्घ्य — गन्धपुष्पाक्षतैर्युक्तमर्घ्यं सम्पादितं मया ।
गृहाण त्वं महादेवि प्रसन्ना भव सर्वदा ॥ अ.स.

आचमन— आचम्यतां त्वया देवि ! भक्तिं मे ह्यचलां कुरु ।
ईप्सितं मे वरं देहि परत्र च पराङ्गतिम् ॥ आ.स.

स्नान — जाह्नवी तोयमानीतं शुभं कर्पूरसंयुतम् ।
स्नापयामि सुरश्रेष्ठे त्वां पुत्रादिफलप्रदाम् ॥ स्ना.स.

पञ्चामृतस्नान— पयो दधि घृतं क्षौद्रं सितया च समन्वितम् ।
पञ्चामृतमनेनाद्य कुरु स्नानं दयानिधे ॥ पं.स.

शुद्धोदकंस्नान—ॐ परमानन्दबोधाब्धिनिमंग्ननिजमूर्तये ।
साङ्गोपाङ्गमिद स्नानं कल्पयाम्यहमीशिते ॥ शु.स्ना.स.

वस्त्र — वस्त्रञ्च सोमदैवत्यं लज्जायास्तु निवारणम् ।
मया निवेदितं भक्त्या गृहाण परमेश्वरि ॥ व.स.

उपवस्त्र — ॐ यामाश्रित्य महामाया जगत्सम्मोहिंनीं सदा ।
तस्यै ते परमेशायै कल्पयाम्युत्तरीयकम् ॥ उपवस्त्रं स.

मधुपर्क— दधिमध्वाज्यसंयुक्तं पात्रयुग्मसमन्वितम् ।
मधुपर्कं गृहाण त्वं वरदा भव शोभने ॥ म.स.

गन्ध — परमानन्दसौभाग्य-परिपूर्णदिगन्तरे ।
गृहाण परमं गन्धं — कृपया परमेश्वरि ॥ ग.स.

कुंकुम — कुङ्कुमं कान्तिदं दिव्यं कामिनीकामसंभवम् ।
कुङ्कुमेनार्चिते देवि प्रसीद परमेश्वरि ॥ कुं.स.

आभूषण— हारकङ्कणकेयूरमेखलाकुण्डलादिभिः ।
रत्नाढ्यं कुण्डलोपेतं भूषणं प्रतिगृह्यताम् ॥ आ.स.

सिन्दूर — सिन्दूरमरुणाभासं जपाकुसुमसन्निभम् ।
पूजितासि मया देवि प्रसीद परमेश्वरि ॥ सिं.स.

कज्जल— चक्षुर्भ्यां कज्जलं रम्यं सुभगे ! शान्तिकारिके ! ।
कर्पूरज्योतिरुत्पन्नं गृहाण परमेश्वरि ॥ क.स.

सौभाग्यद्रव्य— सौभाग्यसूत्रवरदे ! सुवर्णमणिसंयुते ।
कण्ठे बध्नामि देवेशि ! सौभाग्यं देहि मे सदा ॥ सौ.द्र.स.

सुगन्ध तैल (अतर)—चन्दनागरुकर्पूरैः संयुतं कुङ्कुमं तथा ।
कस्तूर्यादिसुगन्धांश्च सर्वाङ्गेषु विलेपनम् ॥ सु.स.

परिमलद्रव्य— हरिद्रारञ्जिते देवि सुखसौभाग्यदायिनि ।
तस्मात्त्वां पूजयाम्यत्र सुखशांतिं प्रयच्छ मे ॥ परि.द्र.स.

अक्षत — रञ्जिताः कुङ्कुमौघेन अक्षताश्चातिशोभनाः ।
ममैषां देवि दानेन प्रसन्ना भव शोभने ॥ अ.स.

पुष्प — मन्दारपारिजातादि-पाटलीकेतकानि च ।
जातींचम्पकपुष्पाणि गृहाणेमानि शोभने ॥ पु.स.

पुष्पमाला—सुरभिपुष्पनिचयैः ग्रथितां शुभमालिकाम् ।
ददामि तव शोभार्थं गृहाण परमेश्वरि ॥ पु.मा.स.

विल्वपत्र—अमृतोद्भवः श्रीवृक्षो महादेवि ! प्रियः सदा ।
विल्वपत्रं प्रयच्छामि पवित्रं ते सुरेश्वरि ॥ विल्वपत्रं स.

धूप — दशाङ्गगुग्गुलं धूपं चन्दनागरुसंयुतम् ।
समर्पितं मया भक्त्या महादेवि ! प्रगृह्यताम् ॥ धूपमाघ्रापयामि ।

दीप — घृतवर्तिसमायुक्तं महातेजो महोज्ज्वलम् ।
दीपं दास्यामि देवेशि सुप्रीता भव सर्वदा ॥

दीपं दर्शयामि । हस्त-प्रक्षालनम् ।

नैवेद्य — अन्नं चतुर्विधं स्वादु रसैः षड्भिः समन्वितम् ।
नैवेद्यं गृह्यतां देवि भक्तिं मे ह्यचलां कुरु ॥

ऋतुफल— द्राक्षाखर्जूरकदलीपनसाम्रकपित्थकम् ।
नारिकेलेक्षुजम्ब्वादि फलानि प्रतिगृह्यताम् ॥ ऋ.स.

आचमन— कामारिवल्लभे देवि कुर्वाचमनमम्बिके ।
निरन्तरमहं वन्दे चरणौ तव चण्डिके ॥ आ.स.

अखण्ड-ऋतुफल— नारिकेलं च नारङ्गं कलिङ्गं मञ्जिरं तथा ।
उर्वारुकं च देवेशि फलान्येतानि गृह्यताम् ॥ अ.ऋ.स.

ताम्बूलपूगीफल—एलालवङ्गकस्तूरीकर्पूरैः पुष्पवासिताम् ।
वीटिकां मुखवासार्थमर्पयामि सुरेश्वरि ॥ तां.पू.स.

दक्षिणा— पूजाफलसमृद्ध्यर्थं तवाग्रे द्रव्यमीश्वरि ।
स्थापितं तेन मे प्रीता पूर्णान् कुरु मनोरथान् ॥ द.द्र.स.

पुस्तक-पूजन (जल से नहीं करें)

नमो देव्यै महादेव्यै शिवायै सततं नमः ।
नमः प्रकृत्यै भद्रायै नियताः प्रणताः स्म ताम् ॥

ज्योति-पूजन (पूजन करके प्रार्थना करें)

शुभं भवतु कल्याणमारोग्यं पुष्टिवर्धनम् ।
आत्मतत्त्वप्रबोधाय दीपज्योतिर्नमोऽस्तु ते ॥

कुमारी-पूजन

२ वर्ष से १० वर्ष तक की कन्या का पूजन करके भोजन करायें ।

प्रार्थना — सर्वस्वरूपे ! सर्वेशे सर्वशक्तिस्वरूपिणी ।
पूजां गृहाण कौमारि ! जगन्मातर्नमोऽस्तु ते ॥

आरती — नीराजनं सुमाङ्गल्यं कर्पूरेण समन्वितम् ।
चन्द्रार्कवह्निसदृशं महादेवि ! नमोस्तु ते ॥

दुर्गाजी की आरती

जय अम्बे गौरी ! मैया जय मंगलमूरती ! मैया जय आनन्दकरणी ।
तुमको निशिदिन ध्यावत हरि ब्रह्मा शिवजी ॥ जय अम्बे. ॥ टेर ॥
माँग सिन्दूर विराजत टीको मृगमदको ।
उज्ज्वलसे दोऊ नैना चन्द्रवदननीको ॥ जय अम्बे. ॥
कनकसमानकलेवर रक्ताम्बर राजैं ।
रक्तपुष्प बनमाला कण्ठन पर साजैं ॥ जय अम्बे. ॥
केहरिवाहन राजत खड्ग खप्परधारी ।
सुरनरमुनिजनसेवत तिनके दुःखहारी ॥ जय अम्बे. ॥
कानन कुण्डल शोभित नासाग्रेमोती ।
कोटिकचंद्रदिवाकर राजत सम ज्योति ॥ जय अम्बे. ॥
शुम्भनिशुम्भ विडारे महिषासुरघाती ।
धूम्रविलोचननाशिनि निशिदिन मदमाती ॥ जय अम्बे. ॥
चौंसठ योगिनि गावत नृत्य करत भैरूँ ।
बाजत ताल मृदंगा और बाजत डमरू ॥ जय अम्बे. ॥
भुजा चार अति शोभित खड्गखप्परधारी ।
मनवाञ्छित फल पावत सेवत नरनारी ॥ जय अम्बे. ॥
कञ्चनथाल विराजत अगरकपूरबाती ।
श्रीमालकेतु में राजत कोटिरतन ज्योती ॥ जय अम्बे. ॥
या अम्बेजी की आरती जो कोई नर गावैं ।
भणत शिवानन्द स्वामी सुखसम्पति पावैं ॥ जय अम्बे. ॥

पुष्पांजलि—दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः
स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि ।

दारिद्र्यदुःखभयहारिणि का त्वदन्या
सर्वोपकारकरणाय सदार्द्र चिता ॥

प्रदक्षिणा— नमस्ते देवि-देवेशि नमस्ते ईप्सितप्रदे ।
नमस्ते जगतां धात्रि नमस्ते भक्तवत्सले ॥

दण्डवत् प्रणाम— नमः सर्वहितार्थायै जगदाधारहेतवे ।
साष्टाङ्गोऽयं प्रणामस्तु प्रयत्नेन मया कृतः ॥

प्रार्थना— पुत्रान् देहि धनं देहि सौभाग्यं देहि मङ्गले ।
अन्यांश्च सर्वकामांश्च देहि देवि नमोस्तु ते ॥

विसर्जन— इमां पूजां मया देवि यथाशक्त्युपपादिताम् ।
रक्षार्थं त्वं समादाय व्रज स्थानमनुत्तमम् ॥

श्रीमहालक्ष्मी-पूजन

आचमन प्राणायाम करके संकल्पवाक्य के अन्त में "स्थिरलक्ष्मीप्राप्त्यर्थं श्रीमहालक्ष्मीप्रीत्यर्थं सर्वारिष्टनिवृत्तिपूर्वकसर्वाभीष्टफलप्राप्त्यर्थं आयुरारोग्यैश्वर्याभिवृद्ध्यर्थं व्यापारे लाभार्थञ्च गणपतिनवग्रहकलशादिपूजनपूर्वकं श्रीमहाकाली-महालक्ष्मी-महासरस्वती-लेखनी-कुबेरादीनां च पूजनं करिष्ये" कहकर जल छोड़ें । पश्चात् गणपति, कलश और नवग्रहादि का पूर्वोक्त विधि से पूजन करके महालक्ष्मी का पूजन करें ।

ध्यान — या सा पद्मासनस्था विपुलकटितटी पद्मपत्रायताक्षी, गम्भीरावर्तनाभिस्तनभरनमिता शुभवस्त्रोत्तरीया । या लक्ष्मीर्दिव्यरूपैर्मणिगणखचितैः स्नापिता हेमकुम्भैः, सा नित्यं पद्महस्ता मम वसतु गृहे सर्वमाङ्गल्ययुक्ता ॥

आवाहन— ॐ सर्वलोकस्य जननीं शूलहस्तां त्रिलोचनाम् ।
सर्वदेवमयीमीशां देवीमावाहयाम्यहम् ॥ आवाहयामि ।

आसन— ॐ तप्तकाञ्चनवर्णाभं मुक्तामणिविराजितम् ।
अमलं कमलं दिव्यमासनं प्रतिगृह्यताम् ॥ आ.स.

पाद्य — ॐ गङ्गादितीर्थसम्भूतं गन्धपुष्पादिभिर्युतम् ।
पाद्यं ददाम्यहं देवि गृहाणाशु नमोऽस्तु ते ॥ पा.स.

अर्घ्य — ॐ अष्टगन्धसमायुक्तं स्वर्णपात्रप्रपूरितम् ।
अर्घ्यं गृहाण मद्दत्तं महालक्ष्मि ! नमोऽस्तु ते ॥ अ.स.

आचमन—ॐ सर्वलोकस्य या शक्तिर्ब्रह्मविष्ण्वादिभिः स्तुता ।
ददाम्याचमनं तस्यै महालक्ष्म्यै मनोहरम् ॥ आ.स.

स्नान— ॐमन्दाकिन्याः समानीतैर्हेमाम्भोरुहवासितैः ।
स्नानं कुरुष्व देवेशि ! सलिलैश्च सुगन्धिभिः ॥ स्ना.स.

दूध, दही, घृत, मधु और शर्करास्नान पिछले पृष्ठों पर देखें ।

पंचामृतस्नान—ॐ पञ्चामृतसमायुक्तं जाह्नवीसलिलं शुभम् ।
गृहाण विश्वजननि ! स्नानार्थं भक्तवत्सले ! ॥ पं.स

शुद्धोदकस्नान—ॐ तोयं तव महादेवि ! कर्पूरागरुवासितम् ।
तीर्थेभ्यः सुसमानीतं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥ शु.स.

वस्त्र— ॐ दिव्याम्बरं नूतनं हि क्षौमं त्वतिमनोहरम् ।
दीयमानं मया देवि गृहाण जगदम्बिके ॥ व.स.

उपवस्त्र— कञ्चुकीमुपवस्त्रं च नानारत्नैः समन्वितम् ।
गृहाण त्वं मया दत्तं मङ्गले जगदीश्वरि ॥ उ.स.

मधुपर्क— ॐ कापिलं दधि कुन्देन्दुधवलं मधुसंयुतम् ।
स्वार्णपात्रस्थितं देवि ! मधुपर्कं गृहाण भोः ॥ म.स.

आभूषण—ॐ स्वभावसुन्दराङ्गायै नानादेवाश्रये शुभे ।
भूषणानि विचित्राणि कल्पयाम्यमरार्चिते ॥ आ.स.

गन्ध — ॐ श्रीखण्डागरुकर्पूरमृगनाभिसमन्वितम् ।
विलेपनं गृहाणाशु नमोऽस्तु भक्तवत्सले ॥ गं.स.

रक्त चन्दन— ॐ रक्तचन्दनसम्मिश्रं पारिजातसमुद्भवम् ।
मया दत्तं गृहाणाशु चन्दनं गन्धसंयुतम् ॥ र.स.

सिंदूर — ॐ सिन्दूरं रक्तवर्णं च सिन्दूरतिलकप्रिये ।
भक्त्या दत्तं मया देवि सिन्दूरं प्रतिगृह्यताम् ॥ सि.स.

कुंकुम — ॐ कुङ्कुमं कामदं दिव्यं कुङ्कुमं कामरूपिणम् ।
अखण्डकामसौभाग्यं कुङ्कुमं प्रतिगृह्यताम् ॥ कुं.स.

अक्षत — ॐ अक्षतान्निर्मलाञ्छुद्धान् मुक्तमणिसमन्वितान् ।
गृहाणेमान्महादेवि ! देहि मे निर्मलां धियम् ॥ अ.स.

पुष्प — ॐ मन्दारपारिजाताद्याः पाटली केतकी तथा ।
मरुवा मोगरं चैव गृहाणाशु नमो नमः ॥ पु.स.

पुष्पमाला— ॐ पद्मशङ्खजपापुष्पैः शतपत्रैर्विचित्रिताम् ।
पुष्पमालां प्रयच्छामि गृहाण त्वं सुरेश्वरि ! ॥ मा.स.

दूर्वा — विष्णवादिसर्वदेवानां प्रियां सर्वसुशोभनाम् ।
क्षीरसागरसम्भूते दूर्वा स्वीकुरु सर्वदा ॥ दू.स.

अतर — ॐ स्नेहं गृहाण स्नेहेन लोकेश्वरि ! दयानिधे ।
सर्वलोकस्य जननि ! ददामि स्नेहमुत्तमम् ॥ सु.स.

अथाङ्गपूजा

‘ॐ चपलायै नमः’, पादौपूजयामि ॥१॥ ‘ॐ चञ्चलायै नमः’, जानुनि पूजयामि ॥२॥ ‘ॐ कमलायै नमः’, कटिं पूजयामि ॥३॥ ‘ॐ कात्यायिन्यै नमः’, नाभिं पूजयामि ॥४॥ ॐ जगन्मात्रे नमः’, जठरं पूजयामि ॥५॥ ‘ॐ विश्ववल्लभायै नमः’, वक्षस्थलं पूजयामि ॥६॥ ‘ॐ कमलवासिन्यै नमः’, भुजौ पूजयामि ॥७॥ ‘ॐ पद्मकमलायै नमः’, मुखं पूजयामि ॥८॥ ‘ॐ कमलपत्राक्ष्यै नमः’, नेत्रत्रयं पूजयामि ॥९॥ ‘ॐ श्रियै नमः’, शिरः पूजयामि ॥१०॥ इत्यङ्गपूजा ॥

अथ पूर्वादिक्रमेण अष्टदिक्षु अष्टसिद्धीः पूजयेत्

ॐ अणिम्ने नमः ॥१ ॥ ॐ महिम्ने नमः ॥२ ॥ ॐ गरिम्णे नमः ॥३ ॥ ॐ लघिम्ने नमः ॥४ ॥ ॐ प्राप्त्यै नमः ॥५ ॥ ॐ प्राकाम्यै नमः ॥६ ॥ ॐ ईशितायै नमः ॥७ ॥ ॐ वशितायै नमः ॥८ ॥ इति अष्टसिद्धिपूजनम् ।

तथैवं पूर्वादि-क्रमेण अष्टलक्ष्मी-पूजनम्

ॐ आद्यलक्ष्म्यै नमः ॥१ ॥ ॐ विद्यालक्ष्म्यै नमः ॥२ ॥ ॐ सौभाग्यलक्ष्म्यै नमः ॥३ ॥ ॐ अमृतलक्ष्म्यै नमः ॥४ ॥ ॐ कामलक्ष्म्यै नमः ॥५ ॥ ॐ सत्यलक्ष्म्यै नमः ॥६ ॥ ॐ भोगलक्ष्म्यै नमः ॥७ ॥ ॐ योगलक्ष्म्यै नमः ॥८ ॥

इति अष्टलक्ष्मी-पूजनम्

धूप — ॐ वनस्पतिरसोत्पन्नो गन्धाढ्यः सुमनोहरः ।
आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥ धूपमाघ्रा.

दीप — ॐ कार्पासवर्तिसंयुक्तं घृतयुक्तं मनोहरम् ।
तमोनाशकरं दीपं गृहाण परमेश्वरि ! ॥ दी.द.,ह.प्र.

नैवेद्य — ॐ नैवेद्यं गृह्यतां देवि भक्ष्यभोज्यसमन्वितम् ।
षड्रसैरन्वितं दिव्यं लक्ष्मि ! देवि ! नमोऽस्तु ते ॥
नैवेद्यं निवेदयामि,मध्ये पानीयम् ।

ऋतुफल— ॐ फलेन पलितं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।
तस्मात् फलप्रदानेन पूर्णाः सन्तु मनोरथाः ॥ ऋ.स.

आचमन— ॐ शीतलं निर्मलं तोयं कर्पूरेण सुवासितम् ।
आचम्यतामिदं देवि ! प्रसीद त्वं महेश्वरि ! ॥ आ.स.

अखण्डऋतुफल— ॐ इदं फलं मयाऽनीतं सरसं च निवेदितम् ।
गृहाण परमेशानि ! प्रसीद प्रणमाम्यहम् ॥ अ.ऋ.स.

ताम्बूल-पुगीफल— एलालवङ्गकर्पूरनागपत्रादिभिर्युतम् ।
पूगीफलेन संयुक्तं ताम्बूलं प्रतिगृह्यताम् ॥ ता.पू.स.

दक्षिणा— ॐ हिरण्यगर्भगर्भस्थं हेमबीजं विभावसोः ।
अनन्तपुण्यफलदमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥ द.स.

प्रार्थना— ॐ सुरासुरेन्द्रादिकिरीटमौक्तिकैर्युक्तं सदा यत्तवपादपङ्कजम् । परावरं पातु वरं सुमङ्गलं नमामि भक्त्या तव कामसिद्धये ॥ भवानि ! त्वं महालक्ष्मीः सर्वकामप्रदायिनी । सुपूजिता प्रसन्ना स्यान्महालक्ष्मि ! नमोऽस्तु ते ॥ नमस्ते सर्वदेवानां वरदासि हरिप्रिये ! या गतिस्त्वत्प्रपन्नानां सा मे भूयात्त्वदर्चनात् ॥

दवातमें मौली बाँधकर तथा स्वस्तिक बनाकर नीचे लिखा ध्यान करें—

ॐ मषि त्वं लेखनीयुक्ता चित्रगुप्ताशयस्थिता । सदक्षराणां पत्रे च लेख्यं कुरु सदा मम । या माया प्रकृतिः शक्तिश्चण्डमुण्डविमर्दिनी । सा पूज्या सर्वदेवैश्च ह्यस्माकं वरदा भव ॥ ॐ श्रीमहाकाल्यै नमः ॥

पूजन करके नीचे लिखी प्रार्थना करें ।

या कालिका रोगहरा सुवन्द्या वैश्यैः समस्तैर्व्यवहारदक्षैः । जनैर्जनानां भयहारिणी च सा देवमाता मयि सौख्यदात्री ॥

लेखनी-पूजन

कलमपर मौली बाँधकर नीचे लिखा ध्यान करके पूजन करें ।

ॐ शुक्लां ब्रह्मविचारसारपरमामाद्यां जगद्व्यापिनीं, वीणापुस्तकधारिणीमभयदां जाड्यान्धकारापहाम् हस्ते स्फाटिकमालिकां विदधतीं पद्मासने संस्थितां, वन्दे तां परमेश्वरीं भगवतीं बुद्धिप्रदां शारदाम् ॥ लेखिन्यै नमः ॥

पूजन करके नीचे लिखी प्रार्थना करें ।

प्रार्थना — कृष्णानने द्विजिह्वे च चित्रगुप्तकरस्थिते ।
सदक्षराणां पत्रे च लेख्यं कुरु सदा मम ॥

बही, बसना आदिमें केसर या रोलीसे स्वस्तिक बनाकर नीचे लिखा ध्यान करके पूजन करें ।

ॐ या कुन्देन्दुतुषारहारधवला या शुभ्रवस्त्रावृता, या वीणावरदण्डमण्डितकरा या श्वेतपद्मासना। या ब्रह्माच्युतशङ्करप्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता, सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा ॥ ॐ वीणापुस्तकधारिण्यै नमः ॥

पूजन करके नीचे लिखी प्रार्थना करें।

प्रार्थना— ॐ शारदा शारदाम्भोजवदना वदनाम्बुजे ।
सर्वदा सर्वदाऽस्माकं सन्निधिं सन्निधिं क्रियात् ॥

कुबेर-पूजन

संदूक आदिमें सिन्दूरसे स्वस्तिक बनाकर आवाहन करके पूजन करें।

आवाहयामि देव ! त्वमिहायाहि कृपां कुरु ।
कोशं वर्द्धय नित्यं त्वं परिरक्ष सुरेश्वर ! ॥

प्रार्थना— धनाध्यक्षाय देवाय नरयानोपवेशिने ।
नमस्ते राजराजाय कुबेराय महात्मने ॥

तुला तथा मान-पूजन

सिन्दूरसे स्वस्तिक बनाकर पूजन करें। पश्चात् नीचे लिखी प्रार्थना करें।

नमस्ते सर्वदेवानां शक्तित्वे सत्यमाश्रिता ।
साक्षिभूता जगद्धात्री निर्मिता विश्वयोनिना ॥

दीपावली-पूजन

दीपक जलाकर पात्रमें रख पूजन करके नीचे लिखी प्रार्थना करें।

भो दीप त्वं ब्रह्मरूप अन्धकारनिवारक ।
इमां मया कृतां पूजां गृहणँस्तेजः प्रवर्धय ॥
ॐ दीपेभ्यो नमः ॥

आरती— ॐ चक्षुर्दं सर्वलोकानां तिमिरस्य निवारणम् ।
आर्तिक्यं कल्पितं भक्त्या गृहाण परमेश्वरि ॥

श्रीलक्ष्मीजीकी आरती

जय लक्ष्मी माता, मैया जय लक्ष्मी माता ।
तुमको निशि दिन सेवत हर विष्णु धाता ॥ टेर ॥
ब्रह्माणी रुद्राणी कमला तूही है जगमाता ।
सूर्य चन्द्रमा ध्यावत नारद ऋषि गाता ॥ जय. ॥
दुर्गारूप निरञ्जनि सुख सम्पति दाता ।
जो कोई तुमको ध्यावत ऋधि सिधि धन पाता ॥ जय. ॥
तूही है पाताल वसन्ती तूही है शुभदाता ।
कर्मप्रभाव-प्रकाशक जगनिधिसे त्राता ॥ जय. ॥
जिस घर तेरो बासो वाहिमें गुण आता ।
कर न सकै सोई करले मन नहिं धड़काता ॥ जय. ॥
तुम बिन यज्ञ न होवे वस्त्र न होय राता ।
खान पानको विभवै तुम बिन कुण दाता ॥ जय. ॥
शुभ गुण सुन्दरयुक्ता क्षीरनिधी जाता ।
रत्न चतुर्दश तोकूं कोई भी नहिं पाता ॥ जय. ॥
यह आरती लक्ष्मीजीकी कोई नर गाता ।
उर आनन्द अति उमँगे पाप उतर जाता ॥ जय. ॥
स्थिर चर जगत बचावै कर्म प्रेरलाता ।
राम प्रताप मैयाकी शुभ दृष्टि चाहता ॥ जय लक्ष्मी माता ॥

श्रीसत्यनारायणाष्टक

आदिदेवं जगत्कारणं श्रीधरं, लोकनाथं विभुं व्यापकं शङ्करम् । सर्वभक्तेष्टदं मुक्तिदं माधवं, सत्यनारायणं विष्णुमीशम्भजे ॥१ ॥ सर्वदा लोककल्याणपारायणं, देवगोविप्ररक्षार्थसद्विग्रहम् । दीनहीनात्मभक्ताश्रयं सुन्दरं, सत्य. ॥२ ॥

दक्षिणे यस्य गङ्गा शुभा शोभते, राजते सा रमा यस्य वामे सदा। यः प्रसन्नाननो भाति भव्यश्च तं, सत्य. ॥३ ॥सङ्कटे सङ्गरे यं जनाः सर्वदा, स्वात्मभीनाशनाय स्मरेत् पीडितः। पूर्णकृत्यो भवेद् यत्प्रसादाच्च तं, सत्य. ॥४ ॥वाञ्छितं दुर्लभं यो ददाति प्रभुः, साधवे स्वात्मभक्ताय भक्तिप्रियः। सर्वभूताश्रयं तं हि विश्वम्भरं, सत्य. ॥५ ॥ ब्राह्मणः साधु-वैश्यश्च तुङ्गध्वजो, येऽभवन् विश्रुता यस्य भक्त्याऽमराः। लीलया यस्य विश्वं ततं तं विभुं, सत्य. ॥६ ॥ येन चाब्रह्मवालतृणं धार्यते, सृज्यते पाल्यते सर्वमेतज्जगत्। भक्तभावप्रियं श्रीदयासागरं, सत्य. ॥७ ॥ सर्वकामप्रदं सर्वदा सत्प्रियं, वन्दितं देववृन्दैर्मुनीन्द्रार्चितम् पुत्रपौत्रादिसर्वेष्टदं शाश्वतं, सत्य. ॥८ ॥ अष्टकं सत्यदेवस्य भक्त्या नरः भावयुक्तो मुदा यस्त्रिसन्ध्यं पठेत् ॥ तस्य नश्यन्ति पापानि तेनाग्निना, इन्धनानीव शुष्काणि सर्वाणि वै ॥९ ॥

श्रीसत्यनारायणाष्टकं सम्पूर्णम्।

श्रीमहालक्ष्म्यष्टक

नमस्तेऽस्तु महामाये श्रीपीठे सुरपूजिते। शङ्खचक्रगदाहस्ते महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते ॥१ ॥ नमस्ते गरुडारूढे कोलासुरभयङ्करि। सर्वपापहरे देवि महालक्ष्मि० ॥२ ॥ सर्वज्ञे सर्ववरदे सर्वदुष्टभयंङ्करि। सर्वदुःखहरे देवि महालक्ष्मि० ॥३ ॥ सिद्धिबुद्धिप्रदे देवि भुक्तिमुक्तिप्रदायिनी। मन्त्रमूर्ते सदा देवि महा लक्ष्मि० ॥४ ॥ आद्यन्तरहिते देवि आद्यशक्ति महेश्वरि। योगजे योगसम्भूते महालक्ष्मि० ॥५ ॥ स्थूलसूक्ष्ममहारौद्रे महाशक्ति महोदरे। महापापहरे देवि महालक्ष्मि० ॥६ ॥ पद्मासनस्थिते देवि परब्रह्मस्वरूपिणि। परमेशि जगन्मातर्महालक्ष्मि० ॥७ ॥ श्वेताम्बरधरे देवि नानालङ्कारभाषिते। जगत्स्थिते जगन्मातर्महालक्ष्मि० ॥८ ॥ महालक्ष्म्यष्टकस्तोत्रं यः पठेद्भक्तिमान्नरः। सर्वसिद्धिमवाप्नोति राज्यमाप्नोति सर्वदा ॥९ ॥ एककालं पठेन्नित्यं महापापविनाशनम्। द्विकालं यः पठेन्नित्यं धनधान्यसमन्वितः ॥१० ॥ त्रिकालं यः पठेन्नित्यं महाशत्रुविनाशनम्। माहलक्ष्मीर्भवेन्नित्यं प्रसन्ना वरदा शुभा ॥११ ॥

इन्द्रकृतं श्रीमहालक्ष्म्यष्टकस्तोत्रं सम्पूर्णम्।

कनकधारा-स्तोत्र

अङ्गं हरेः पुलकभूषणमाश्रयन्ती, भृङ्गाङ्गनेव मुकुलाभरणं तमालम्। अङ्गीकृताखिलविभूतिरपाङ्गलीला, माङ्गल्यदाऽस्तु मम मङ्गलदेवतायाः ॥१॥ मुग्धा मुहुर्विदधती वदने मुरारेः, प्रेमत्रपाप्रणिहितानि गतागतानि। मालादृशोर्मधुकरीव महोत्पले या, सा मे श्रियं दिशतु सागरसम्भवायाः ॥२॥ विश्वामरेन्द्र-पदविभ्रमदानदक्ष, मानन्दहेतुरधिकं मुरविद्विषोऽपि। ईषन्निषीदतु मयि क्षणमीक्षणार्धमिन्दीवरोदरसहोदरमिन्दिरायाः ॥३॥ आमीलिताक्षमधिगम्य मुदा मुकुन्द, मानन्दकन्दमनिमेषमनङ्गतन्त्रम्। आकेकरस्थितकनीनिकपक्ष्मनेत्रं, भूत्यै भवेन्मम भुजङ्गशयाङ्गनायाः ॥४॥ बाह्वन्तरे मधुजितः श्रितकौस्तुभे या, हारावलीव हरिनीलमयी विभाति। कामप्रदा भगवतोऽपि कटाक्षमाला, कल्याणमावहतु मे कमलालयायाः ॥५॥ कालाम्बुदालिललितोरसि कैटभारे, -र्धाराधरे स्फुरति या तडिदङ्गनेव। मातुः समस्तजगतां महनीयमूर्तिर्भद्राणि मे दिशतु भार्गवनन्दनायाः ॥६॥ प्राप्तं पदं प्रथमतः किल यत् प्रभावा, न्माङ्गल्यभाजि मधुमाथिनि मन्मथेन। मय्यापतेत्तदिह मन्थरमीक्षणार्धं, मन्दालसञ्च मकरालयकन्यकायाः ॥७॥ दद्याद्दयानुपवनो द्रविणाम्बुधारा, -मस्मिन्नकिञ्चनविहङ्गशिशौ विषण्णे। दुष्कर्मधर्ममपनीय चिराय दूरं, नारायणप्रणयिनीनयनाम्बुवाहः ॥८॥ इष्टातिशिष्टमतयोऽपि यथा दयार्द्र, दृष्ट्या त्रिविष्टपपदं सुलभं लभन्ते। दृष्टिः प्रहृष्ट-कमलोदर-दीप्तिरिष्टां, पुष्टिं कृपीष्ट मम पुष्करविष्टरायाः ॥९॥ गीर्देवतेति गरुडध्वजभामिनीति, शाकम्भरीति शशिशेखर-वल्लभेति। सृष्टिस्थिति-प्रलयसिद्धिषु संस्थितायै, तस्यै नमस्त्रिभुवनैकगुरोस्तरुण्यै ॥१०॥ श्रुत्यै नमस्त्रिभुवनैक-फलप्रसूत्यै, रत्यै नमोस्तु रमणीयगुणाश्रयायै। शक्त्यै नमोऽस्तु शतपत्रनिकेतनायै, पुष्ट्यै नमोऽस्तु पुरुषोत्तम-वल्लभायै ॥११॥ नमोऽस्तु नालीकनिभेक्षणायै, नमोऽस्तु दुग्धोदधि-जन्मभूत्यै नमोऽस्तु सोमामृतसोदरायै, नमोऽस्तु नारायण-वल्लभायै ॥१२॥ सम्पत् कराणि सकलेन्द्रिय-नन्दनानि,

पूज्या माताजी रुक्मणी देवी सिंघानिया

निर्वाण— श्रावण शुक्ल १०, सम्वत् २०४२

(सन् २५-८-८५)

साम्राज्य-दानविभवानि सरोरुहाक्षि। त्वद्वन्दनानि दुरिताहरणोद्यतानि, मामेव मातरनिशं कलयन्तु नान्यत् ।।१३ ।। यत्कटाक्षसमुपासनाविधिः सेवकस्य सकलार्थसम्पदः। सन्तनोति वचनाङ्गमानसैस्त्वां मुरारिहृदयेश्वरीं भजे ।।१४ ।। सरसिज-निलये सरोजहस्ते धवलतरांशुक-गन्धमाल्यशोभे। भगवति हरिवल्लभे मनोज्ञे त्रिभुवन-भूतिकरि प्रसीद मह्यम् ।।१५ ।। दिग्घस्तिभिः कनककुम्भमुखावसृष्ट, -स्वर्वाहिनीविमलचारुजलप्लुताङ्गीम्। प्रातर्नमामि जगतां जननीमशेष, लोकाधिराजगृहिणीममृताब्धिपुत्रीम् ।।१६ ।। कमले कमलाक्षवल्लभे, त्वं करुणापूरतरङ्गितैरपाङ्गैः। अवलोकय मामकिञ्चनानां, प्रथमं पात्रमकृत्रिमं दयायाः ।।१७ ।। स्तुवन्ति ये स्तुतिभिरमुभिरन्वहं, त्रयीमयीं त्रिभुवनमातरं रमाम्। गुणाधिका गुरुधन-भोगभागिनी, भवन्ति ते भुवि बुधभाविताशया ।।१८ ।।

श्रीभगवत्पाद-शङ्करविरचितं कनकधारास्तोत्रं सम्पूर्णम्।

श्री भगवतीस्तोत्रम्

जय भगवति देवि नमो वरदे, जय पापविनाशिनि बहुफलदे ।
जय शुम्भनिशुंभकपालधरे, प्रणमामि तु देवि नरार्तिहरे ।।१ ।।
जय चन्द्रदिवाकरनेत्रधरे, जय पावकभूषितवक्त्रवरे ।
जय भैरवदेहनिलीनपरे, जय अन्धकदैत्यविशोषकरे ।।२ ।।
जय महिषविमर्दिनि शूलकरे, जय लोकसमस्तकपापहरे ।
जय देवि पितामहविष्णुनते, जय भास्करशक्रशिरोऽवनते ।।३ ।।
जय षण्मुखसायुधईशनुते, जय सागरगामिनि शम्भुनुते ।
जय दुःखदरिद्र विनाशकरे, जय पुत्रकलत्रविवृद्धिकरे ।।४ ।।
जय देवि समस्त शरीरधरे, जय नाक विदर्शिनि दुःख हरे ।
जय व्याधि विनाशिनि मोक्षकरे, जय वांछित दायिनि सिद्धिवरे।।५ ।।
एतद् व्यासकृतं स्तोत्रं यः पठेन्नियतः शुचिः ।
गृहे वा शुद्ध भावेन प्रीता भगवती सदा ।।६ ।।

राम-पूजनविधिः

प्रातः काल स्नान, सन्ध्या आदि नित्यकर्मसे निवृत्त होकर रामपूजनार्थ पवित्र आसन पर बैठकर आचमन, प्राणायाम कर 'ॐ अपवित्रः पवित्रो वा' इससे अपने शरीरका और पूजनसामग्रीका पवित्र जलसे सम्प्रोक्षण करें। पश्चात् अपने दाहिने हाथमें अक्षत, पुष्प तथा जल लेकर इस प्रकार सङ्कल्प करें—

"ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः आर्यावर्तैकदेशान्तर्गते अमुकक्षेत्रे अमुकनगरे (अमुकग्रामे) विक्रमशकेसम्वत्सरे बौद्धावतारे अमुकनामसंवत्सरे अमुकायने अमुकर्तौ महामाङ्गल्यप्रदमासोत्तमेमासे अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकवासरे अमुकनक्षत्रे अमुकयोगे अमुककरणे अमुकराशिस्थिते चन्द्रे अमुकराशिस्थिते सूर्ये अमुकराशिस्थिते देवगुरौ शेषेषु ग्रहेषु यथायथाराशिस्थानस्थितेषु सत्सु एवं ग्रहगुणगणविशेषणविशिष्टायां शुभपुण्यतिथौ अमुकगोत्रः अमुकशर्माऽहम् (अमुकवर्माऽहम्, अमुकगुप्तोऽहम्) ममात्मनः श्रुति-स्मृति-पुराणोक्तफलप्राप्त्यर्थं धर्मार्थकाममोक्षचतुर्विधपुरुषार्थसिद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं यथोपचारैः श्रीरामपूजनमहं करिष्ये।"

ध्यान

नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गं सीतासमारोपितवामभागम् ।
पाणौ महासायकचारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम् ॥

आवाहन

ॐ सहस्त्रशीर्षा पुरुषः सहस्त्राक्षः सहस्त्रपात् ।
स भूमिꣳ सर्व्वतस्पृत्त्वाऽत्त्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥
आवाहयामि विश्वेशं जानकीवल्लभं प्रभुम् ।
कौसल्यातनयं विष्णुं श्रीरामं प्रकृतेः परम् ॥

श्री भगवते रामाय नमः आवाहनं समर्पयामि ।

ॐ पुरुषऽएवेदꣳ सर्व्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम् ।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥
राजाधिराज राजेन्द्र रामचन्द्र महीपते ।
स्वर्णसिंहासनं दिव्यं गृहाण करुणाकर ॥
श्रीभगवते रामाय नमः आसनं समर्पयामि ।

पाद्य

ॐ एतावानस्य महिमाऽतो ज्यायांश्च पूरुषः ।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥
त्रैलोक्यपावनानन्त सूर्यवंशमहामणे ।
पाद्यं गृहाण देवेश राम-राजीवलोचन ॥

श्रीभगवते रामाय नमः पादयोः पाद्यं समर्पयामि ।

अर्घ्य

रजत अथवा ताम्रके अर्घ्यपात्रमें गङ्गाजल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, तुलसीदल लेकर भगवान् रामको अर्घ्य-प्रदान करें—

ॐ त्रिपादूर्ध्वं ऽउदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः ।
ततो विष्वङ् व्यक्क्रामत्साशनाशने ऽअभि ॥
परिपूर्ण परानन्द कौशल्यानन्दवर्द्धन ।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं सर्वलोकैकरक्षक ॥

श्रीभगवते रामाय नमः अर्घ्यं समर्पयामि ।

आचमन

ॐ ततो विराडजायत विराजो ऽअधिपूरुषः ।
स जातो ऽअत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ॥

सत्यप्रिय सत्यसन्ध रावणान्तक प्रभो ।
गृहाणाचमनं देव सर्वलौकैकरक्षक ॥

श्रीमधुपर्क भगवते रामाय नमः आचमनीयं जलं समर्पयामि ।

ॐ यन्मधुनो मधव्यं परमꣳ रूपमन्नाद्यम्। तेनाहं मधुनोमधव्येन परमेण रूपेणान्नाद्येन परमो मधव्योऽ-न्नादोऽसानि ॥

जानकीहृदयानन्द प्रजावत्सलतत्पर ।
मधुपर्कं गृहाणेमं मर्यादापालक प्रभो ॥

श्रीभगवते रामाय नमः मधुपर्कं समर्पयामि ।

स्नान

ॐ तस्माद्यज्ञात्सर्व्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम् ।
पशूँस्ताँश्चक्क्रे व्वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये ॥

गङ्गासरस्वतीरेवापयोष्णीनर्मदाजलैः ।
स्नापितोऽसि मया देव तथा शान्तिं कुरुष्व मे ॥

श्रीभगवते रामाय नमः स्नानार्थं जलं समर्पयामि ।

पञ्चामृतस्नान

ॐ पञ्चनद्यः सरस्वतीमपि यन्ति सस्रोतसः ।
सरस्वती तु पञ्चधा सो देशेऽभवत्सरित् ॥

पञ्चामृतं मयानीतं पयो दधि घृतं मधु ।
शर्करा च मया दत्तं गृहाण परमेश्वर ॥

श्रीभगवते रामाय नमः पञ्चामृतस्नानं समर्पयामि ।

शुद्धोदकस्नान

ॐ शुद्धवालः सर्व्वशुद्धवालो मणिवालस्त ऽआश्विनाः ।
श्येतः श्येताक्षोऽरुणस्ते कर्ण्णा यामा ऽअवलिप्ता रौद्रा नभोरूपाः पार्ज्जन्याः ॥

ब्रह्माण्डोदरमध्यस्थैस्तीर्थैश्च रघुनन्दन ।
स्नापयिष्याम्यहं भक्त्या प्रसीद परमेश्वर ॥

श्रीभगवते रामाय नमः शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि ।

सुगन्धिद्रव्यस्नान

ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम् ।
उर्व्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीयमाऽमृतात् ॥

मनोहरं गन्धद्रव्यं रुचिरागुरुवासितम् ।
देहशोभकरं नित्यं गृहाण परमेश्वर ॥

श्रीभगवते रामाय नमः सुगन्धिद्रव्यस्नानं समर्पयामि ।

पश्चात् 'ॐ सहस्त्रशीर्षा पुरुषः०' इस पुरुषसूक्त (३१।१-१६) से तथा 'ॐ इदं विष्णुर्व्विचक्रमे०', 'ॐ व्विष्णोः कर्म्माणि०', 'ॐ तद्विष्णोः परमं पदम्०', 'ॐ तद्विप्रासो व्विपन्यवः०' इन मन्त्रोंसे भगवान् रामका अभिषेक करें।

वस्त्र

ॐ तस्माद्यज्ञात् सर्व्वहुत ऽऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दाꣳसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥

तप्तकाञ्चनवर्णाभं पट्टवस्त्रमिदं प्रभो ।
गृहाण त्वं जगन्नाथ रामचन्द्र महाद्युते ॥

श्री भगवते रामाय नमः वस्त्रं समर्पयामि ।

यज्ञोपवीत

ॐ तस्मादश्वा ऽअजायन्त ये के चोभयादतः ।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता ऽअजावयः ॥
रामचन्द्र महाराज श्रीधरानन्द राघव ।
ब्रह्मसूत्रं सोत्तरीयं गृहाण रघुनन्दन ॥

श्रीभगवते रामाय नमः यज्ञोपवीतं समर्पयामि । यज्ञोपवीतान्ते आचमनीयं जलं समर्पयामि ।

चन्दन

ॐ तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन्पुरुषं जातमग्रतः ।
तेन देवा ऽअयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥
कुङ्कुमागरुकस्तूरीकर्पूरयुतचन्दनम् ।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं संगृहाण रघूत्तम ॥

श्रीभगवते रामाय नमः चन्दनं समर्पयामि ।

पुष्पमाला

ॐ यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधाव्यकल्पयन् ।
मुखं किमस्यासीत् किं बाहू किमूरू पादा ऽउच्येते ॥
प्रत्यग्रनीलकमलैः पुष्पमाल्यैश्च राघव ।
भक्त्या त्वां भूषयिष्यामि गृहाण रघुनायक ॥

श्रीभगवते रामाय नमः पुष्पमालां समर्पयामि ।

तुलसीदल

ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् ।
समूढमस्य पाꣳसुरे स्वाहा ॥

तुलसीं हेमरूपां च रत्नरूपां च मञ्जरीम् ।
भवमोक्षप्रदां तुभ्यमर्पयामि हरिप्रियाम् ॥

श्रीभगवते रामाय नमः तुलसीदलानि समर्पयामि ।

अङ्गपूजन

ॐ रामचन्द्राय नमः पादौ पूजयामि ॥१॥ ॐ राजीवलोचनाय नमः गुल्फौ पूजयामि ॥२॥ ॐ रावणान्तकाय नमः जानुनी पूजयामि ॥३॥ ॐ वाचस्पतये नमः ऊरू पूजयामि ॥४॥ ॐ विश्वरूपाय नमः जङ्घे पूजयामि ॥५॥ ॐ लक्ष्मणाग्रजाय नमः कटिं पूजयामि ॥६॥ ॐ विश्वमूर्तये नमः मेढ्रं पूजयामि ॥७॥ ॐ विश्वामित्रप्रियाय नमः नाभिं पूजयामि ॥८॥ ॐ परमात्मने नमः हृदयं पूजयामि ॥९॥ ॐ श्रीकण्ठाय नमः कण्ठं पूजयामि ॥१०॥ ॐ सर्वास्त्रधारिणे नमः बाहू पूजयामि ॥११॥ ॐ रघूद्वहाय नमः मुखं पूजयामि ॥१२॥ ॐ पद्मनाभाय नमः जिह्वां पूजयामि ॥१३॥ ॐ दामोदराय नमः दन्तान् पूजयामि ॥१४॥ ॐ सीतापतये नमः ललाटं पूजयामि ॥१५॥ ॐ ज्ञानगम्याय नमः शिरः पूजयामि ॥१६॥ ॐ सर्वात्मने नमः सर्वाङ्गं पूजयामि ॥१७॥

धूप

ॐ ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्याᳬ शूद्रो ऽअजायत ॥

वनस्पतिरसोद्भूतो गन्धाढ्यः सुमनोहरः ।
रामचन्द्र देवरूप धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥

श्रीभगवते रामाय नमः धूपमाघ्रापयामि ।

दीप

ॐ चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्य्यो ऽअजायत ।
श्रोत्राद् वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ॥

चन्द्र-सूर्य-बह्निनेत्र सर्वज्योतिप्रवर्त्तक ।
गृहाण दीपकं दिव्यं त्रैलोक्यतिमिरापहम् ॥

श्रीभगवते रामाय नमः दीपं दर्शयामि । हस्तप्रक्षालनम् ।

नैवेद्य

ॐ नाभ्या ऽआसीदन्तरिक्षᳪं शीर्ष्णो द्यौः समवर्त्तत ।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ२ ऽअकल्पयन् ॥
इदं दिव्यान्नममृतं रसैः षड्भिः समन्वितम् ।
रामचन्द्रेण देवेश नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम् ॥

श्रीभगवते रामाय नमः नैवेद्यं निवेदयामि । नैवेद्यान्ते आचमनीयं जलं समर्पयामि ।

करोद्वर्त्तन (चन्दन)

ॐ अᳪं शुनाते ऽअᳪं शुः पृच्यतां परुषा परुः ।
गन्धस्ते सोममवतु मदाय रसो ऽअच्युतः ॥
करोद्वर्त्तनकं देव सुगन्धैः परिवासितैः ।
गृहीत्वा मे वरं देहि परत्र च परां गतिम् ॥

श्रीभगवते रामाय नमः करोद्वर्त्तनार्थे गन्धं समर्पयामि । हस्तप्रक्षालनार्थं जलं समर्पयामि ।

ऋतुफल

ॐ याः फलिनीर्य्या ऽअफला ऽअपुष्पा याश्च पुष्पिणीः ।
बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वᳪं हसः ॥
नानाविधानि दिव्यानि मधुराणि फलानि वै ।
भक्त्यार्पितानि सर्वाणि गृहाण परमेश्वर ॥

श्रीभगवते रामाय नमः ऋतुफलानि समर्पयामि ।

ताम्बूल (पूगीफल-एला-लवङ्गसहित)

ॐ यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।
व्वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म ऽइध्मः शरद्धविः ॥

नागवल्लीदलैर्युक्तं पूगीफलसमन्वितम् ।
ताम्बूलं गृह्यतां देव कर्पूरैलादिसंयुतम् ॥

श्रीभगवते रामाय नमः ताम्बूलं समर्पयामि ।

दक्षिणा

ॐ हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक ऽआसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा व्विधेम ॥

हिरण्यगर्भगर्भस्थं हेमबीजं विभावसोः ।
अनन्तपुण्यफलदमतः शान्ति प्रयच्छ मे ॥

श्रीभगवते रामाय नमः दक्षिणाद्रव्यं समर्पयामि ।

आरती

ॐ इदꣳ हविः प्रजननं मे ऽअस्तु दशवीरꣳ सर्व्वगणꣳ स्वस्तये। आत्मसनि प्रजासनि पशुसनि लोकसन्यभयसनि। अग्निः प्रजां बहुलां मे करोत्त्वन्नं पयो रेतो ऽअस्मासु धत्त ॥१॥

ॐ आ रात्रि पार्थिवꣳ रजः पितुरप्रायि धामभिः। दिवः सदाꣳसि बृहती व्वि तिष्ठस ऽआ त्वेषं व्वर्त्तते तमः ॥२॥

कर्पूरगौरं करुणावतारं संसारसारं भुजगेन्द्रहारम् ।
सदा वसन्तं हृदयारविन्दे भवं भवानीसहितं नमामि ॥

श्रीभगवते रामाय नमः आरार्तिक्यं समर्पयामि ।

प्रदक्षिणा

ॐ सप्तास्यासन्परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः ।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना ऽअबध्नन्पुरुषं पशुम् ॥

यानि कानि च पापानि जन्मान्तरकृतानि च ।
तानि तानि प्रणश्यन्ति प्रदक्षिणपदे पदे ॥

श्रीभगवते रामाय नमः प्रदक्षिणां समर्पयामि ।

मन्त्रपुष्पाञ्जलि

ॐ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्म्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्व्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥

ॐ राजाधिराजाय प्रसह्य साहिने। नमो वयं वैश्रवणाय कुर्महे। स मे कामान् कामकामाय मह्यम्। कामेश्वरो वैश्रवणो ददातु। कुबेराय वैश्रवणाय महाराजाय नमः ॥

ॐ स्वस्ति। साम्राज्यं भोज्यं स्वाराज्यं वैराज्यं पारमेष्ठ्यं राज्यं महाराज्यमाधिपत्यमयं समन्तपर्यायी स्यात्, सार्वभौमः सार्वायुष आन्तादापरार्धात्, पृथिव्यै समुद्रपर्यन्ताया एकराडिति ॥

तदप्येष श्लोकोऽभिगीतो मरुतः परिवेष्टारो मरुत्तस्यावसन् गृहे। आविक्षितस्य कामप्रेर्विश्वेदेवाः सभासदः इति ॥ श्रीभगवते रामाय नमः मन्त्रपुष्पाञ्जलिं समर्पयामि ।

ॐ विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात्। सम्बाहुब्भ्यां धमति सम्पतत्त्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देवऽ एकः ॥

राम-गायत्री

ॐ दाशरथाय विद्महे सीतावल्लभाय धीमहि ।
तन्नो रामः प्रचोदयात् ॥

प्रणाम

नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गं सीतासमारोपितवामभागम् ।
पाणौ महासायकचारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम् ॥

क्षमा-प्रार्थना

मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं सुरेश्वर ।
यत्पूजितं मया देव परिपूर्णं तदस्तु मे ॥१॥

आवाहनं न जानामि न जानामि तवार्चनम् ।
पूजां चैव न जानामि क्षमस्व परमेश्वर ॥२॥

अपराधसहस्राणि क्रियन्तेऽहर्निशं मया ।
दासोऽयमिति मां मत्वा क्षमस्व परमेश्वर ॥३॥

अनायासेन मरणं विना दैन्येन जीवनम् ।
देहि मे कृपया राम त्वयि भक्तिमचञ्चलाम् ॥४॥

मत्समो नास्ति पापिष्ठः त्वत्समो नास्ति पापहा ।
इति मत्वा दयासिन्धो यथेच्छसि तथा कुरु ॥५॥

त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देव देव ॥६॥

अनन्तर निम्नाङ्कित वाक्य कह कर यह पूजनकर्म भगवान् रामको समर्पित करें—

अनेन यथाशक्तिकृतेन पूजनेन भगवान् श्रीरामः प्रीयतां न मम ।

पश्चात् भगवान् रामका स्मरण करें—

प्रमादात्कुर्वतां कर्म प्रच्यवेताध्वरेषु यत् ।
स्मरणादेव तद्विष्णोः सम्पूर्णं स्यादिति श्रुतिः ।
यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञकियादिषु ।
न्यूनं सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम् ॥

ॐ विष्णवे नमः ॥ ॐ विष्णवे नमः ॥ ॐ विष्णवे नमः ॥

हनुमत्पूजनविधिः

प्रातःकाल स्नान, सन्ध्या आदि नित्यकर्म से निवृत्त होकर हनुमत्पूजनार्थ पवित्र आसन पर बैठकर आचमन, प्राणायाम कर 'ॐ अपवित्रः पवित्रो वा०' इससे अपने शरीर का और पूजन सामग्री का पवित्र जल से सम्प्रोक्षण करें। पश्चात् अपने दाहिने हाथ में अक्षत, पुष्प तथा जल लेकर इस प्रकार सङ्कल्प करें—

"ॐ विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः० आर्यावर्तैकदेशान्तर्गत् अमुकक्षेत्रे अमुक नगरे (अमुकग्रामे) विक्रमशके सम्वत्सरे बौद्धावतारे अमुकनामसंवत्सरे अमुकायने अमुकऋतौ महामाङ्गल्यप्रदमासोत्तमेमासे अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकवासरे अमुकनक्षत्रे अमुकयामे अमुककरणे अमुकराशिस्थिते चन्द्रे अमुकराशिस्थिते देवगुरौ शेषेषु ग्रहेषु यथायथाराशिस्थानस्थितेषु सत्सु एवं ग्रहगुणगणविशेषणविशिष्टायां शुभपुण्यतिथौ अमुकगौत्रः अमुकशर्माऽहम् (अमुकवर्माऽहम्, अमुकगुप्तोऽहम्) ममात्मनः श्रुति-स्मृति-पुराणोक्तफलप्राप्त्यर्थं धर्मार्थकाममोक्षचतुर्विधपुरुषार्थसिद्धिद्वारा श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं यथोपचारैः श्रीहनुमत्पूजनमहं करिष्ये।"

ध्यान

मनोजवं मारुततुल्यवेगं जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम् ।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं श्रीरामदूतं शरणं प्रपद्ये ॥

आवाहन

ॐ नमस्ते रुद्र मन्यव ऽउतो त ऽइषवे नमः ।
बाहुभ्यामुतते नमः ॥

श्रीरामचरणाम्भोज-युगलस्थिरमानसम् ।
आवाहयामि देवेश हनुमंस्त्वां समर्चितम् ॥

श्रीहनुमते नमः आवाहनं समर्पयामि। आवाहनार्थे पुष्पाणि समर्पयामि।

आसन

ॐ या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी ।
तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभि चाकशीहि ॥

नवरत्नमयं दिव्यं चतुरस्त्रमनुत्तमम् ।
सौवर्णमानसं तुभ्यं कल्पये कपिनायक ॥

श्रीहनुमते नमः आसनं समर्पयामि । आसनार्थे अक्षतान् समर्पयामि ।

पाद्य

ॐ यामिषुं गिरिशन्त हस्ते बिभर्ष्यस्तवे ।
शिवाङ्गिरित्रताङ्कुरु मा हिंꣳ सीः पुरुषं जगत् ॥

सुवर्णकलशानीतं जलं सुष्ठ सुवासितम् ।
पादयोः पाद्यमञ्जनीनन्दन प्रतिगृह्यताम् ॥

श्रीहनुमते नमः पाद्यं समर्पयामि ।

अर्घ्य

ॐ शिवेन व्वचसा त्त्वा गिरिशाच्छा व्वदामसि ।
यथा नः सर्व्वमिज्जगदयक्ष्मꣳ सुमना ऽअसत् ॥

कुसुमाक्षतसम्मिश्रं दिव्यार्घ्यं रत्नसंयुतम् ।
दास्यामि प्रेमतस्तुभ्यं गृह्यतां कपिपुङ्गव ॥

श्रीहनुमते नमः अर्घ्यं समर्पयामि ।

आचमन

ॐ अध्यवोचदधिवक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक् ।
अहींश्च सर्व्वाञ्जम्भयन्त्सर्व्वाश्च यातु धान्योऽधराचीः परासुव ॥

हृद्यं सुगन्धसम्पन्नं शुद्धं शुद्धाम्बुसत्कृतम् ।
वीरध्वज दयासिन्धो गृहाणाचमनादिकम् ॥

श्रीहनुमते नमः आचमनीयं जलं समर्पयामि ।

स्नान

ॐ असौ यस्ताम्रो ऽअरुण ऽउत बब्भ्रुः सुमङ्गलः ।
ये चैनꣳ -रुद्द्राऽअभितो दिक्षु श्रिताः सहस्त्रशोऽवैषाꣳ हेड ऽईमहे ॥

मन्दाकिन्याः समानीतैर्हैमाम्भोरुहवासितैः ।
स्नानं कुरुष्व देवेश सलिलैश्च सुगन्धिभिः ॥

श्रीहनुमते नमः स्नानीयं जलं समर्पयामि ।

पञ्चामृतस्नान

ॐ पञ्च नद्यः सरस्वतीमभ्भयन्ति सस्त्रोतसः ।
सरस्वती तु पञ्चधा सो देशेऽभवत्सरित् ॥

पञ्चामृतं मयाऽऽनीतं पयोदधि घृतं मधु ।
शर्करा च समायुक्तं स्नानार्थं प्रतिगृह्यताम् ॥

श्रीहनुमते नमः पञ्चामृतस्नानं समर्पयामि । पञ्चामृतस्नानान्ते शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि । आचमनीयं जलं समर्पयामि ।

शुद्धोदकस्नान

ॐ शुद्धवालः सर्व्वशुद्धवालो मणिवालस्त ऽआश्विनाः ।
श्येतः श्येताक्षोऽरुणस्ते रुद्द्राय पशुपतये कर्ण्णा यामा ऽ
अवलिप्ता रौद्द्रा नभोरूपाः पार्ज्जन्याः ॥

सुवर्णकलशानीतैर्गङ्गादिसरिदुद्भवैः ।
शुद्धोदकैः कपीश त्वां संस्नापयामि मारुते ॥

श्रीहनुमते नमः शुद्धोदकस्नानं समर्पयामि । शुद्धोदकस्नानान्ते आचमनीयं जलं समर्पयामि ।

मेखला

ग्रथितां नवभी रत्नैर्मेखलां त्रिगुणीकृताम् ।
मौञ्जीं मुञ्जामयीं पीतां गृहाण पवनात्मज ॥

श्रीहनुमते नमः मेखलां समर्पयामि ।

कौपीन (लँगोट)

कौशेयं कपिशार्दूल हरिद्राक्तं सुशोभनम् ।
कटिसूत्रं गृहाणेदं कौपीनं मङ्गलास्पदम् ॥

श्रीहनुमते नमः कौपीनं समर्पयामि ।

वस्त्र

ॐ असो योऽवसर्प्पति नीलग्ग्रीवो व्विलोहितः ।
उतैनं गोपा ऽअदृश्रन्नदृश्रन्नुदहार्य्यः स दृष्टो मृडयाति नः ॥

पीताम्बरसुवर्णाभं दिव्यतेजः समन्वितम् ।
अङ्गसंरक्षणं देव गृह्यतां कपिनायक ॥

श्रीहनुमते नमः वस्त्रं समर्पयामि । वस्त्रान्ते आचमनीयं जलं समर्पयामि ।

यज्ञोपवीत

ॐ नमोस्तु नीलग्ग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुषे ।
अथो ये ऽअस्य सत्त्वानोऽहन्तेभ्योऽकरं नमः ॥

ब्रह्मणा निर्मित्तं सूत्रं विष्णुग्रन्थिसमन्वितम् ।
दिव्यं यज्ञोपवीतं ते ददामि पवनात्मज ॥

श्रीहनुमते नमः यज्ञोपवीतं समर्पयामि । यज्ञोपवीतान्ते आचमनीयं जलं समर्पयामि ।

गन्ध (चन्दन)

ॐ प्रमुञ्च धन्वनस्त्वमुभयोरात्त्न्योर्ज्याम् ।
याश्च ते हस्त ऽइषवः पराता भगवो व्वप ॥

दिव्यकर्पूरसंयुक्तं मृगनाभिसमन्वितम् ।
संकुङ्कुमं पीतगन्धं ललाटे धारय प्रभो ॥

श्रीहनुमते नमः गन्धं समर्पयामि ।

अक्षत

ॐअक्षन्नमीमदन्त ह्यवप्रिया ऽअधूषत ।
अस्तोषत स्वभानवो व्विप्रा नविष्ठया मती योजान्विन्द्रते हरी ॥

अक्षतान्निर्मलान् दिव्यान् कुङ्कुमाक्तान् सुशोभनान् ।
गृहाणेमान् वायुपुत्र प्रसीद परमेश्वर ॥

श्रीहनुमते नमः अक्षतान् समर्पयामि ।

पुष्पमाला

ॐ व्विज्यं धनुः कपर्द्दिनो व्विशल्ल्यो बाणवाँ२ ऽउत ।
अनेशन्नस्य या ऽइषव ऽआभुरस्य निषङ्गधिः ॥

प्रत्यग्रनीलकमलैः पुष्पमाल्यैश्च वानर ।
भक्त्या त्वां भूषयिष्यामि गृहाण कपिपुङ्गव ॥

श्रीहनुमते मनः पुष्पमालां समर्पयामि ।

तुलसीदल

ॐ इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् ।
समूढमस्य पꣳ सुरे स्वाहा ॥

श्रीहनुमते नमः तुलसीदलानि समर्पयामि ।

अबीर (गुलाल)

ॐ अहिरिव भोगैः पर्य्येति बाहुँ ज्याया हेतिं परिबाधमानः ।
हस्तघ्नो व्विश्वा व्वयुनानि व्विद्वान् पुमान् पुमाꣳ सं परि पातु व्विश्वतः ॥

अवीरं च गुलालं च हरिद्रादिसमन्वितम् ।
नानापरिमलं द्रव्यं गृहाण परमेश्वर ॥

श्रीहनुमते नमः गुलालं समर्पयामि ।

सिन्दूर

ॐ सिन्धोरिव प्राद्ध्वने शूघनासो
व्वतप्रमियः पतयन्ति यह्वाः ।
घृतस्य धारा ऽअरुषो न व्वाजी
काष्ठा भिन्दन्नूर्मिभिः पिन्वमानः ॥
दिव्यनागसमुद्भुतं सर्वमङ्गलकारकम् ।
तैलेनाभ्यङ्गयिष्यामि सिन्दूरं गृह्यतां प्रभो ॥

श्रीहनुमते नमः सिन्दूरं समर्पयामि ।

सुगन्धिद्रव्य

ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम् ।
उर्व्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीयमाऽमृतात् ॥
मनोहरं गन्धद्रव्यं रुचिरागरुवासितम् ।
देहशोभाकरं नित्यं गृहाण कपिपुङ्गव ॥

श्रीहनुमते नमः सुगन्धिद्रव्यं समर्पयामि ।

अङ्गपूजन

हनुमते नमः पादौ पूजयामि ॥१॥ सुग्रीवसखाय नमः गुल्फौ पूजयामि ॥२॥ अङ्गदमित्राय नमः जंघे पूजयामि ॥३॥ रामदासाय नमः ऊरू पूजयामि ॥४॥ अक्षघ्नाय नमः कटिं पूजयामि ॥५॥ लङ्कादहनाय नमः बालं पूजयामि ॥६॥ [illegible] नमः नाभिं पूजयामि ॥७॥ सागरोल्लङ्घनाय नमः

मध्ये पूजयामि ॥८ ॥ लङ्कामर्दनाय नमः केशावलिं पूजयामि ॥९ ॥ सञ्जीवनीहर्त्रे नमः स्तनौ पूजयामि ॥१० ॥ सौमित्रप्राणदाय नमः वक्षः पूजयामि ॥११ ॥ कुण्ठितदशकण्ठाय नमः कण्ठं पूजयामि ॥१२ ॥ रामाभिषेककारिणे नमः हस्तौ पूजयामि ॥१३ ॥ मन्त्ररचितरामायणाय नमः वक्त्रं पूजयामि ॥१४ ॥ प्रसन्नवदनाय नमः वदनं पूजयामि ॥१५ ॥ पिङ्गनेत्राय नमः नेत्रे पूजयामि ॥१६ ॥ श्रुतिपारगाय नमः श्रुतिं पूजयामि ॥१७ ॥ ऊर्ध्वपुण्ड्रधारिणे नमः कपोलं पूजयामि ॥१८ ॥ मणिकण्ठमालिने नमः शिरः पूजयामि ॥१९ ॥ सर्वाभीष्टप्रदाय नमः सर्वाङ्गं पूजयामि ॥२० ॥

धूप

ॐ या ते हेतिर्म्मीढुष्टम हस्ते बभूव ते धनुः ।
तयास्मान् व्विश्वतस्त्वमयक्ष्मया परिभुज ॥
दिव्यं सुगुग्गुलं साज्यं दशाङ्गं ससुगन्धकम् ।
गृहाण मारुते धूपं सुप्रियं घ्राणतर्पणम् ॥

श्रीहनुमते नमः धूपमाघ्रापयामि ।

दीप

ॐ परि ते धन्वनो हेतिरस्मान् व्वृणक्तु विश्वतः ।
अथो य ऽइषुधिस्तवारे ऽअस्मन्निधेहि तम् ॥
घृतपूरितमुज्ज्वालं वर्तिकर्पूरसंयुतम् ।
दीपं गृहाणं देवेश अञ्जन्यानन्दवर्धक ॥

श्रीहनुमते नमः दीपं दर्शयामि । हस्तप्रक्षालनम् ।

नैवेद्य

ॐ अवतत्त्य धनुष्ट्वᳬं सहस्राक्ष शतेषुधे ।
निशीर्य्य शल्यानां मुखा शिवो नः सुमना भव ॥

शाल्यन्नं मोदकं दिव्यं शाकापूपसमन्वितम् ।
साज्यं दधि पायसं च नैवेद्यं गृह्यतां प्रभो ॥

श्रीहनुमते नमः नैवेद्यं निवेदयामि । नैवेद्यान्ते आचमनीयं जलं समर्पयामि ।

ऋतुफल

ॐ याः फलिनीर्य्या ऽअफला ऽअपुष्पा यश्च पुष्पिणीः ।
बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वꣳ ह़सः ॥

फलं नानाविधं स्वादु पक्वं शुद्धं सुशोभितम् ।
समर्पितं मया देव गृह्यतां कपिनायक ॥

श्रीहनुमते नमः ऋतुफलानि समर्पयामि ।

ताम्बूल (पूगीफल-एला-लवङ्गसहित)

ॐ उत स्मास्य द्द्रवतस्तुरण्यतः पर्ण्णन्नवे रनुवातिप्रगर्द्धिनः ।
श्येनस्येव द्ध्रजतो अङ्कसं परि दधिक्राब्णः सहोर्ज्जा तरित्रतः स्वाहा ॥

ताम्बूलं भगवद्भोग्यं मुखसौगन्धिकृत्परम् ।
पावनेय महाबाहो ताम्बूलं गृह्यतां कपे ॥

श्रीहनुमते नमः ताम्बूलं समर्पयामि ।

दक्षिणा

ॐ हिरण्यगर्ब्भः समवर्त्तताग्ग्रे भूतस्य जातः पतिरेक ऽआसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा व्विधेम ॥

हिरण्यगर्भगर्भस्थं हेमबीजं विभावसो ।
अनन्तपुण्यफलदमतः शान्तिं प्रयच्छ मे ॥

श्रीहनुमते नमः दक्षिणां समर्पयामि ।

आरती

ॐ इदꣳ हविः प्रजननं मे ऽअस्तु दशवीरꣳ सर्वगणꣳ स्वस्तये। आत्मसनि प्प्रजासनि पशुसनि लोकसन्यभयसनि। अग्निः प्प्रजां बहुलां मे करोत्वन्नं पयो रेतोऽअस्मासु धत्त ॥१॥

ॐ आ रात्रि पार्थिवꣳ रजः पितुरप्प्रायि धामभिः ।
दिवः सदाꣳसि बृहती व्वि तिष्ठसऽआ त्त्वेषं व्वर्तते तमः ॥२॥
कर्पूरगौरं करुणावतारं संसारसारं भुजगेन्द्रहारम् ।
सदा बसन्तं हृदयारविन्दे भवं भवानीसहितं नमामि ॥

प्रदक्षिणा

ॐ मा नो महान्तमुत मा नो ऽअर्ब्भकं मा न ऽउक्षन्तमुत मा न ऽउक्षितम् ।
मा नो व्वधीः पितरं मोत मातरं मा नःप्रियांस्तन्वो रुद्द्र प्रिरीरिषः ॥
यानि कानि च पापानि जन्मान्तरकृतानि च ।
तानि तानि प्रणश्यन्ति प्रदक्षिण पदे पदे ॥

श्रीहनुमते नमः प्रदक्षिणां समर्पयामि।

मन्त्रपुष्पाञ्जलि

ॐ मा नस्तोके तनये मा न ऽआयुषि मा नो गोषु मा नो ऽअश्वेषु रीरिषः। मा नो व्वीरानुद्द्र भामिनो व्वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे ॥

ॐ यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्म्माणि प्प्रथमान्या सन्। ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्पूर्व्वे साध्याः सन्ति देवाः ॥

ॐ राजाधिराजाय प्रसह्य साहिने। नमो वयं वैश्रवणाय कुर्महे। स मे कामान् कामकामाय मह्यम्। कामेश्वरो वैश्रवणो ददातु। कुबेराय वैश्रवणाय महाराजाय नमः।

ॐ स्वस्ति । साम्राज्यं भौज्यं स्वाराज्यं वैराज्यं पारमेष्ठ्यं राज्यं महाराज्यमाधिपत्यमयं समन्तपर्यायी स्यात्, सार्वभौमः सार्वायुष आन्तादापरार्धात्, पृथिव्यै समुद्रपर्यन्ताया एकराडिति ।

तदप्येष श्लोकोऽभिगीतो मरुतः परिवेष्टारो मरुत्तस्यावसन् गृहे । आविक्षितस्य कामप्रेर्विश्वेदेवाः सभासद इति ॥

ॐ व्विश्वतश्चक्षुरुत व्विश्वतो मुखो व्विश्वतो बाहुरुत व्विश्वतस्पात् । सम्बाहुभ्यां धमति सम्पतत्त्रैर्द्यावाभूमीजनयन्देव ऽएकः ॥

श्रीहनुमते नमः मन्त्रपुष्पाञ्जलिं समर्पयामि ।

हनुमद्-गायत्री

ॐ रामदूताय विद्महे वायुपुत्राय धीमहि ।
तन्नो हनुमत्प्रचोदयात् ॥

क्षमा-प्रार्थना

मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं कपीश्वर ।
यत्पूजितं मया देव परिपूर्णं तदस्तु मे ॥१ ॥
आवाहनं न जानामि न जानामि तवार्चनम् ।
पूजां चैव न जानामि क्षमस्व परमेश्वर ॥२ ॥
त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देव देव ॥३ ॥

अनया पुजया श्रीहनुमद्देवता प्रीयतां न मम ।

ॐ विष्णवे नमः । ॐ विष्णवे नमः । ॐ विष्णवे नमः ॥

महामृत्युञ्जय मन्त्र-जप-विधि

जब किसी व्यक्ति को महाव्याधि या शारीरिक महाअरिष्ट उपस्थित हो जाय तब महामृत्युञ्जय का जप स्वयं करे या किसी योग्य ब्राह्मण द्वारा करावे। जप आरम्भ के पूर्व पार्थिव शिव या नर्मदेश्वर शिव की या अन्य शिवलिंग की पूजा करके यथा सम्भव महामृत्युञ्जय मन्त्र का जप करना उत्तम है।

आचमन-प्राणायाम करके शान्तिपाठ, गणेश स्मरण करके संकल्प करे—

संकल्प

ॐ अद्येत्यादि अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकवासरे अमुकगोत्रोत्पन्नोऽमुकशर्माहं मम (अथवा अमुकगोत्रोत्पन्नस्य यजमानस्य) शरीरे समुत्पन्नाखिलारिष्टनिवृत्तये श्रीमृत्युञ्जयप्रसादाद्दीर्घायुष्यसततारोग्यतावाप्तये अमुक संख्य परिमितं श्रीमहामृत्युञ्जय मन्त्र जपं करिष्ये।

विनियोगः

ॐ अस्य श्री महामृत्युञ्जय मंत्रस्य वशिष्ठ ऋषिः श्री मृत्युञ्जय रुद्रो देवता। अनुष्टप्छन्दः। ह्रौं बीजं जूं शक्तिः। सः कीलकं मृत्युञ्जय प्रीत्यर्थं जपे विनियोगः॥

ऋष्यादिन्यासः

ॐ वशिष्ठर्षये नमः शिरसि। ॐ अनुष्टप्छन्दसे नमो मुखे। ॐ श्री महामृत्युञ्जय रुद्र देवतायै नमो हृदये। ॐ ह्रौं बीजाय नमो गुह्ये। ॐ जूं शक्तये नमः पादयोः। ॐ सः कीलकाय नमः सर्वाङ्गेषु॥

कराङ्गन्यासः

ॐ त्र्यम्बकं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ यजामहे तर्जनीभ्यां नमः। ॐ सुगन्धिम्पुष्टि वर्द्धनं मध्यमाभ्यां नमः। ॐ उर्व्वारुकमिव बन्धनात् अनामिकाभ्यां नमः। ॐ मृत्योर्मुक्षीय कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ॐ मामृतात् करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः॥

हृदयादिन्यासः

ॐ त्र्यम्बकं हृदयाय नमः। यजामहे शिरसे स्वाहा। सुगन्धि पुष्टिवर्धनं शिखायै वषट्। उर्वारुकमिव बन्धनात् कवचाय हुम्। मृत्योर्मुक्षीय नेत्रत्रयाय वौषट्। मामृतात् अस्त्राय फट्॥

पदन्यासः

त्र्यम्बकं शिरसि। यजामहे भ्रुवोः। सुगन्धि नेत्रयोः। पुष्टिवर्द्धनं मुखे। ऊर्वारुकं गण्डयोः। इव हृदये। बन्धनात् जठरे। मृत्योः लिङ्गे। मुक्षीय उर्वोः। मा जान्वोः। अमृतात् पादयोः।

इस प्रकार न्यास कर मूल मन्त्र से दोनों हाथों द्वारा मस्तक से पैर तक सभी अंगों का स्पर्शकर मृत्युञ्जय भगवान शिव का ध्यान करें।

ध्यान

हस्ताम्भोजयुगस्थकुम्भयुगलादुद्धृत्य तोयं शिरः ।
सिञ्चन्तं करयोर्युगेन दधतं स्वांके सकुम्भौ करौ ॥
अक्षस्त्रग्मृगहस्तमम्बुजगतं मूर्द्धस्थचन्द्रंस्त्रवत् ।
पीयूषोत्रतनुं भजे सगिरिजं मृत्युञ्जयं त्र्यम्बकम् ॥१॥
चन्द्रोद्भासितमूर्द्धजं सुरपतिं पीयूषपात्रं दधत् ।
हस्ताब्जेन दधत्सुदिव्यममलं हास्यास्यपंकेरुहम् ॥
सूर्येन्द्वग्निविलोचनं करतलैः पाशाक्षसूत्रांकुशाम् ।
भोजं विभ्रतमक्षयं पशुपतिं मृत्युञ्जयं संस्मरेत् ॥२॥

इस प्रकार ध्यान कर मानसोपचार से भगवान् मृत्युञ्जयी शिव की पूजा करें।

मानस पूजा

ॐ लं पृथिव्यात्मकं गन्धं समर्पयामि। ॐ हं आकाशात्मकं पुष्पं समर्पयामि। ॐ यं वाय्वात्मकं धूपं समर्पयामि। ॐ रं तेजसात्मकं दीपं सम-

र्पयामि। ॐ यं अमृतात्मकं नैवेद्यं समर्पयामि। ॐ सं सर्वात्मकं मन्त्रपुष्पं समर्पयामि।

महामृत्युञ्जय मूल मन्त्र

ॐ ह्रौं जूं सः ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम्। ऊर्व्वारुकमिवबन्धनान्मृत्योर्मु क्षीयमामृतात्। ॐ स्वः भुवः भू ॐ सः जूं ह्रौं ॐ॥

दाहिने हाथ में गोमुखी में माला रखकर जप-मुद्रा द्वारा जप करें।

प्रार्थना— गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम्।
सिद्धिर्भवतु मे देव त्वत्प्रसादान्महेश्वर॥

जप करने के उपरान्त निम्न वाक्य का उच्चारण करें—

अनेन महामृत्युञ्जयजपाख्येन कर्मणा श्री महामृत्युञ्जयः प्रीयतां न मम।

यह वाक्य बोलकर जप अर्पण करें व मूर्ति की तरफ जल छोड़ें। जप की साङ्गता सिद्धि के लिए जप का दशांश हवन, हवन का दशांश तर्पण, तर्पण का दशांश मार्जन. तद्दशांश ब्राह्मण भोजन करावें। इसका पुरश्चरण सवा लक्ष है।

कामना भेद से महामृत्युञ्जय जप हवन-विधान

विल्व के फल, विल्वपत्र, खजूर और अन्य यज्ञफल नारियल आदि का घी के साथ हवन और ब्राह्मण भोजन कराने से समस्त कामनाओं की सिद्धि होती है।

आयु की कामना से केवल घी द्वारा एक लाख, दश हजार, एक हजार या एक सौ आठ आहुति से हवन करे। आरोग्य की कामना से घी मिले आक के काष्ठ से या गाय के घी मिली खीर से उपर्युक्त संख्या में हवन करें। रोगों की शान्ति के लिये घी मिले पलाश काष्ठ से हवन करे।

ज्वर के उपद्रव में बिना छेदवाले आम के पत्ते को दूध में भिगो कर हवन करें। गुरिच के टुकड़े अथवा खैर काष्ठ को दूध या घी के साथ हवन करने से प्रमेह की बीमारी शान्त होती है। गूलर के काष्ठ, आँवला, चावल या काले तिल का घी

के साथ हवन करने से गुल्म रोग नष्ट होता है। शमी काष्ठ के द्वारा हवन करने से अतिसार की बीमारी मिटती है। पलाश काष्ठ के हवन करने से आँख की बीमारी मिट जाती है। धत्तूर काष्ठ द्वारा हवन करने से मृगी रोग शान्त होता है। विजौरा या गुरिच काष्ठ द्वारा हवन करने से पीलिया रोग दूर होता है। तीन प्रकार के मधुर घी, गुड़, मधु से होम करने पर राजयक्ष्मा शान्त होता है। तीन मधुर युक्त मसूर में घी मिलाकर हवन करने से कुष्ठ रोग मिटता है। श्वेत सरसों के तेल के साथ हवन करने से भी कुष्ठ रोग मिटता है। दूध मिली दूर्वा, रक्त चन्दन या पीपल काष्ठ से हवन करे तो रक्तस्राव शान्त होता है। तीन प्रकार का मधुर तीन फल इनमें मधु, दूध और घी मिलाकर हवन करने से भी सभी रोग शान्त होते हैं। आयुर्वेद शास्त्र में जिस रोग की जो औषध है, उस औषध को घी में भिंगो कर हवन करने से भी रोग शान्त हो जाता है। विल्व के काष्ठ, फल या पत्र में घी मिलाकर हवन करने से अतुल लक्ष्मी प्राप्त होती है। गीले वस्त्र पहन कर बरगद के काष्ठ से हवन करने से वर्षा होती है।

नाभि मात्र जल में खड़े होकर शिवजी का ध्यान करते हुए मृत्युञ्जय मन्त्र के जप करने से सद्यः वर्षा होती है।

आयुवृद्धि के लिए जन्मोत्सव (वर्षगाँठ)

जन्म के दिन स्त्री-पुत्र सहित यजमान ब्राह्म मुहूर्त में उठकर तिल और तण्डुलचूर्ण मिले गंगाजल से स्नान कर सन्ध्या आदि नित्यक्रिया करे। इसके बाद पूजासामग्री एकत्र करके नवीन वस्त्र और आभूषण धारण कर शुभ आसन पर पूर्वमुख बैठकर अपने से दाहिने भाग में पत्नी और पत्नी के दाहिने पुत्र को विराजमान करें। आचमन-प्राणायाम आदि करके स्वस्तिवाचन एवं गणेश स्मरण करे। अपने दाहिने हाथ में अक्षत, पुष्प, जल, द्रव्य लेकर संकल्प करें—

अमुकगोत्रोऽमुक शर्मा (वर्मा गुप्तो वा) हं अस्य बालकस्य (मम वा) दीर्घायुः श्रीकीर्तितेजोवृद्धिद्वारा श्रीजगदीश्वरप्रीतये च अद्य दिने वर्धापनाख्यं कर्म करिष्ये। आदौ निर्विघ्नतासिद्धये गणपत्यादिदेवानां पूजनं [illegible] करिष्ये।

संकल्प करके गणेश पूजा, वरुण, कलश पूजा, नवग्रह पूजा, षोडश मातृका पूजा, रक्षाबन्धन आदि कर लें।

इसके बाद पाटे पर वस्त्र बिछाकर २१ स्थान पर चावल के आसन बनाकर निम्नलिखित २१ देवताओं का बायें हाथ में अक्षत लेकर निम्ननाम मन्त्र से दाहिने हाथ द्वारा छोड़ते हुए आवाहन करें—

ॐ गणपतये नमः गणपतिमावाहयामि ॥१॥ ॐ कुलदेव्यै नमः कुलदेवीमा० ॥२॥ ॐ प्रजापतये नमः प्रजापतिमा० ॥३॥ ॐविष्णवे नमः विष्णुमा० ॥४॥ ॐ महेश्वराय नमः महेश्वरमा० ॥५॥ ॐ इष्टदेवताय नमः इष्टदेवतामा० ॥६॥ ॐ सूर्याय नमः सूर्यमा० ॥७॥ ॐ जन्मर्क्षाय नमः जन्मर्क्षमा० ॥८॥ षष्ठीदेव्यै नमः षष्ठीदेवीमा० ॥९॥ मार्कण्डेयाय नमः मार्कण्डेयमा० ॥१०॥ ॐ अश्वत्थाम्नै नमः अश्वत्थामामा० ॥११॥ ॐ बलये नमः बलिमा० ॥१२॥ ॐ व्यासाय नमः व्यासमा० ॥१३॥ ॐ विभीषणाय नमः विभीषण मा० ॥१४॥ ॐ कृपाचार्याय नमः कृपाचार्यमावा० ॥१५॥ ॐ परशुरामाय नमः परशुराममा० ॥१६॥ ॐ वलभद्राय नमः वलभद्रमा० ॥१७॥ ॐ हनुमते नमः हनुमन्तमा० ॥१८॥ ॐ स्थानदेवतायै नमः स्थानदेवतामा० ॥१९॥ ॐ वास्तुदेवतायै नमः वास्तुदेवतामा० ॥२०॥ ॐ श्री क्षेत्रपालाय नमः क्षेत्रपालमा० ॥२१॥

ॐ आवो देवा स ईमहं यामं प्रयत्यध्वरे। आशो देवा स आशिषो यज्ञियाहो हवामहे ॐ भूर्भुवः स्वः श्रीगणपत्याद्यावाहित देवताभ्यो नमः आवाहनं समर्पयामि। —इतना वाक्य बोलकर चावल छोड़ें।

पश्चात् गन्ध अक्षत्, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदि उपचारों से आवाहितेभ्यः सर्वेभ्यो देवेभ्यो नमः इस वाक्य द्वारा पूजा करके प्रार्थना करें।

प्रार्थना— जय देवी जगन्मातर्जगदानन्दकारिणि ।
प्रसीद मम कल्याणि महाषष्ठि नमोऽस्तुते ॥
मार्कण्डेयाय मुनये नमस्ते महदायुषे ।
चिरञ्जीवी यथा त्वं हि भविष्यामि तथा मुने ॥

रूपवान् वित्तवानायुः श्रिया युक्तं च मां कुरु ।
कुरुष्व मुनिशार्दूल तथा मां चिरजीविनम् ॥

त्रैलोक्ये यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च ।
ब्रह्मविष्णुशिवैः सार्धं रक्षां कुर्वन्तु तानि मे ॥

अश्वत्थामा वलिर्व्यासो हनुमांश्च विभीषणः ।
कृपः परशुरामश्च सप्तैते चिरजीविनः ॥

सप्तैतांश्च स्मरेन्नित्यं मार्कण्डेयमथाष्टमम् ।
जीवेद्वर्षशतं साग्रमपमृत्युविवर्जितः ॥

प्रीयन्तां देवता सर्वाः पूजां गृहणन्तु ता मम ।
प्रयच्छन्त्वायुरारोग्यं यशः सौखञ्च सर्वदा ॥

मन्त्रन्यूनं क्रियान्यूनं द्रव्यन्यूनं महामुने ।
यदर्चितं मया देव परिपूर्णं तदस्तु मे ॥

ब्राह्मण भोजन कराने के बाद दक्षिणा देवें और बड़ों को प्रणाम कर आशीर्वाद प्राप्त करें ।

सन्तान गोपाल मन्त्र प्रयोग

पुत्र प्राप्ति के लिए भगवान कृष्ण की आराधना एवं चार लाख मन्त्र जाप किया जाता है ।

मूल मन्त्र— ॐ क्लीं श्रीं ह्रीं जीं ॐ भूर्भुवः स्वः ॐ देवकीसुत गोविन्द वासुदेव जगत्पते । देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः । ॐ स्वः भुवः भूः ॐ जीं ह्रीं श्रीं क्लीं ॐ ।

जप-विधि

चम्मच में जल लेकर विनियोग मंत्र बोलकर जल छोड़ें—

ॐ अस्य श्रीसबीजसन्तानगोपालमन्त्रस्य नारायणऋषिरनुष्टुप् छन्दः पुत्रप्रदश्रीगोपालोदेवता क्लीं बीजम् ह्रीं शक्तिः जीं कीलकम् श्रीसन्तानगोपालप्रसाद सिद्धिपूर्वकं मम (यजमानस्य वा) चिरायुः पुत्रप्राप्तर्थं जपे विनियोगः।

न्यास

ॐ नारायण ऋषये नमः शिरसि। ॐ अनुष्टुप्छन्दसे नमः मुखे। ॐ पुत्रप्रदश्रीगोपालदेवतायै नमः हृदि। ॐ क्लीं बीजाय नमः गुह्ये। ॐ श्रीं ह्रीं शक्तये नमः पादयोः। ॐ जीं क्रीलकाय नमः सर्वाङ्गे। इति ऋष्यादि न्यासः। ॐ देवकीसुतगोविन्द अगुष्ठाभ्यां नमः। ॐ वासुदेवजगत्पते तर्जनीभ्यां नमः। देहि मे तनयं कृष्ण मध्यमाभ्यां नमः। त्वामहं शरणंगतः अनामिकाभ्यां नमः। ॐ देवकीसुतगोविन्द वासुदेवजगत्पते कनिष्ठिकाभ्यां नमः। देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणंगतः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः। इति करन्यासः। ॐ देवकीसुतगोविन्द हृदयाय नमः। वासुदेवजगत्पते शिरसे स्वाहा। देहि मे तनयं कृष्ण शिखायै वषट्। त्वामहं शरणं गतः कवचाय हुं। देवकीसुतगोविन्द वासुदेवजगत्पते देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः। अस्त्राय फट्।

इस प्रकार पञ्चाङ्ग-न्यास करके निम्नलिखित ध्यान करें।

ध्यान

ॐ वैकुण्ठतेजसा दीप्तमर्जुनेन समन्वितम्।
समर्पयन्तं विप्राय नष्टानानीय बालकान् ॥

ध्यान करके मानसोपचार से पूजन के बाद मूलमन्त्र का जप करें।

इसके साथही गर्भिणी में गर्भ के चिह्न जब स्पष्ट हो जायें अर्थात् जब गर्भ २-३ मास का हो जाये तब शुभ मुहूर्त में गणेश आदि देवताओं का पूजन कर

वटवृक्ष के नवीन अङ्कुरों तथा पल्लवों एवं कुश की जड़ को जल के साथ पीस कर छान कर वह जल लगभग १ तोला गर्भिणी को पति द्वारा दाहिने नाक से पिलाना चाहिये। पुत्र की कामना से—

ॐ हिरण्य गर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम्॥ (यजु. १३/४)

मंत्र का उच्चारण करना चाहिये। इस प्रकार नारी के मन में पुत्र भाव प्रवाहित होकर गर्भ के मांस पिण्ड में पुरुष चिह्न उत्पन्न होते हैं।

मङ्गलगीतम्

श्रितकमलाकुचमण्डल धृतकुण्डल ए। कलितललितवनमाल जय जय देव हरे ॥१॥
दिनमणिमण्डलमण्डन भवखंण्डन ए। मुनिजनमानसहंस जय जय देव हरे ॥२॥
कालियविषधरगञ्जन जनरञ्जन ए। यदुकुलनलिनदिनेश जय जय देव हरे ॥३॥
मधुमुरनरकविनाशन गरुडासन ए। सुरकुलकेलिनिदान जय जय देव हरे ॥४॥
अमलकमलदललोचन भवमोचन ए। त्रिभुवनभवननिधान जय जय देव हरे ॥५॥
जनकसुताकृतभूषण जितदूषण ए। समरशमितदशकण्ठ जय जय देव हरे ॥६॥
अभिनवजलधरसुन्दर धृतमन्दर ए। श्रीमुखचन्द्रचकोर जय जय देव हरे ॥७॥
तव चरणे प्रणता वयमिति भावय ए। कुरु कुशलं प्रणतेषु जय जय देव हरे ॥८॥
श्रीजयदेवकवेरुदितमिदं कुरुते मुदम्। मङ्गलमञ्जुलगीतं जय जय देव हरे ॥९॥

इति श्री जयदेवविरचितं मङ्गलगीतं सम्पूर्णम्।

श्रीगङ्गाष्टक

मातः शैलसुतासपत्नि वसुधा शृङ्गारहारावलि, स्वर्गारोहणवैजयन्ति भवतीं भागीरथीं प्रार्थये। त्वत्तीरे वसन्तत्वदम्बुपिवतस्त्वद्वीचिषु प्रेङ्खतस्त्वन्नाम स्मरतस्त्वदर्पितदशः स्यान्मे शरीरव्ययः ॥१ ॥ त्वत्तीरे तरुकोटरान्तरगतो गङ्गे विहङ्गोवरं, त्वन्नीरे नरकान्तकारिणि वरं मत्स्योऽथवा कच्छपः। नैवान्यत्र मन्दान्धसिन्धुरघटासंघट्टघण्टारणत्कारत्रस्तमसस्तवैरिवनितालब्धस्तुतिर्भूपतिः ॥२ ॥ उक्षा पक्षी तुरग उरगः कोऽपि वा वारणो वा वाराणस्याः जननमरणक्लेशदुःखासहिष्णुः। न त्वन्यत्र प्रविरलरणत्कङ्कणक्वाणमिश्रं वारस्त्रीभिश्चमरमरुत्तावीजिसो भूमिपालः ॥३ ॥ काकैर्निष्कुषितं श्वभिः कवलितं गोमायुभिर्लुण्ठितं स्रोतोभिश्चलितं तटाम्बुलुलितं वीचीभिरान्दोलितम्। दिव्यस्त्रीकरचारुचामरमरुत्सम्वीज्यमानः कदा, द्रक्ष्येऽहं परमेश्वरि त्रिपथगे भागीरथि स्वं वपुः ॥४ ॥ अभिनवविसवल्ली पादपद्मस्य विष्णोर्मदनमथनमौलेर्मालतीपुष्पमाला। जयति जयपताका काप्यसौ मोक्षलक्ष्म्याः क्षपितकलिकलङ्का जाह्नवी नः पुनातु ॥५ ॥ एतत्तालतमालसालसरलव्यालोलवल्लीलताच्छन्नं सूर्यकरप्रतापरहितं शङ्खेन्दुकुन्दोज्ज्वलम्। गन्धर्वामरसिद्धकिन्नरवधूतुङ्गस्तनास्फालितं स्नानाय प्रतिवासरं भवतु मे गाङ्गं जलं निर्मलम् ॥६ ॥ गाङ्गं वारि मनोहारि मुरारिचरणच्युतम्। त्रिपुरारिशिरश्चारि पापहारि पुनातु माम् ॥७ ॥ पापापहारि दुरितारि तरङ्गधारि शैलप्रचारि गिरिराजगुहाविदारि। झङ्कारकारि हरिपादरजोपहारि गाङ्गं पुनातु सततं शुभकारि वारि ॥८ ॥ गङ्गाष्टकं पठति यः प्रयतः प्रभाते वाल्मीकिना विरचितं शुभदं मनुष्यः। प्रक्ष्याल्य गात्रकलिकल्मषपङ्कमाशु मोक्षं लभेत् पतति नैव नरो भवाब्धौ ॥९ ॥

श्रीवाल्मीकिविरचितं गङ्गाष्टकं सम्पूर्णम् ॥

श्रीराधाकृष्णयुगलस्तोत्र

अनादिमाद्यं पुरुषोत्तमोत्तमं, श्रीकृष्णचन्द्रं निजभक्तवत्सलम्। स्वयं त्वसङ्ख्याण्डपतिं परात्परं, राधापतिं त्वां शरणं व्रजाम्यहम् ॥१ ॥ गोलोकनाथस्त्वमतीवलीलो लीलावतीयं निजलोकलीला। वैकुण्ठनाथोऽसि यदा त्वमेव,

लक्ष्मीस्तदेयं वृषभानुजा हि ॥२॥ त्वं रामचन्द्रो जनकात्मजेयं, भूमौ हरिस्त्वं कमलालयेयम्। यज्ञावतारोऽसि यदा तदेयं, श्रीदक्षिणास्त्रीप्रतिपत्निमुख्याः ॥३॥ त्वं नारसिंहोऽसि रमा हृदीयं, नारायणस्त्वञ्च नरेण युक्तः। तदा त्वियं शान्तिरतीव साक्षाच्छायेव याता च तवानुरूपा ॥४॥ त्वं ब्रह्म चेयं प्रकृतिस्तटस्था कालो यदेमां च विदुःप्रधानम्। महान्यदा त्वं जगदङ्कुरोऽसि, राधा तदेयं सगुणा च माया ॥५॥ यदान्तरात्मा विदितश्चतुर्भिस्तदा त्वियं लक्षणरूपवृत्तिः। यदा विराड्देहधरस्त्वमेव, तदाखिलं वा भुवि धारणेयम् ॥६॥ श्यामञ्च गौरं विदितं द्विधा महस्तवैव साक्षात्पुरुषोत्तमोत्तम्। गोलोकधामाधिपतिं परेशं, परात्परं त्वां शरणं व्रजाम्यहम् ॥७॥ सदा पठेद्यो युगलस्तवं परं, गोलोकधामं परमं प्रयाति सः। इहैव सौन्दर्यसमृद्धिसिद्धयो, भवन्ति तस्यापि निसर्गतः पुनः ॥८॥

श्रीगर्गसंहितायां ब्रह्मविरचितं श्रीराधाकृष्ण-युगल-स्तोत्रं सम्पूर्णम्।

देव्यपराधक्षमापन-स्तोत्र

न मन्त्रं नो यन्त्रं तदपि च न जाने स्तुतिमहो
न चाह्वानं ध्यानं तदपि च न जाने स्तुतिकथाः ।
न जाने मुद्रास्ते तदपि च न जाने विलपनं
परं जाने मातस्त्वदनुशरणं क्लेशहरणम् ॥१॥
विधेरज्ञानेन द्रविणविरहेणालसतया
विधेयाशक्यत्वात्तव चरणयोर्याच्युतिरभूत ।
तदेतत्क्षन्तव्यं जननि सकलोद्धारिणि शिवे
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥२॥
पृथिव्यां पुत्रास्ते जननि बहवः सन्ति सरलाः
परं तेषां मध्ये विरल-तरलोऽहं तव सुतः ।
मदीयोऽयं त्यागः समुचितमिदं नो तव शिवे
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥३॥

जगन्मातर्मातस्तव चरणसेवा न रचिता
न वा दत्तं देवि द्रविणमपि भूयस्तव मया ।
तथापि त्वं स्नेहं मयि निरुपमं यत्प्रकुरुषे
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥४ ॥

परित्यक्त्वा देवाविविधविधिसेवाकुलतया
मया पञ्चाशीतेरधिकमपनीते तु वयसि ।
इदानीं चेन्मातस्तव यदि कृपा नापि भविता
निरालम्बो लम्बोदरजननि कं यामि शरणम् ॥५ ॥

श्वपाको जल्पाको भवति मधुपाकोपमगिरा
निरातङ्को रङ्को विहरति चिरं कोटि-कनकैः ।
तवापर्णे कर्णे विशति मनुवर्णे फलमिदम्
जनः को जानीते जननि जपनीयं जपविधौ ॥६ ॥

चिताभस्मालेपो गरलमशनं दिक्पटधरो
जटाधारी कण्ठे भुजगपतिहारी पशुपतिः ।
कपाली भूतेशो भजति जगदीशैक-पदवीं
भवानि त्वत्पाणिग्रहणपरिपाटीफलमिदम् ॥७ ॥

न मोक्षस्याकाङ्क्षा न च विभववाञ्छापि च न मे
न विज्ञानापेक्षा शशिमुखि सुखेच्छापि न पुनः ।
अतस्त्वां संयाचे जननि जननं यातु मम वै
मृडानी रुद्राणी शिव शिव भवानीति जपतः ॥८ ॥

नाराधितासि विधिना विविधोपचारैः
किं रुक्षचिन्तनपरैर्न कृतं वचोभिः ।

श्यामे त्वमेव यदि किञ्चन मय्यनाथे
धत्से कृपामुचितमम्ब परं तवैव ॥९॥
आपत्सु मग्नः स्मरणं त्वदीयं करोमि दुर्गे करुणार्णवेशि ।
नैतच्छठत्वं मम भावयेथाः क्षुधातृषार्ता जननीं स्मरन्ति ॥१०॥
जगदम्ब विचित्रमत्र किं परिपूर्णा करुणास्ति चेन्मयि ।
अपराधपरम्परावृतं नहि माता समुपेक्षते सुतम् ॥११॥
मत्समः पातकी नास्ति पापघ्नी त्वत्समा न हि ।
एवं ज्ञात्वा महादेवि यथा योग्यं तथा कुरु ॥१२॥

इति देव्यपराधक्षमापनस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

श्रीशीतलाष्टकम्

विनियोग— ॐ अस्य श्रीशीतलास्तोत्रस्य महादेव ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः शीतला देवता लक्ष्मीर्बीजम् भवानी शक्तिः सर्वविस्फोटकनिवृत्तये जपे विनियोगः ।

वन्देऽहं शीतलां देवीं, रासभस्थां दिगम्बराम् ।
मार्जनी-कलशोपेतां, शूर्पालङ्कृतमस्तकाम् ॥१॥
वन्देऽहं शीतलां देवीं, सर्वरोग-भयापहाम् ।
यामासद्य निवर्त्तेत, विस्फोटक-भयं महत् ॥२॥
शीतले शीतले चेति, यो ब्रूयाद्दाह-पीडितः ।
विस्फोटक-भयं घोरं, क्षिप्रं तस्य प्रणश्यति ॥३॥
यस्त्वामुदकमध्ये तु, धृत्वा पूजयते नरः ।
विस्फोटक-भयं घोरं, गृहे तस्य न जायते ॥४॥
शीतले ज्वरदग्धस्य, पूतिगन्धयुतस्य च ।
प्रनष्टचक्षुषः पुंसस्त्वामाहुर्जीवनौषधम् ॥५॥

शीतले तनुजान् रोगान्नृणां हरसि दुस्त्यजान् ।
विस्फोटक-विशीर्णानां, त्वमेकाऽमृतवर्षिणी ॥६ ॥

गलगण्ड-ग्रहा रोगा ये चान्ये दारुणा नृणाम् ।
त्वदनुध्यान-मात्रेण, शीतले यान्ति संक्षयम् ॥७ ॥

न मन्त्रो नौषधं तस्य, पाप-रोगस्य विद्यते ।
त्वामेकां शीतले धात्रीं, नान्यां पश्यामि देवताम् ॥८ ॥

मृणाल-तन्दु सदृशीं नाभिहृन्मध्यसंस्थिताम् ।
यस्त्वां सञ्चिन्तयेद्देवि, तस्य मृत्युर्न जायते ॥९ ॥

अष्टकं शीतला-देव्याः, यो नरः प्रपठेत् सदा ।
विस्फोटकभयं घोरं, गृहे तस्य न जायते ॥१० ॥

श्रोतव्यं पठितव्यञ्च, श्रद्धा- भक्ति-समन्वितैः ।
उपसर्ग-विनाशाय, परं स्वस्त्ययनं महत् ॥११ ॥

शीतले त्वं जगन्माता, शीतले त्वं जगत्-पिता ।
शीतले त्वं जगद्धात्री, शीतलायै नमो नमः ॥१२ ॥

रासभो गर्दभश्चैव, खरो वैशाख-नन्दनः ।
शीतला-वाहनश्चैव, दूर्वा-कन्द-निकृन्तनः ॥१३ ॥

एतानि खरनामानि शीतलाग्रे तु यः पठेत् ।
तस्य गेहे शिशूनां च शीतला-रुङ् न जायते ॥१४ ॥

शीतलाष्टकमेवेदं, न देयं यस्य कस्यचित् ।
दातव्यञ्च सदा तस्मै, श्रद्धाभक्ति-युताय वै ॥१५ ॥

श्रीस्कन्दपुराणोक्तं शीतलाष्टक-स्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः ॥ श्री सत्यनारायणाय नमः ॥ शुक्लाम्बरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम् । प्रसन्नवदनं ध्यायेत् सर्वविघ्नोपशान्तये ॥१ ॥ नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥२ ॥ व्यासं वसिष्ठनप्तारं शक्तेः पौत्रमकल्मषम् । पराशरात्मजं वन्दे शुकतातं तपोनिधिम् ॥३ ॥ व्यासाय विष्णुरूपाय व्यासरूपाय विष्णवे । नमो वै ब्रह्मविधये वसिष्ठाय नमो नमः ॥४ ॥ अचतुर्वदनो ब्रह्मा द्विबाहुरपरो हरिः । अभाललोचनः शम्भुर्भगवान् बादरायणः ॥५ ॥ अथविष्णुसहस्रनामप्रारम्भः ॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥ यस्य स्मरणमात्रेण जन्मसंसारबन्धनात् । विमुच्यते नमस्तस्मै विष्णवे प्रभविष्णवे ॥१ ॥ नमः समस्तभूतानामादिभूताय भूभृते । अनेकरूपरूपाय विष्णवे प्रभविष्णवे ॥२ ॥ वैशम्पायन उवाच ॥ श्रुत्वा धर्मानशेषेण पावनानि च सर्वशः । युधिष्ठिरः शान्तनवं पुनरेवाभ्यभाषत ॥३ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ किमेकं दैवतं लोके किम्वाप्येकं परायणम् । स्तुवन्तः कं कमर्चन्तः प्राप्नुयुर्मानवाः शुभम् ॥४ ॥ को धर्मः सर्वधर्माणां भवतः परमो मतः । किं जपन् मुच्यते जन्तुर्जन्मसंसारबन्धनात् ॥५ ॥ भीष्म उवाच ॥ जगत्प्रभुं देवदेवमनन्तं पुरुषोत्तमम् । स्तुवन्नामसहस्रेण पुरुषः सततोत्थितः ॥६ ॥ तमेव चार्चयन्नित्यं भक्त्या पुरुषमव्ययम् । ध्यायन् स्तुवन्नमस्यंश्च यजमानस्तमेव च ॥७ ॥ अनादिनिधनं विष्णुं सर्वलोकमहेश्वरम् । लोकाध्यक्षं स्तुवन्नित्यं सर्वदुःखातिगो भवेत् ॥८ ॥ ब्रह्मण्यं सर्वधर्मज्ञं लोकानां कीर्तिवर्धनम् । लोकनाथं महद्भूतं सर्वभूतभवोद्भवम् ॥९ ॥ एष मे सर्वधर्माणां धर्मोऽधिकतमो मतः । यद्भक्त्या पुण्डरीकाक्षं स्तवैरर्चेन्नरः सदा ॥१० ॥ परमं यो महत्तेजः परमं यो महत्तपः । परमं यो महद् ब्रह्म परमं यः परायणम् ॥११ ॥ पवित्राणां पवित्रं यो मङ्गलानां च मङ्गलम् । दैवतं देवतानां च भूतानां योऽव्ययः पिता । ।१२ ॥ यतः सर्वाणि भूतानि भवन्त्यादियुगागमे । यस्मिंश्च प्रलयं यान्ति पुनरेव युगक्षये ॥१३ ॥ तस्य लोकप्रधानस्य जगन्नाथस्य भूपते । विष्णोर्नामसहस्रं मे शृणु पापभयावहम् ॥१४ ॥ यानि नामानि गौणानि विख्यातानि महात्मनः । ऋषिभिः परिगीतानि तानि वक्ष्यामि भूतये ॥१५ ॥ विष्णोर्नाम सहस्रस्य वेदव्यासो महामुनिः । छन्दोऽनुष्टुप् तथा देवो भगवान् देवकीसुतः ॥१६ ॥ विष्णुं जिष्णुं महा-

विष्णुं प्रभविष्णुं महेश्वरम् ॥ अनेकरूप-दैत्यान्तं नमामि पुरुषोत्तमम् ॥१७ ॥ अस्य श्रीविष्णोर्दिव्यसहस्रनामस्तोत्रमहामन्त्रस्य भगवान्वेदव्यास ऋषिः अनुष्टुप् छन्दः श्रीकृष्णः परमात्मा श्रीमन्नारायणो देवता अमृतांशूद्भवो भानुरिति बीजम् देवकीनन्दनः स्रष्टेति शक्तिः त्रिसामा सामगः सामेति हृदयम् शङ्खभृन्नन्दकी चक्रीति कीलकम् शार्ङ्गधन्वा गदाधर इत्यस्त्रम् रथाङ्गपाणिरक्षोभ्यः इति कवचम् उद्भवः क्षोभणो देव इति परमो मन्त्रः श्रीकृष्णप्रीत्यर्थे सहस्रनामस्तोत्रजपे विनियोगः ॥ अथ करन्यासः ॥ ॐ उद्भवाय अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । ॐ क्षोभणाय तर्जनीभ्यां नमः । ॐ देवाय मध्यमाभ्यां नमः । ॐ उद्भवाय अनामिकाभ्यां नमः ॥ ॐ क्षोभणाय कनिष्ठिकाभ्यां नमः । ॐ देवाय करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ॥ इति करन्यासः ॥ अथ हृदयादिषडङ्गन्यासः ॥ सुव्रतः सुमुखः सूक्ष्मः ज्ञानाय हृदयाय नमः । सहस्रमूर्द्धा विश्वात्मा ऐश्वर्याय शिरसे स्वाहा । सहस्रार्चिः सप्तजिह्वः शक्त्यै शिखायै वषट् । त्रिसामा सामगः सामबलाय कवचाय हुम् । रथाङ्ग-पाणिरक्षोभ्यः तेजसे नेत्राभ्यां वौषट् । शार्ङ्गधन्वा गदाधरः वीर्याय अस्त्राय फट् ॥ इति हृदयादिन्यासः ॥ ऋतुः सुदर्शनः कालः भूर्भुवस्स्वरोम् । इति दिग्बन्ध ।

अथध्यानम्

ॐ क्षीरोदन्वत्प्रदेशे शुचिमणिविलसत्सैकतेर्मौक्तिकानां
मालाक्लृप्तासनस्थः स्फटिकमणिनिभैर्मौक्तिकैर्मण्डिताङ्गः ।
शुभ्रैरभ्रैरदभ्रैरुपरि-विरचितैर्मुक्तपीयूषवर्षै -
रानन्दी नः पुनीयादरिनलिनगदाशङ्खपाणिर्मुकुन्दः ॥१ ॥

भूः पादौ यस्य नाभिर्वियदसुरनिलश्चन्द्रसूर्यौ च नेत्रे
कर्णावाशाः शिरो द्यौर्मुखमपि दहनोयस्य वासोऽयमब्धिः ।
अन्तःस्थं यस्य विश्वं सुरनरखगगोभोगिगन्धर्वदैत्यै -
श्चित्रं रं रम्यते तं त्रिभुवनवपुषं विष्णुमीशं नमामि ॥२ ॥

शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं
विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभाङ्गम् ।
लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानगम्यं
वन्दे विष्णुं भवभयहरं सर्वलोकैकनाथम् ॥३॥
मेघश्यामं पीतकौशेयवासं
श्रीवत्साङ्कं कौस्तुभोद्भासिताङ्गम् ।
पुण्योपेतं पुण्डरीकायताक्षं
विष्णुं वन्दे सर्वलोकैकनाथम् ॥४॥
सशङ्खचक्रं सकिरीटकुण्डलं
सपीतवस्त्रं सरसीरुहेक्षणम् ।
सहारवक्षः स्थलकौस्तुभश्रियं
नमामि विष्णुं शिरसा चतुर्भुजम् ॥५॥

ॐ विश्वं विष्णुर्वषट्कारो भूतभव्यभवत्प्रभुः ।
भूतकृद् भूतभृद्भावो भूतात्मा भूतभावनः ॥१॥
पूतात्मा परमात्मा च मुक्तानां परमा गतिः ।
अव्ययः पुरुषः साक्षी क्षेत्रज्ञोऽक्षर एव च ॥२॥
योगो योगविदां नेता प्रधानपुरुषेश्वरः ।
नारसिंहवपुः श्रीमान् केशवः पुरुषोत्तमः ॥३॥
सर्वः शर्वः शिवः स्थाणुर्भूतादिर्निधिरव्ययः ।
सम्भवो भावनो भर्त्ता प्रभवः प्रभुरीश्वरः ॥४॥
स्वयम्भूः शम्भुरादित्यः पुष्कराक्षो महास्वनः ।
अनादिनिधनो धाता विधाता धातुरुत्तमः ॥५॥

अप्रमेयो हृषिकेशः प्रद्मनाभोऽमरप्रभुः ।
विश्वकर्मा मनुस्त्वष्टा स्थविष्ठः स्थविरो ध्रुवः ॥६ ॥
अग्राह्यः शाश्वतः कृष्णो लोहिताक्षः प्रतर्दनः ।
प्रभूतस्त्रिककुब्धाम पवित्रं मङ्गलम्परम् ॥७ ॥
ईशानः प्राणदः प्राणो ज्येष्ठः श्रेष्ठः प्रजापतिः ।
हिरण्यगर्भो भूगर्भो माधवो मधुसूदनः ॥८ ॥
ईश्वरो विक्रमी धन्वी मेधावी विक्रमः क्रमः ।
अनुत्तमो दुराधर्षः कृतज्ञः कृतिरात्मवान् ॥९ ॥
सुरेशः शरणं शर्म विश्वरेताः प्रजाभवः ।
अहः सम्वत्सरो व्यालः प्रत्ययः सर्वदर्शनः ॥१० ॥
अजः सर्वेश्वरः सिद्धः सिद्धिः सर्वादिरच्युतः ।
वृषाकपिरमेयात्मा सर्वयोगविनिःसृतः ॥११ ॥
वसुर्वसुमनाः सत्यः समात्मा सम्मितः समः ।
अमोघः पुण्डरीकाक्षो वृषकर्मा वृषाकृतिः ॥१२ ॥
रुद्रो बहु शिरा बभ्रु र्विश्वयोनिः शुचिश्रवाः ।
अमृतः शाश्वतस्थाणुर्वरारोहो महातपाः ॥१३ ॥
सर्वगः सर्वविद् भानुर्विष्वक्सेनो जनार्दनः ।
वेदो वेदविदव्यङ्गो वेदाङ्गो वेदवित् कविः ॥१४ ॥
लोकाध्यक्षः सुराध्यक्षो धर्माध्यक्षः कृताकृतः ।
चतुरात्मा चतुर्व्यूहश्चतुर्दंष्ट्रश्चतुर्भुजः ॥१५ ॥
भ्राजिष्णुर्भोजनं भोक्ता सहिष्णुर्जगदादिजः ।
अनघो विजयो जेता विश्वयोनिः पुनर्वसुः ॥१६ ॥
उपेन्द्रो वामनः प्रांशुरमोघः शुचिरुर्जितः ।
अतीन्द्रः संग्रहः सर्गो धृतात्मा नियमो यमः ॥१७ ॥

वेद्यो वैद्यः सदायोगी वीरहा माधवो मधुः ।
अतीन्द्रियो महामायो महोत्साहो महाबलः ॥१८॥

महाबुद्धिर्महावीर्यो महाशक्तिर्महाद्युतिः ।
अनिर्देश्यवपुः श्रीमानमेयात्मा महाद्रिधृक् ॥१९॥

महेष्वासो महीभर्ता श्रीनिवासः सतां गतिः ।
अनिरुद्धः सुरानन्दो गोविन्दो गोविदांपतिः ॥२०॥

मरीचिर्दमनो हंसः सुपर्णो भुजगोत्तमः ।
हिरण्यनाभः सुतपाः पद्मनाभः प्रजापतिः ॥२१॥

अमृत्युः सर्वदृक् सिंहः सन्धाता सन्धिमान् स्थिरः ।
अजो दुर्मर्षणः शास्ता विश्रुतात्मा सुरारिहा ॥२२॥

गुरुर्गुरुत्तमो धाम सत्यः सत्यपराक्रमः ।
निमिषोऽनिमिषः स्रग्वी वाचस्पतिरुदारधीः ॥२३॥

अग्रणीर्ग्रामणीः श्रीमान्न्यायो नेता समीरणः ।
सहस्रमूर्धा विश्वात्मा सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥२४॥

आवर्तनो निवृतात्मा संवृतः सम्प्रमर्दनः ।
अहः संवर्तको वह्निरनिलो धरणीधरः ॥२५॥

सुप्रसादः प्रसन्नात्मा विश्वधृग्विश्वभुग्विभुः ।
सत्कर्ता सत्कृतः साधुर्जह्नुर्नारायणो नरः ॥२६॥

असंख्येयोऽप्रमेयात्मा विशिष्टः शिष्टकृच्छुचिः ।
सिद्धार्थः सिद्धसङ्कल्पः सिद्धिदः सिद्धिसाधनः ॥२७॥

वृषाही वृषभो विष्णुर्वृषपर्वा वृषोदरः ।
वर्धनो वर्धमानश्च विविक्तः श्रुतिसागरः ॥२८॥

सुभुजो दुर्धरो वाग्मी महेन्द्रो वसुदो वसुः ।
नैकरूपो बृहद्रूपः शिपिविष्टः प्रकाशनः ॥२९॥

ओजस्तेजोद्युतिधरः प्रकाशात्मा प्रतापनः ।
ऋद्धः स्पष्टाक्षरो मन्त्रश्चन्द्रांशुर्भास्करद्युतिः ॥३० ॥

अमृतांशूद्भवो भानुः शशविन्दुः सुरेश्वरः ।
औषधं जगतः सेतुः सत्यधर्मपराक्रमः ॥३१ ॥

भूतभव्यभवन्नाथः पवनः पावनोऽनलः ।
कामहा कामकृत्कान्तः कामः कामप्रदः प्रभुः ॥३२ ॥

युगादिकृद्युगावर्तो नैकमायो महाशनः ।
अदृश्योऽव्यक्तरूपश्च सहस्रजिदनन्तजित् ॥३३ ॥

इष्टोविशिष्टः शिष्टेष्टः शिखण्डी नहुषो बृषः ।
क्रोधहा क्रोधकृत्कर्ता विश्वबाहुर्महीधरः ॥३४ ॥

अच्युतः प्रथितः प्राणः प्राणदो वासवानुजः ।
अपान्निधिरधिष्ठानमप्रमत्तः प्रतिष्ठितः ॥३५ ॥

स्कन्दः स्कन्दधरो धुर्यो वरदो वायुवाहनः ।
वासुदेवो बृहद्भानुरादिदेवः पुरन्दरः ॥३६ ॥

अशोकस्तारणस्तारः शूरः शौरिर्जनेश्वरः ।
अनुकूलः शतावर्तः पद्मी पद्मनिभेक्षणः ॥३७ ॥

पद्मनाभोऽरविन्दाक्षः पद्मगर्भः शरीरभृत् ।
महर्द्धिर्ऋद्धो वृद्धात्मा महाक्षो गरुडध्वजः ॥३८ ॥

अतुलः शरभो भीमः समयज्ञो हविर्हरिः ।
सर्वलक्षणलक्षण्यो लक्ष्मीवान् समितिञ्जयः ॥३९ ॥

विक्षरो रोहितो मार्गो हेतुर्दामोदरः सहः ।
महीधरो महाभागो वेगवानमिताशनः ॥४० ॥

उद्भवः क्षोभणो देवः श्रीगर्भः परमेश्वरः ।
करणं कारणं कर्ता विकर्ता गहनो गुहः ॥४१ ॥

व्यवसायो व्यवस्थानः संस्थानः स्थानदो ध्रुवः ।
परर्द्धिः परमस्पष्टस्तुष्टः पुष्टः शुभेक्षणः ॥४२ ॥

रामो विरामो विरजो मार्गो नेयो नयोऽनयः ।
वीरः शक्तिमतां श्रेष्ठो धर्मो धर्मविदुत्तमः ॥४३ ॥

वैकुण्ठः पुरुषः प्राणः प्राणदः प्रणवः पृथुः ।
हिरण्यगर्भः शत्रुघ्नो व्याप्तो वायुरधोक्षजः ॥४४ ॥

ऋतुः सुदर्शनः कालः परमेष्ठी परिग्रहः ।
उग्रः संवत्सरो दक्षो विश्रामो विस्वदक्षिणः ॥४५ ॥

विस्तारः स्थावरः स्थाणुः प्रमाणं बीजमव्ययम् ।
अर्थोऽनर्थो महाकोशो महाभोगो महाधनः ॥४६ ॥

अनिर्वण्णः स्थविष्ठोऽभूर्धर्मयूपो महामखः ।
नक्षत्रनेमिर्नक्षत्री क्षमः क्षामः समीहनः ॥४७ ॥

यज्ञ इज्यो महेज्यश्च क्रतुः सत्रं सतां गतिः ।
सर्वदर्शी विमुक्तात्मा सर्वज्ञो ज्ञानमुत्तमम् ॥४८ ॥

सुव्रतः सुमुखः सूक्ष्मः सुघोषः सुखदः सुहृद् ।
मनोहरो जितक्रोधो वीरबाहुर्विदारणः ॥४९ ॥

स्वापनः स्ववशो व्यापी नैकात्मा नैककर्मकृत् ।
वत्सरो वत्सलो वत्सी रत्नगर्भो धनेश्वरः ॥५० ॥

धर्मगुब्धर्मकृद्धर्मी सदसत्क्षरमक्षरम् ।
अविज्ञाता सहस्रांशुर्विधाता कृतलक्षणः ॥५१ ॥

गभस्तिनेमिः सत्त्वस्थः सिंहो भूतमहेश्वरः ।
आदिदेवो महादेवो देवेशो देवभृद् गुरु ॥५२

उत्तरो गोपतिर्गोप्ता ज्ञानगम्यः पुरातनः ।
शरीरभूतभृद् भोक्ता कपीन्द्रो भूरिदक्षिणः ॥५३ ॥

सोमपोऽमृतपः सोमः पुरुजित्पुरुषोत्तमः ।
विनयो जयः सत्यसन्धो दाशार्हः सात्वतां पतिः ॥५४॥
जीवो विनयिता साक्षी मुकुन्दोऽमितविक्रमः ।
अम्भोनिधिरनन्तात्मा महोदधिशयोऽन्तकः ॥५५॥
अजो महार्हः स्वाभाव्यो जितामित्रः प्रमोदनः ।
आनन्दो नन्दनो नन्दः सत्यधर्मा त्रिविक्रमः ॥५६॥
महर्षिः कपिलाचार्यः कृतज्ञो मेदिनीपतिः ।
त्रिपदस्त्रिदशाध्यक्षो महाशृङ्गः कृतान्तकृत् ॥५७॥
महावराहो गोविन्दः सुषेणः कनकाङ्गदी ।
गुह्यो गभीरो गहनो गुप्तश्चक्रगदाधरः ॥५८॥
वेधाः स्वाङ्गोऽचितः कृष्णो दृढः संकर्षणोऽच्युतः ।
वरुणो वारुणो वृक्षः पुष्कराक्षो महामनाः ॥५९॥
भगवान् भगहाऽनन्दी वनमाली हलायुधः ।
आदित्यो ज्योतिरादित्यः सहिष्णुर्गतिसत्तमः ॥६०॥
सुधन्वा खण्डपरशुर्दारुणो द्रविणप्रदः ।
दिविस्पृक् सर्वदृग्व्यासो वाचस्पतिरयोनिजः ॥६१॥
त्रिसामा सामगः सामः निर्वाणं भेषजं भिषक् ।
संन्यासकृच्छमः शान्तो निष्ठा शान्तिः परायणम् ॥६२॥
शुभाङ्गः शान्तिदः स्रष्टा कुमुदः कुवलेशयः ।
गोहितो गोपतिर्गोप्ता वृषभाक्षो वृषप्रियः ॥६३॥
अनिवर्ती निवृत्तात्मा संक्षेप्ता क्षेमंकृच्छिवः ।
श्रीवत्सवक्षाः श्रीवासः श्रीपतिः श्रीमतांवरः ॥६४॥

श्रीदः श्रीशः श्रीनिवासः श्रीनिधिः श्रीविभावनः ।
श्रीधरः श्रीकरः श्रेयः श्रीमाँल्लोकत्रयाश्रयः ॥६५॥

स्वक्षः स्वङ्गः शतानन्दो नन्दिर्ज्योतिर्गणेश्वरः ।
विजितात्मा विधेयात्मा सत्कीर्तिश्छिन्नसंशयः ॥६६॥

उदीर्णः सर्वतश्चक्षुरनीशः शाश्वतः स्थिरः ।
भूशयो भूषणो भूतिर्विशोकः शोकनाशनः ॥६७॥

अर्चिष्मानर्चितः कुम्भो विशुद्धात्मा विशोधनः ।
अनिरुद्धोऽप्रतिरथः प्रद्युम्नोऽमितविक्रमः ॥६८॥

कालनेमिनिहा वीरः शौरिः शूरजनेश्वरः ।
त्रिलोकात्मा त्रिलोकेशः केशवः केशिहा हरिः ॥६९॥

कामदेवः कामपालः कामी कान्तः कृतागमः ।
अनिर्देश्यवपुर्विष्णुर्वीरोऽनन्तो धनञ्जयः ॥७०॥

ब्रह्मण्यो ब्रह्मकृद् ब्रह्मा ब्रह्म ब्रह्मविवर्धनः ।
ब्रह्मविद् ब्राह्मणो ब्रह्मी ब्रह्मज्ञो ब्राह्मणप्रियः ॥७१॥

महाक्रमो महाकर्मा महातेजा महोरगः ।
महाक्रतुर्महायज्वा महायज्ञो महाहविः ॥७२॥

स्तव्यः स्तवप्रियः स्तोत्रं स्तुतिः स्तोता रणप्रियः ।
पूर्णः पूरयिता पुण्यः पुण्यकीर्तिरनामयः ॥७३॥

मनोजवस्तीर्थकरो वसुरेता वसुप्रदः ।
वसुप्रदो वासुदेवो वसुर्वसुमनाहविः ॥७४॥

सद्गतिः सत्कृतिः सत्ता सद्भूतिः सत्परायणः ।
शूरसेना यदुश्रेष्ठः सन्निवासः सुयामुनः ॥७५॥

भूतावासो वासुदेवः सर्वासुनिलयोऽनलः ।
दर्पहा दर्पदो दृप्तो दुर्धरोऽथापराजितः ॥७६॥

विश्वमूर्तिर्महामूर्तिर्दीप्तमूर्तिरमूर्तिमान् ।
अनेकमूर्तिरव्यक्तः शतमूर्तिः शताननः ॥७७॥
एको नैकः सर्वः कः किं यत्तत्पदमनुत्तमम् ।
लोकबन्धुर्लोकनाथो माधवो भक्तवत्सलः ॥७८॥
वर्णवर्णो हेमाङ्गो वराङ्गश्चन्दनाङ्गदी ।
वीरहा विषमः शून्यो घृताशीरचलश्चलः ॥७९॥
अमानी मानदो मान्यो लोकस्वामी त्रिलोकधृक् ।
सुमेधा मेधजो धन्यः सत्यमेधा धराधरः ॥८०॥
तेजोवृषो द्युतिधरः सर्वशस्त्रभृताम्बरः ।
प्रग्रहो निग्रहो व्यग्रो नैकशृङ्गो गदाग्रजः ॥८१॥
चतुर्मूर्तिश्चतुर्बाहुश्चतुर्व्यूहश्चतुर्गतिः ।
चतुरात्मा चतुर्भावश्चतुर्वेदविदेकपात् ॥८२॥
समावर्त्तोऽनिवृत्तात्मा दुर्जयो दुरतिक्रमः ।
दुर्लभो दुर्गमो दुर्गो दुरावासो दुरारिहा ॥८३॥
शुभाङ्गो लोकसारङ्गः सुतन्तुस्तन्तुवर्धनः ।
इन्द्रकर्मा महाकर्मा कृतकर्मा कृतागमः ॥८४॥
उद्भवः सुन्दरः सुन्दो रत्ननाभः सुलोचनः ।
अर्को वाजसनः शृङ्गी जयन्तः सर्वविज्जयी ॥८५॥
सुवर्णबिन्दुरक्षोभ्यः सर्ववागीश्वरेश्वरः ।
महाह्रदो महागर्तो महाभूतो महानिधिः ॥८६॥
कुमुदः कुन्दरः कुन्दः पर्जन्यः पावनोऽनिलः ।
अमृतांशोऽमृतवपुः सर्वज्ञः सर्वतोमुखः ॥८७॥
सुलभः सुव्रतः सिद्धः शत्रुजिच्छत्रुतापनः ।
न्यग्रोधोदुम्बरोऽश्वत्थश्चाणूरान्ध्रनिषूदनः ॥८८॥

सहस्रार्चिः सप्तजिह्वः सप्तैधाः सप्तवाहनः ।
अमूर्तिरनघोऽचिन्त्यो भयकृद् भयनाशनः ॥८९ ॥
अणुर्बृहत्कृशः स्थूलो गुणभृन्निर्गुणो महान् ।
अधृतः स्वधृतः स्वास्यः प्राग्वंशो वंशवर्धनः ॥९० ॥
भारभृत्कथितो योगी योगीशः सर्वकामदः ।
आश्रमः श्रमणः क्षामः सुपर्णो वायुवाहनः ॥९१ ॥
धनुर्धरो धनुर्वेदो दण्डो दमयिता दमः ।
अपराजितः सर्वसहो नियन्ता नियमोयमः ॥९२ ॥
सत्त्ववान् सात्त्विकः सत्यः सत्यधर्मपरायणः ।
अभिप्रायः प्रियार्होऽर्हः प्रियकृत् प्रीतिवर्धनः ॥९३ ॥
विहायसगतिर्ज्योतिः सुरुचिर्हुतभुग्विभुः ।
रविर्विरोचनः सूर्यः सविता रविलोचनः ॥९४ ॥
अनन्तो हुतभुग् भोक्ता सुखदो नैकजोऽग्रजः ।
अनिर्विण्णः सदामर्षी लोकाधिष्ठानमद्भुतः ॥९५ ॥
सनात् सनातनतमः कपिलः कपिरप्ययः ।
स्वस्तिदः स्वस्तिकृत् स्वस्तिः स्वस्तिभुक् स्वस्तिदक्षिणः ॥९६ ॥
अरौद्रः कुण्डली चक्री विक्रम्यूर्जितशासनः ।
शब्दातिगः शब्दसहः शिशिरः शर्बरीकरः ॥९७ ॥
अक्रूरः पेशलो दक्षो दक्षिणः क्षमिणांवरः ।
विद्वत्तमो वीतभयः पुण्यश्रवणकीर्तनः ॥९८ ॥
उत्तारणो दुष्कृतिहा पुण्यः दुःस्वप्ननाशनः ।
वीरहा रक्षणः सन्तो जीवनः पर्यवस्थितः ॥९९ ॥
अनन्तरूपोऽनन्तश्रीर्जितमन्युर्भयापहः ।
चतुरस्रो गभीरात्मा विदिशो व्यादिशोदिशः ॥१०० ॥

अनादिर्भूर्भुवो लक्ष्मीः सुवीरो रुचिराङ्गदः ।
जननो जनजन्मादिर्भीमो भीमपराक्रमः ॥१०१॥
आधारनिलयोऽधाता पुष्पहासः प्रजागरः ।
उर्ध्वगः सत्पथाचारः प्राणदः प्रणवः पणः ॥१०२॥
प्रमाणं प्राणनिलयः प्राणाभृत् प्राणजीवनः ।
तत्त्वं तत्त्वविदेकात्मा जन्ममृत्युजरातिगः ॥१०३॥
भूर्भुवः स्वस्तरुस्तारः सविता प्रपितामहः ।
यज्ञो यज्ञपतिर्यज्वा यज्ञाङ्गो यज्ञवाहनः ॥१०४॥
यज्ञभृद्यज्ञकृद्यज्ञी यज्ञभुग्यज्ञसाधनः ।
यज्ञान्तकृद्यज्ञगुह्यमन्नमन्नाद एव च ॥१०५॥
आत्मयोनिः स्वयञ्जातो वैखानः सामगायनः ।
देवकीनन्दनः स्रष्टा क्षितीशः पापनाशनः ॥१०६॥
शङ्खभृन्नन्दकी चक्री शार्ङ्गधन्वा गदाधरः ।
रथाङ्गपाणिरक्षोभ्यः सर्वप्रहरणायुधः ॥१०७॥
सर्वप्रहरणायुध ओं नमः ।
इतीदं कीर्तनीयस्य केशवस्य महात्मनः ।
नाम्नां सहस्रं दिव्यानामशेषेण प्रकीर्तितम् ॥१०८॥
य इदं शृणुयान्नित्यं यश्चापि परिकीर्तयेत् ।
नाशुभं प्राप्नुयात्किञ्चित् सोऽमुत्रेह च मानवः ॥१०९॥
वेदान्तगो ब्राह्मणः स्यात्क्षत्रियो विजयी भवेत् ।
वैश्यो धनसमृद्धः स्याच्छूद्रः सुखमवाप्नुयात् ॥११०॥
धर्मार्थी प्राप्नुयाद्धर्ममर्थार्थी चार्थमाप्नुयात् ।
कामानवाप्नुयात्कामी प्रजार्थी प्राप्नुयात्प्रजाम् ॥१११॥

भक्तिमान् यः सदोत्थाय शुचिस्तद्गतमानसः ।
सहस्रं वासुदेवस्य नाम्नामेतत् प्रकीर्तयेत् ॥११२॥

यशः प्राप्नोति विपुलं ज्ञातिप्राधान्यमेव च ।
अचलां श्रियमाप्नोति श्रेयः प्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥११३॥

न भयं क्वचिदाप्नोति वीर्यं तेजश्च विन्दति ।
भवत्यरोगो द्युतिमान् बलरूपगुणान्वितः ॥११४॥

रोगार्तो मुच्यते रोगाद् बद्धो मुच्येत बन्धनात् ।
भयान्मुच्येत भीतस्तु मुच्येतापन्न आपदः ॥११५॥

दुर्गाण्यतितरत्याशु पुरुषः पुरुषोत्तमम् ।
स्तुवन्नामसहस्रेण नित्यं भक्तिसमन्वितः ॥११६॥

वासुदेवाश्रयो मर्त्यो वासुदेवपरायणः ।
सर्वपापविशुद्धात्मा याति ब्रह्म सनातनम् ॥११७॥

न वासुदेवभक्तानामशुभं विद्यते क्वचित् ।
जन्ममृत्युजराव्याधिभयं नैवोपजायते ॥११८॥

इमं स्तवमधीयानः श्रद्धा-भक्तिसमन्वितः ।
युज्येतात्मसुख-क्षान्ति-श्री-धृति-स्मृति-कीर्तिभिः ॥११९॥

न क्रोधो न च मात्सर्यं न लोभो नाशुभा मतिः ।
भवन्ति कृतपुण्यानां भक्तानां पुरुषोत्तमे ॥१२०॥

द्यौः सचन्द्रार्कनक्षत्रा खं दिशो भूर्महोदधिः ।
वासुदेवस्य वीर्येण विधृतानि महात्मनः ॥१२१॥

ससुरासुरगन्धर्वं सयक्षोरगराक्षसम् ।
जगद्वशे वर्ततेदं कृष्णस्य सचराचरम् ॥१२२॥

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिः सत्त्वं तेजो बलं धृतिः ।
वासुदेवात्मकान्याहुः क्षेत्रं क्षेत्रज्ञ एव च ॥१२३॥

सर्वागमानामाचारः प्रथमं परिकल्पते ।
आचारप्रभवो धर्मो धर्मस्य प्रभुरच्युतः ॥१२४॥

ऋषयः पितरो देवा महाभूतानि धातवः ।
जङ्गमाजङ्गमं चेदं जगन्नारायणोद्भवम् ॥१२५॥

योगो ज्ञानं तथा साङ्ख्यं विद्याः शिल्पादि कर्म च ।
वेदाः शास्त्राणि विज्ञानमेतत् सर्वं जनार्दनात् ॥१२६॥

एको विष्णुमहद्भूतं पृथग्भूतान्यनेकशः ।
त्रीन् लोकान् व्याप्य भूतात्मा भुङ्क्ते विश्वभुगव्ययः ॥१२७॥

इदं स्तवं भगवतो विष्णोर्व्यासेन कीर्तितम् ।
पठेद्य इच्छेत्पुरुषः श्रेयः प्राप्तुं सुखानि च ॥१२८॥

विश्वेश्वरमजं देवं जगतः प्रभवाप्ययम् ।
भजन्ति ये पुष्कराक्षं न ते यान्ति पराभवम् ॥१२९॥

अर्जुन उवाच— पद्मपत्रविशालाक्ष पद्मनाभ सुरोत्तम ।
भक्तानामनुरक्तानां त्राता भव जनार्दन ॥१३०॥

श्रीभगवानुवाच— ॥

यो मां नामसहस्रेण स्तोतुमिच्छति पाण्डव ।
सोहमेकेन श्लोकेन स्तुत एव न संशयः ॥१३१॥

नमोऽस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्तये सहस्र-पादाक्षिशिरोरुबाहवे ।
सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते सहस्रकोटियुगधारिणे नमः ॥१३२॥

नमः कमलनाभाय नमस्ते जलशायिने ।
नमस्ते केशवानन्त वासुदेव नमोस्तु ते ॥१३३॥

वासनाद्वासुदेवस्य वासितं भुवनत्रयम् ।
सर्वभूतनिवासोसि वासुदेव नमोस्तु ते ॥१३४॥

नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च ।
जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः ॥१३५॥

आकाशात् पतितं तोयं यथा गच्छति सागरम् ।
सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रतिगच्छति ॥१३६॥

एष निष्कण्टकः पन्था यत्र संपूज्यते हरिः ।
कुपथं तं विजानीयाद् गोविन्दरहितागमम् ॥१३७॥

सर्वदेवेषु यत् पुण्यं सर्वतीर्थेषु यत् फलम् ।
तत् फलं समवाप्नोति स्तुत्वा देवं जनार्दनम् ॥१३८॥

यो नरः पठते नित्यं त्रिकालं केशवालये ।
द्विकालमेककालं वा क्रूरं सर्वं व्यपोहति ॥१३९॥

दह्यन्ते रिपवस्तस्य सौम्याः सर्वे सदा ग्रहाः ।
विलीयन्ते च पापानि स्तवे ह्यस्मिन्प्रकीर्तिते ॥१४०॥

येन ध्यातः श्रुतो येन येनायं पठितः स्तवः ।
दत्तानि सर्वदानानि सुराः सर्वे समर्चिताः ॥१४१॥

इह लोके परे वापि न भयं विद्यते क्वचित् ।
नाम्नां सहस्रं योऽधीते द्वादश्यां मम सन्निधौ ॥१४२॥

स निर्दहति पापानि कल्पकोटिशतानि च ।
अश्वत्थसन्निधौ पार्थ तुलसीसन्निधौ तथा ॥१४३॥

पठेन्नामसहस्रन्तु गवां कोटिफलं लभेत् ।
देवालये पठेन्नित्यं तुलसीवनसंस्थितः ॥१४४॥

नरो मुक्तिमवाप्नोति चक्रपाणेर्वचो यथा :
ब्रह्महत्यादिकं घोरं सर्वं पापं विनश्यति ॥१४५॥

इति श्रीमन्महाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामानुशासनिके पर्वणि दानधर्मे भीष्मयुधिष्ठिरसंवादे श्रीविष्णोर्दिव्यसहस्रनामस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

अथ महामृत्युञ्जयस्तोत्रम्

ॐ अस्य श्रीमहामृत्युञ्जयस्तोत्रमन्त्रस्य श्रीमार्कण्डेय ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः, श्रीमृत्युञ्जयो देवता, गौरी शक्तिः, मम सर्वारिष्टसमस्तमृत्युशान्त्यर्थं सकलैश्वर्य-प्राप्त्यर्थञ्च पाठे (जपे) विनियोगः ।

अथ ध्यानम्

चन्द्रार्काग्निविलोचनं स्मितमुखं पद्मद्वयान्तःस्थितं
मुद्रापाशमृगाक्षसूत्रविलसत्पाणिं हिमांशुप्रभुम् ।
कोटीन्दुप्रगलत्सुधाप्लुततनुं हारादिभूषोज्ज्वलं
कान्तं विश्वविमोहनं पशुपतिं मृत्युञ्जयं भावयेत् ॥
ॐ रुद्रं पशुपतिं स्थाणुं नीलकण्ठमुमापतिम् ।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति ॥१॥
नीलकण्ठं कलामूर्तिं कालज्ञं कालनाशनम् ।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति ॥२॥
नीलकण्ठं विरूपाक्षं निर्मलं निलयप्रभम् ।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति ॥३॥
वामदेवं महादेवं लोकनाथं जगद्गुरुम् ।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति ॥४॥
देवदेवं जगन्नाथं देवेशं वृषभध्वजम् ।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति ॥५॥
गङ्गाधरं महादेवं सर्वाभरणभूषितम् ।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति ॥६॥

अनाथः परमानन्दं कैवल्यपदगामिनि ।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति ॥७॥
स्वर्गापवर्गदातारं सृष्टिस्थितिविनाशकम् ।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति ॥८॥
उत्पत्तिस्थितिसंहारकर्त्तारमीश्वरं गुरुम् ।
नमामि शिरसा देवं किं नो मृत्युः करिष्यति ॥९॥
मार्कण्डेयकृतं स्तोत्रं यः पठेच्छिवसन्निधौ ।
तस्य मृत्युभयं नास्ति नाग्निचोरभयं क्वचित् ॥१०॥
शतावर्तं प्रकर्तव्यं सङ्कटे कष्टनाशनम् ।
शुचिर्भूत्वा पठेत्स्तोत्रं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥११॥
मृत्युञ्जय महादेव त्राहि मां शरणागतम् ।
जन्ममृत्युजरारोगैः पीडितं कर्मबन्धनैः ॥१२॥
तावतस्त्वद्गतः प्राणस्त्वच्चित्तोऽहं सदा मृड ।
इति विज्ञाप्य देवेशं त्र्यम्बकाख्यमनुं जपेत् ॥१३॥
नमः शिवाय साम्बाय हरये परमात्मने ।
प्रणतक्लेशनाशाय योगिनां पतये नमः ॥१४॥

शताङ्गायुर्मन्त्रः

ॐ ह्रीं श्रीं ह्रीं ह्रौं ह्रैं ह्रः हन हन दह दह पच पच गृहाण गृहाण मारय मारय मर्दय मर्दय महामहाभैरव महाभैरवरूपेण धुनय धुनय कम्पय कम्पय विघ्नय विघ्नय विश्वेश्वरीं क्षोभय क्षोभय कटु कटु मोहय मोहय हुंफट् स्वाहा इति मन्त्रमात्रेण समाभीष्टो भवति ।

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मार्कण्डेयकृतमहामृत्युञ्जयस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

श्रीशिवमहिम्नः स्तोत्रम्

श्रीगणेशाय नमः ॥

पुष्पदन्त उवाच—

महिम्नः पारन्ते परमविदुषो यद्यसदृशी
स्तुतिर्ब्रह्मादीनामपि तदवसन्नास्त्वयि गिरः ।
अथावाच्यः सर्वः स्वमतिपरिणामावधि गृणन्
ममाप्येष स्तोत्रे हर निरपवादः परिकरः ॥१ ॥

अतीतः पन्थानं तव च महिमा वाङ्मनसयो-
रतद्व्यावृत्त्या यं चकितमभिधत्ते श्रुतिरपि ।
स कस्य स्तोतव्यः कतिविधगुणः कस्य विषयः
पदे त्वर्वाचीने पतति न मनः कस्य न वचः ॥२ ॥

मधुस्फीता वाचः परमममृतं निर्मितवत-
स्तव ब्रह्मन् किं वागपि सुरगुरोर्विस्मयपदम् ।
मम त्वेतां वाणीं गुणकथनपुण्येन भवतः
पुनामीत्यर्थेऽस्मिन् पुरमथन बुद्धिर्व्यवसिता ॥३ ॥

तवैश्वर्यं यत्तज्जगदुदयरक्षाप्रलयकृत्
त्रयी वस्तु व्यस्तं तिसृषु गुणभिन्नासु तनुषु ।
अभव्यानामस्मिन् वरद रमणीयामरमणीं
विहन्तुं व्याक्रोशीं विदधत इहैके जडधियः ॥४ ॥

किमीहः किं कायः स खलु किमुपायस्त्रिभुवनं
किमाधारो धाता सृजति किमुपादान इति च ।
अतर्क्यैश्वर्ये त्वय्यनवसरदुःस्थो हतधियः
कुतर्कोऽयं कांश्चिन् मुखरयति मोहाय जगतः ॥५ ॥

अजन्मानो लोकाः किमवयववन्तोऽपि जगता-
मधिष्ठातारं किं भवविधिरनादृत्य भवति ।
अनीशो वा कुर्याद् भुवनजनने कः परिकरो
यतो मन्दास्त्वां प्रत्यमरवर संशेरत इमे ॥६॥

त्रयी साङ्ख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च ।
रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥७॥

महोक्षः खट्वाङ्गं परशुरजिनं भस्म फणिनः
कपालं चेतीयत्तव वरद तन्त्रोपकरणम् ।
सुरास्तां तामृद्धिं विदधति भवद्भ्रूप्रणिहितां
न हि स्वात्मारामं विषयमृगतृष्णा भ्रमयति ॥८॥

ध्रुवं कश्चित्सर्वं सकलमपरस्त्वध्रुवमिदं
परो ध्रौव्या ध्रौव्ये जगति गदति व्यस्तविषये ।
समस्तेऽप्येतस्मिन् पुरमथन तैर्विस्मित इव
स्तुवञ्जिह्रेमि त्वां न खलु ननु धृष्टा मुखरता ॥९॥

तवैश्वर्यं यत्नाद्यदुपरि विरञ्चिर्हरिरधः
परिच्छेत्तुं यातावनलमनलस्कंधवपुषः ।
ततो भक्तिश्रद्धाभरगुरुगृणद्भ्यां गिरिश यत्
स्वयं तस्थे ताभ्यां तव किमनुवृत्तिर्न फलति ॥१०॥

अयत्नादापाद्य त्रिभुवनमवैरव्यतिकरं
दशास्यो यद्बाहूनभृत रणकण्डूपरवशान् ।

शिरः पद्मश्रेणीरचितचरणाम्भोरुहबलेः
स्थिरायास्त्वद्भक्तेस्त्रिपुरहर विस्फूर्जितमिदम् ॥११॥
अमुष्य त्वत्सेवा समधिगतसारं भुजवनं
बलात् कैलासेऽपि त्वदधिवसतौ विक्रमयतः ।
अलभ्या पातालेऽप्यलसचलिताङ्गुष्ठशिरसि
प्रतिष्ठा त्वय्यासीद्ध्रुवमुपचितो मुह्यति खलः ॥१२॥
यदृद्धिं सुत्राम्णो वरद परमोच्चैरपि सती-
मधश्चक्रे वाणः परिजनविधेयस्त्रिभुवनम् ।
न तच्चित्रं तस्मिन् वरिवसितरी त्वच्चरणयो-
र्न कस्याप्युन्नत्यै भवति शिरसस्त्वय्यवनतिः ॥१३॥
अकाण्डब्रह्माण्डक्षयचकितदेवासुरकृपा
विधेयस्याऽऽसीद्यस्त्रिनयन विषं संहृतवतः ।
स कल्माषः कण्ठे तव न कुरुते न श्रियमहो
विकारोऽपि श्लाघ्यो भुवनभयभङ्गव्यसनिनः ॥१४॥
असिद्धार्था नैव क्वचिदपि सदेवासुरनरे
निवर्तन्ते नित्यं जगति जयिनो यस्य विशिखाः ।
स पश्यन्नीश त्वामितरसुरसाधारणमभूत्
स्मरः स्मर्तव्यात्मा नहि वहिषु पथ्यः परिभवः ॥१५॥
मही पादाघाताद्व्रजति सहसा संशयपदं
पदं विष्णोर्भ्राम्यद्भुजपरिघरुग्णग्रहगणम् ।
मुहुर्द्यौर्दौस्थ्यं यात्यनिभृतजटाताडिततटा
जगद्रक्षायै त्वं नटसि ननु वामैव विभुता ॥१६॥

वियद्व्यापी तारागणगुणितफेनोद्गमरुचिः
प्रवाहो वारां यः पृषतलघुदृष्टः शिरसि ते ।
जगद् द्वीपाकारं जलधिवलयं तेन कृतमि-
त्यनेनैवोन्नेयं धृतमहिमदिव्यं तव वपुः ॥१७॥

रथः क्षोणी यन्ता शतधृतिरगेन्द्रो धनुरथो
रथाङ्गे चन्द्रार्कौ रथचरणपाणिः शर इति ।
दिधक्षोस्ते कोऽयं त्रिपुरतृणमाडम्बरविधि-
र्विधेयैः क्रीडन्त्यो न खलु परतन्त्राः प्रभुधियः ॥१८॥

हरिस्ते साहस्त्रं कमलबलिमाधाय पदयो-
र्यदेकोने तस्मिन्निजमुदहरन्नेत्रकमलम् ।
गतो भक्त्युद्रेकः परिणतिमसौ चक्रवपुषा
त्रयाणां रक्षायै त्रिपुरहर जागर्ति जगताम् ॥१९॥

क्रतौ सुप्ते जाग्रत्त्वमसि फलयोगे क्रतुमतां
क्व कर्म प्रध्वस्तं फलति पुरुषाराधनमृते ।
अतस्त्वां संप्रेक्ष्य क्रतुषु फलदानप्रतिभुवं
श्रुतौ श्रद्धां बद्ध्वा दृढपरिकरः कर्मसु जनः ॥२०॥

क्रियादक्षो दक्षः क्रतुपतिरधीशस्तनुभृता-
मृषीणामार्त्विज्यं शरणद सदस्याः सुरगणाः ।
क्रतुभ्रंशस्त्वाः क्रतुषु फलदानव्यसनिनो
ध्रुवं कर्तुः श्रद्धाविधुरमभिचाराय हि मखाः ॥२१॥

प्रजानाथं नाथ प्रसभमभिकं स्वां दुहितरं
गतं रोहिद्भूतां रिरमयिषुमृष्यस्य वपुषा ।

धनुष्पाणेर्यातं दिवमपि सपत्राकृतममु -
त्रसन्तं तेऽद्यापि त्यजति न मृगव्याधरभसः ॥२२ ॥

स्वलावण्याशंसाधृतधनुषमह्राय तृणवत्
पुरः प्लुष्टं दृष्ट्वा पुरमथन पुष्पायुधमपि ।
यदि स्त्रैणं देवी यमनिरतदेहार्धघटना-
दवैति त्वामद्धा वत वरद मुग्धा युवतयः ॥२३ ॥

श्मशानेष्वाक्रीड़ा स्मरहर पिशाचाः सहचरा-
श्चिताभस्मालेपः स्त्रगपि नृकरोटीपरिकरः ।
अमङ्गल्यं शीलं तव भवतु नामैवमखिलं
तथापि स्मर्तृणां वरद परमं मङ्गलमसि ॥२४ ॥

मनः प्रत्यक्चित्ते सविधमवधायात्तमरुतः
प्रहृष्यद्रोमाणः प्रमदसलिलोत्संगितदृशः ।
यदालोक्याह्लादं ह्रद इव निमज्यामृतमये
दधत्यन्तस्तत्त्वं किमपि यमिनस्तत्किल भवान् ॥२५ ॥

त्वमर्कस्त्वं सोमस्त्वमसि पवनस्त्वं हुतवह-
स्त्वमापस्त्वं व्योम त्वमु धरणिरात्मा त्वमिति च ।
परिच्छिन्नामेवं त्वयि परिणता बिभ्रति गिरं
न विद्मस्तत्तत्त्वं वयमिह हि यत्त्वं न भवसि ॥२६ ॥

त्रयीं तिस्त्रो वृत्तीस्त्रिभुवनमथो त्रीनपि सुरा
नकाराद्यैर्वर्णैस्त्रिभिरभिदधत्तीर्णविकृति ।
तुरीयं ते धाम ध्वनिभिरवरुन्धानमणुभिः
समस्तं व्यस्तं त्वां शरणद गृणत्योमिति पदम् ॥२७ ॥

भवश्शर्वो रुद्रः पशुपतिरथोग्रः सह महां-
स्तथा भीमेशानाविति यदभिधानाष्टकमिदम् ।

अमुष्मिन्प्रत्येकं प्रविचरति देव श्रुतिरपि
प्रियायास्मै धाम्ने प्रणिहितनमस्योऽस्मि भवते ॥२८॥

नमो नेदिष्ठाय प्रियदवदविष्ठाय च नमो
नमः क्षोदिष्ठाय स्मरहर महिष्ठाय च नमः ।
नमो वर्षिष्ठाय त्रिनयन यविष्ठाय च नमो
नमः सर्वस्मै ते तदिदमिति शर्वाय च नमः ॥२९॥

बहुलरजसे विश्वोत्पत्तौ भवाय नमो नमः
प्रबलतमसे तत्संहारे हराय नमो नमः ।
जनसुखकृते सत्त्वोत्पत्तौ मृडाय नमो नमः
प्रमहसि पदे निस्त्रैगुण्ये शिवाय नमो नमः ॥३०॥

कृशपरिणति चेतः क्लेशवश्यं क्व चेदं
क्व च तव गुणसीमोल्लङ्घिनी शश्वदृद्धिः ।
इति चकितममन्दीकृत्य मां भक्तिराधाद्
वरद चरणयोस्ते वाक्यपुष्पोपहारम् ॥३१॥

असितगिरिसमं स्यात्कज्जलं सिन्धुपात्रे
सुरतरुवरशाखा लेखिनी पत्रमुर्वी ।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति ॥३२॥

असुरसुरमुनीन्द्रैरर्चितस्येन्दुमौले-
र्ग्रथितगुणमहिम्नो निर्गुणस्येश्वरस्य ।
सकलगणवरिष्ठः पुष्पदन्ताभिधानो
रुचिरमलघुवृत्तैः स्तोत्रमेतच्चकार ॥३३॥

अहरहरनवद्यं धूर्जटेः स्तोत्रमेतत्
पठति परमभक्त्या शुद्धचित्तः पुमान् यः ।
स भवति शिवलोके रुद्रतुल्यस्तथात्र
प्रचुरतरधनायुः पुत्रवान् कीर्तिमांश्च ॥३४ ॥

महेशान्नापरो देवो महिम्नो नापरा स्तुतिः ।
अघोरान्नापरो मंत्रो नास्ति तत्त्वं गुरोः परम् ॥३५ ॥

दीक्षा दानं तपस्तीर्थं ज्ञानं यागादिकाः क्रियाः ।
महिम्नस्तवपाठस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥३६ ॥

कुसुमदशननामा सर्वगन्धर्वराजः
शिशुशशिधरमौलेर्देवदेवस्य दासः ।
स खलु निजमहिम्नो भ्रष्ट एवास्य रोषात्
स्तवनमिदमकार्षीद्दिव्यदिव्यं महिम्नः ॥३७ ॥

सुरवर-मुनिपूज्यं स्वर्गमोक्षैकहेतुं
पठति यदि मनुष्यः प्राञ्जलिर्नान्यचेताः ।
व्रजति शिवसमीपं किन्नरैः स्तूयमानः
स्तवनमिदममोघं पुष्पदन्तप्रणीतम् ॥३८ ॥
श्रीपुष्पदन्तमुखपङ्कजनिर्गतेन
स्तोत्रेण किल्बिषहरेण हरप्रियेण ।
कण्ठस्थितेन पठितेन समाहितेन
सुप्रीणितो भवति भूतपतिर्महेशः ॥३९ ॥
इत्येषा वाङ्मयी पूजा श्रीमच्छंकरपादयोः ।
अर्पिता तेन मे देवः प्रीयतां च सदाशिवः ॥४० ॥

श्रीपुष्पदन्तगन्धर्वराजविरचितं श्रीशिवमहिम्नःस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

श्रीशिव-मानस-पूजा-स्तोत्रम्

रत्नैः कल्पितमासनं हिमजलैः स्नानं च दिव्याम्बरं,
नाना रत्नविभूषितं मृगमदामोदाङ्कितं चन्दनम् ।
जातीचम्पकविल्वपत्रसहितं पुष्पं च धूपं तथा
दीपं देव दयानिधे पशुपते हृत्कल्पितं गृह्यताम् ॥१॥

सौवर्णे नवरत्नखण्डरचिते पात्रे घृतं पायसं,
भक्ष्यं पञ्चविधं पयोःदधियुतं रम्भाफलं पानकम् ।
शाकानामयुतं जलं रुचिकरं कर्पूरखण्डोज्ज्वलं
ताम्बूलं मनसा मया विरचितं भक्त्या प्रभो स्वीकुरु ॥२॥

छत्रं चामरयोर्युगं व्यजनकं चादर्शकं निर्मलं
वीणाभेरिमृदङ्गकाहलकलागीतं च नृत्यं तथा ।
साष्टाङ्गप्रणतिः स्तुतिर्बहुविधा ह्येतत् समस्तं मया,
सङ्कल्पेन समर्पितं तव विभो पूजां गृहाण प्रभो ॥३॥

आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः शरीरं गृहं,
पूजा ते विषयोपभोगरचना निद्रा समाधिस्थितिः ।
संचारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरो,
यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भो तवाराधनम् ॥४॥

करचरणकृतं वाक्कायजं कर्मजं वा,
श्रवणनयनजं वा मानसं वापराधम् ।
विहितमविहितं वा सर्वमेतत्क्षमस्व,
जय जय करुणाब्धे श्रीमहादेव शम्भो ॥५॥

श्रीशिव-मानस-पूजा-स्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

श्री रावणकृतशिवताण्डवस्तोत्रम्

श्री गणेशाय नमः ॥ जटाटवीगलज्जलप्रवाहपावितस्थले गलेऽवलम्ब्यलम्बितां भुजङ्गतुङ्गमालिकाम् । डमड्डमड्डमड्डमन्निनादमड्डमर्वयं चकारच्चण्डताण्डवं तनोतु नः शिवः शिवम् ॥१ ॥ जटाकटाहसम्भ्रमभ्रमन्निलिम्पनिर्झरीविलोलवीचिवल्लरीविराजमानमूर्धनि । धगद्धगद्धगज्ज्वलल्ललाटपट्टपावके किशोरचन्द्रशेखरे रतिःप्रतिक्षणं मम ॥२ ॥ धराधरेन्द्रनन्दिनीविलासबन्धुबन्धुस्फुरद्दिगन्तसन्ततिप्रमोदमानमानसे । कृपाकटाक्षधोरणीनिरुद्धदुर्धरापदि क्वचिद्दिगम्बरे मनो विनोदमेतु वस्तुनि ॥३ ॥ जटाभुजङ्गपिङ्गलस्फुरत्फणामणिप्रभाकदम्बकुङ्कुमद्रवप्रलिप्तदिग्वधूमुखे । मदान्धसिन्धुरस्फुरत्त्वगुत्तरीयमेदुरे मनो विनोदमद्भुतं विभर्तु भूतभर्तरि ॥४ ॥ सहस्रलोचनप्रभृत्यशेषलेखशेखरप्रसूनधूलिधोरणीविधूसराङ्घ्रिपीठभूः । भुजङ्गराजमालया निबद्धजाटजूटकः श्रिय चिराय जायतां चकोरबन्धुशेखरः ॥५ ॥ ललाटचत्वरज्वलद्धनञ्जयस्फुलिङ्गभानिपीतपञ्चसायकं नमन्निलिम्पनायकम् । सुधामयूखलेखया विराजमानशेखरं महाकपालि सम्पदे शिरोजटालमस्तु नः ॥६ ॥ करालभालपट्टिकाधगद्धगद्धगज्ज्वलद्धनञ्जयाधरीकृतप्रचण्डपञ्चसायके । धराधरेन्द्रनन्दिनीकुचाग्रचित्रपत्रकप्रकल्पनैकशिल्पिनि त्रिलोचने मतिर्मम ॥७ ॥ नवीनमेघमण्डली निरुद्धदुर्धरस्फुरत्कुहूनिशीथिनीतमः प्रबन्धबन्धुकन्धरः । निलिम्पनिर्झरीधरस्तनोतु कृत्तिसिन्धुरः कलानिधानबन्धुरः श्रियं जगद्धुरन्धरः ॥८ ॥ प्रफुल्लनीलपङ्कजप्रपञ्चकालिमच्छटा विडम्बिकण्डकन्धरारुचिप्रबन्धकन्धरम् । स्मरच्छिदं पुरच्छिदं भवच्छिदं मखच्छिदं गजच्छिदान्धकच्छिदं तमन्तकच्छिदं भजे ॥९ ॥ अखर्वसर्वमङ्गलाकलाकदम्बमञ्जरीरसप्रवाहमाधुरीविजृम्भणामधुव्रतम् । स्मरान्तकं पुरान्तकं भवान्तकं मखान्तकं गजान्तकान्धकान्तकं तमन्तकान्तकं भजे ॥१० ॥ जयत्वदभ्रविभ्रमभ्रमद्भुजङ्गमस्फुरद्धगद्धगद्विनिर्गमत्करालभालहव्यवाट् । धिमिद्धिमिद्धिमिध्वनन्मृदङ्गतुङ्गमङ्गलध्वनिक्रमप्रवर्तितप्रचण्डताण्डवः शिवः ॥११ ॥ दृषद्विचित्रतल्पयोर्भुजङ्गमौक्तिकस्रजोर्गरिष्ठरत्नलोष्ठयोः सुहृद्विपक्षपक्षयोः । तृणारविन्दचक्षुषोः प्रजामहीमहे-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Maha Vidyalaya Collection.

न्द्रयोः समं प्रवर्तयन्मनः कदा सदाशिवं भजे ॥१२ ॥ कदा निलिम्पनिर्झरीनिकुञ्जकोटरे वसन् विमुक्तदुर्मतिः सदा शिरस्थमञ्जलिं वहन् । विमुक्तलोललोचनाललामभाललग्नकः शिवेति मन्त्रमुच्चरन् कदा सुखी भवाम्यहम् ॥१३ ॥ इमं हि नित्यमेवमुक्तमुत्तमोत्तमं स्तवं पठन्स्मरन्ब्रुवन्नरोविशुद्धिमेति सन्ततम् । हरे गुरौ सुभक्तिमाशु याति नान्यथागतिं विमोहनंहि देहिनां सुशङ्करस्य चिन्तनम् । ।१४ ॥ पूजावसानसमये दशवक्त्रगीतं यः शम्भुपूजनमिदं पठति प्रदोषे । तस्य स्थिरां रथगजेन्द्रतुरङ्गयुक्तां लक्ष्मीं सदैव सुमुखीं प्रददाति शम्भुः ॥१५ ॥

इति श्रीरावणविरचितं शिवताण्डवस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

श्रीशिवपञ्चाक्षरस्तोत्रम्

नागेन्द्रहाराय त्रिलोचनाय भस्माङ्गरागाय महेश्वराय ।
नित्याय शुद्धाय दिगम्बराय तस्मै 'न' काराय नमः शिवाय ॥१ ॥
मन्दाकिनीसलिलचन्दनचर्चिताय नन्दीश्वरप्रमथनाथमहेश्वराय ।
मन्दारपुष्पबहुपुष्पसुपूजिताय तस्मै 'म' काराय नमः शिवाय ॥२ ॥
शिवाय गौरीवदनाब्जवृन्दसूर्याय दक्षाध्वरनाशकाय ।
श्रीनीलकण्ठाय वृषध्वजाय तस्मै 'शि' काराय नमः शिवाय ॥३ ॥
वसिष्ठकुम्भोद्भवगौतमाय मुनीन्द्रदेवार्चितशेखराय ।
चन्द्रार्कवैश्वानरलोचनाय तस्मै 'व' काराय नमः शिवाय ॥४ ॥
यक्षस्वरूपाय जटाधराय पिनाकहस्ताय सनातनाय ।
दिव्याय देवाय दिगम्बराय तस्मै 'य' काराय नमः शिवाय ॥५ ॥
पञ्चाक्षरमिदं पुण्यं यः पठेच्छिवसन्निधौ ।
शिवलोकमवाप्नोति शिवेन सह मोदते ॥६ ॥

इति श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचितं शिवपञ्चाक्षरस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

शिवरामाष्टकम्

शिव हरे शिव राम सखे प्रभो
त्रिविध ताप-निवारण हे विभो ।
अजजनेश्वर यादव पाहि मां
शिवहरे विजयं कुरु मे वरम् ॥१॥

कमललोचन राम दयानिधे
हरगुरो गजरक्षक गोपते ।
शिवतनो भव शंकर पाहि मां
शिव हरे विजयं कुरु मे वरम् ॥२॥

स्वजनरञ्जन मङ्गलमन्दिरं
भजति तं पुरुषः परमं पदम् ।
भवति तस्य सुखं परमाद्भुतं
शिव हरे विजयं कुरु मे वरम् ॥३॥

जय युधिष्ठिरवल्लभ भूपते
जय जयार्जित-पुण्य-पयोनिधे ।
जय कृपामय कृष्ण नमोऽस्तुते
शिव हरे विजयं कुरु मे वरम् ॥४॥

भवविमोचन माधव मापते
सुकविमानसहंस शिवारते ।
जनकजारत राघव रक्ष मां
शिव हरे विजयं कुरु मे वरम् ॥५॥

अवनि-मण्डल-मङ्गल मापते
जलद-सुन्दर राम रमापते ।
निगम-कीर्ति-गुणार्णव गोपते
शिव हरे विजयं कुरु मे वरम् ॥६॥

पतित-पावन-नाम-मयी लता
तव यशो विमलं परिगीयते ।
तदपि माधव मां किमुपेक्षसे
शिव हरे विजयं कुरु मे वरम् ॥७॥

अमरता परदेव रमापते
विजयतस्तव नाम घनोपमा ।
मयि कथं करुणार्णव जायते
शिव हरे विजयं कुरु मे वरम् ॥८॥

हनुमतः प्रियतोषकर प्रभो
सुरसरिद्धृतशेखर हे गुरो ।
मम विभो किमु विस्मरणं कृतं
शिव हरे विजयं कुरु मे वरम् ॥९॥

नरहरे रतिरञ्जन सुन्दरं
पठति यः शिवराम-कृतस्तवम् ।
वसति रामरमाचरणाम्बुजे
शिव हरे विजयं कुरु मे वरम् ॥१०॥

श्रीरामनन्दयति-विरचितं शिवरामस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

श्रीआदित्यहृदयस्तोत्रम्

ततो युद्धपरिश्रान्तं समरे चिन्तया स्थितम् ।
रावणं चाग्रतो दृष्ट्वा युद्धाय समुपस्थितम् ॥१॥

दैवतैश्च समागम्य द्रष्टुमभ्यागतो रणम् ।
उपगम्याब्रवीद्राममगस्त्यो भगवाँस्तदा ॥२॥

राम राम महाबाहो शृणु गुह्यं सनातनम् ।
येन सर्वानरीन् वत्स समरे विजयिष्यसे ॥३॥

आदित्यहृदयं पुण्यं सर्वशत्रुविनाशनम् ।
जपावहं जपन्नित्यमक्षयं परमं शिवम् ॥४॥
सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं सर्वपापप्रणाशनम् ।
चिन्ताशोकप्रशमनमायुर्वर्धनमुत्तमम् ॥५॥
रश्मिमन्तं समुद्यन्तं देवासुरनमस्कृतम् ।
पूजयस्व विवस्वन्तं भाष्करं भुवनेश्वरम् ॥६॥
सर्वदेवात्मको ह्येष तेजस्वी रश्मिभावनः ।
एष देवासुरगणाँल्लोकान्पाति गभस्तिभिः ॥७॥
एष ब्रह्मा च विष्णुश्च शिवः स्कन्दः प्रजापतिः ।
महेन्द्रो धनदः कालो यमः सोमो ह्यपाम्पतिः ॥८॥
पितरो वसवः साध्या अश्विनौ मरुतो मनुः ।
वायुर्वह्निः प्रजाः प्राण ऋतुकर्ता प्रभाकरः ॥९॥
आदित्यः सविता सूर्यः खगः पूषा गभस्तिमान् ।
सुवर्णसदृशो भानुर्हिरण्यरेता दिवाकरः ॥१०॥
हरिदश्वः सहस्रार्चिः सप्तसप्तिर्मरीचिमान् ।
तिमिरोन्मथनः शम्भुस्त्वष्टा मार्तण्डकोऽंशुमान् ॥११॥
हिरण्यगर्भः शिशिरस्तपनोऽहस्करो रविः ।
अग्निगर्भोऽदितेः पुत्रः शङ्खः शिशिरनाशनः ॥१२॥
व्योमनाथस्तमोभेदी ऋग्यजुः सामपारगः ।
घनवृष्टिरपां मित्रो विंध्यवीथीप्लवङ्गमः ॥१३॥
आतपी मण्डली मृत्युः पिङ्गलः सर्वतापनः ।
कविर्विश्वो महातेजा रक्तः सर्वभवोद्भवः ॥१४॥

नक्षत्रग्रहताराणामधिपो विश्वभावनः ।
तेजसामपि तेजस्वी द्वादशात्मन्नमोऽस्तु ते ॥१५ ॥
नमः पूर्वाय गिरये पश्चिमायाद्रये नमः ।
ज्योतिर्गणानां पतये दिनाधिपतये नमः ॥१६ ॥
जयाय जयभद्राय हर्यश्वाय नमो नमः ।
नमो नमः सहस्रांशो आदित्याय नमो नमः ॥१७ ॥
नमः उग्राय वीराय सारङ्गाय नमो नमः ।
नमः पद्मप्रबोधाय प्रचण्डाय नमोऽस्तु ते ॥१८ ॥
ब्रह्मेशानाच्युतेशाय सूरायादित्यवर्चसे ।
भास्वते सर्वभक्षाय रौद्राय वपुषे नमः ॥१९ ॥
तमोघ्नाय हिमघ्नाय शत्रुघ्नायामितात्मने ।
कृतघ्नघ्नाय देवाय ज्योतिषां पतये नमः ॥२० ॥
तप्तचामीकराभाय हरये विश्वकर्मणे ।
नमस्तमोभिनिघ्नाय रुचये लोकसाक्षिणे ॥२१ ॥
नाशयत्येष वै भूतं तमेव सृजति प्रभुः ।
पायत्येष तपत्येष वर्षत्येष गभस्तिभि ॥
एष सुप्तेषु जागर्ति भूतेषु परिनिष्ठतः ।
एष चैवाग्निहोत्रं च फलं चैवाग्निहोत्रिणाम् ॥२३ ॥
देवाश्च क्रतवश्चैष क्रतूनां फलमेव च ।
यानि कृत्यानि लोकेषु सर्वेषु परमप्रभुः ॥२४ ॥
एनमापत्सु कृच्छ्रेषु कान्तारेषु भयेषु च ।
कीर्तयन्पुरुषः कश्चिन्नावसीदति राघव ॥२५ ॥

पूजयस्वैनमेकाग्रो देवदेवं जगत्पतिम् ।
एतत्त्रिगुणितं जप्त्वा युद्धेषु विजयिष्यसि ॥२६॥
अस्मिन् क्षणे महाबाहो रावणं त्वं जहिष्यसि ।
एवमुक्त्वा ततोऽगस्त्यो जगाम स यथागतम् ॥२७॥
एतच्छ्रुत्वा महातेजा नष्टशोकोऽभवत्तदा ।
धारयामास सुप्रीतो राघवः प्रयतात्मवान् ॥२८॥
आदित्यं प्रेक्ष्य जप्त्वेदं परं हर्षमवाप्तवान् ।
त्रिराचम्य शुचिर्भूत्वा धनुरादाय वीर्यवान् ॥२९॥
रावणं प्रेक्ष्य हृष्टात्मा जयार्थं समुपागमत् ।
सर्वयत्नेन महता यतस्तस्य वधेऽभवत् ॥३०॥
अथ रविरवदन्निरीक्ष्य रामं मुदितमनाः परमं प्रहृष्यमाणः ।
निशिचरपतिसंक्षयं विदित्वा सुरगणमध्यगतो वचस्त्वरेति ॥३१॥

वाल्मीकीयरामायणोक्तं आदित्यहृदयं सम्पूर्णम् ।

अन्नपूर्णास्तोत्रम्

ध्यानम्

तप्तस्वर्णनिभा शशाङ्कमुकुटा रत्नप्रभा-भासुरा,
नानावस्त्रविराजिता त्रिनयना भूमीरमाभ्यां युता ।
दर्वी हाटकभाजनञ्च दधती रम्योच्चपीनस्तनी,
नित्यं तं शिवमाकलय्य मुदिता ध्येयान्नपूर्णेश्वरी ॥
ॐ नमः कल्याणदे देवि नमः शङ्करवल्लभे ।
नमो मुक्तिप्रदे देवि ह्यन्नपूर्णे नमोऽस्तुते ॥१॥

नमो मायागृहीताङ्गि नमः शङ्करवल्लभे ।
माहेश्वरि नमस्तुभ्यमन्नपूर्णे नमोऽस्तु ते ॥२ ॥
अन्नपूर्णे हव्यवाहपत्नीरूपे हरप्रिये ।
कलाकाष्ठास्वरूपे च अन्नपूर्णे नमोऽस्तुते ॥३ ॥
उद्यद्भानुसहस्राभे नयनत्रयभूषिते ।
चन्द्रचूड़े महादेवि ह्यन्नपूर्णे नमोऽस्तु ते ॥४ ॥
विचित्रवसने देवि त्वन्नदानरतेऽनघे ।
शिवनृत्यकृतामोदे ह्यन्नपूर्णे नमोऽस्तु ते ॥५ ॥
षट्कोणपद्ममध्यस्थे षडङ्गयुवतिप्रिये ।
ब्रह्माण्यादिस्वरूपे च ह्यन्नपूर्णे नमोऽस्तु ते ॥६ ॥
देवि चन्द्रकलापीठे सर्वसाम्राज्यदायिनी ।
सर्वानन्दकरे देवि ह्यन्नपूर्णे नमोऽस्तु ते ॥७ ॥
साधकाभीष्टदे देवि भवदुःख-विनाशिनी ।
कुचभारनते देवि ह्यन्नपूर्णे नमोऽस्तु ते ॥८ ॥
इन्द्राद्यर्चितपादाब्जे रुद्रादिरूपधारिणी ।
सर्वसम्पत्प्रदे देवि ह्यन्नपूर्णे नमोऽस्तु ते ॥९ ॥
पूजाकाले पठेद्यस्तु स्तोत्रमेतत् समाहितः ।
तस्य गेहे स्थिरा लक्ष्मीर्जायते नात्र संशयः ॥१० ॥
प्रातः काले पठेद्यस्तु मन्त्रजापपुरःसरम् ।
तस्यैवान्नसमृद्धिः स्यात् वर्द्धमाना दिने दिने ॥११ ॥

अन्नपूर्णास्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

श्रीसूक्तम्

विनियोग— "ॐ अस्य श्रीहिरण्यवर्णामिति पञ्चदशर्चस्य श्रीसूक्तस्य श्रीआनन्द-कर्दम-चिक्लीतेन्दिरासुता यता ऋषयः श्रीरग्निर्देवते आद्यत्रयस्यानुष्टुप्छन्दः अन्त्यायाः प्रस्तार-पंक्तिश्छन्दो व्यञ्जनानि बीजानि स्वराः शक्तयः बिन्दुः कीलकं ममाभीष्ट-सिद्ध्यर्थे धन-धान्य-सकलसमृद्ध्यर्थे श्रीमहालक्ष्मी-प्रीति-द्वारा-चतुर्विध-पुरुषार्थ-सम्पत्तये श्रीमहालक्ष्मी-सूक्त-महामन्त्र-जपे विनियोगः।" अथ षडङ्गन्यासः। ॐ हिरण्यायै अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ॐ चन्द्रायै तर्जनीभ्यां नमः। ॐ रजतस्रजायै मध्यमाभ्यां नमः। ॐ हिरण्यस्रजायै अनामिकाभ्यां नमः। ॐ हिरण्यजायै कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ॐ हिरण्यवर्णायै करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः॥ एवं हृदयादि न्यासः॥

ध्यानम्— "अरुणकमलसंस्था तद्रजःपुञ्जवर्णा
करयुगल-धृतेष्टाऽभीति-युग्माम्बुजा च ।
मणिमय-मुकुटाढ्यालङ्कृता कल्पजालै —
र्भवतु भुवनमाता सन्ततं श्रीः श्रीयै नः" ॥

ॐ लं पृथिव्यात्मकं गन्धं समर्पयामि। ॐ हं आकाशात्मकं पुष्पं समर्पयामि। ॐ यं वाय्वात्मकं धूपं समर्पयामि। ॐ रं अग्न्यात्मकं दीपं समर्पयामि। ॐ वं अमृतात्मकं अमृतनैवेद्यं समर्पयामि। (श्रीमहालक्ष्म्यै नमः द्वादशगुणित-ताम्बूलं समर्पयामि) । ॐ सं सर्वात्मकं श्रीमहालक्ष्म्यै नमः सर्वराजोपचारान् समर्पयामि। एवं पञ्चोपचारैः सम्पूज्य पाठान्तेऽपि षडङ्गन्यासं कुर्यात्॥ पाठान्ते च लक्ष्मीगायत्रीं (१०८) जपेत् "ॐ महादेव्यै च विद्महे विष्णुपत्न्यै च धीमहि तन्नो लक्ष्मीः प्रचोदयात्॥" इति लक्ष्मीगायत्री मन्त्रः॥

ॐ हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्रजाम् ।
चन्द्रां हिरणमयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह ॥१॥

तां म आवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम् ।
यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुरुषानहम् ॥२॥

अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्तिनादप्रबोधिनीम् ।
श्रियं देवीमुपह्वये श्रीर्मा देवी जुषताम् ॥३॥
कांसोस्मितां हिरण्यप्राकारामार्द्रां ज्वलन्तीं तृप्तां तर्पयन्तीम् ।
पद्मे स्थितां पद्मवर्णां तामिहोपह्वये श्रियम् ॥४॥
चन्द्रां प्रभासां यशसा ज्वलन्तीं श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम् ।
तां पद्मनेमीं शरणं प्रपद्ये अलक्ष्मीर्मे नश्यतां त्वां वृणोमि ॥५॥
आदित्यवर्णे तपसोऽधिजातो वनस्पतिस्तव वृक्षोऽथ बिल्वः ।
तस्य फलानि तपसा नुदन्तु या आन्तरा याश्च बाह्या अलक्ष्मीः ॥६॥
उपैतु मां देवसखः कीर्तिश्च मणिना सह ।
प्रादुर्भूतोऽस्मि राष्ट्रेऽस्मिन् कीर्तिमृद्धिं ददातु मे ॥७॥
क्षुत्पिपासामलां ज्येष्ठामलक्ष्मीं नाशयाम्यहम् ।
अभूतिमसमृद्धिं च सर्वां निर्णुद मे गृहात् ॥८॥
गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम् ।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम् ॥९॥
मनसः काममाकूतीं वाचः सत्यमशीमहि ।
पशूनां रूपमन्नस्य मयि श्रीः श्रयतां यशः ॥१०॥
कर्दमेन प्रजा भूता मयि सम्भव कर्दम ।
श्रियं वासय मे कुले मातरं पद्ममालिनीम् ॥११॥
आपः सृजन्तु स्निग्धानि चिक्लीत वस मे गृहे ।
नि च देवीं मातरं श्रियं वासय मे कुले ॥१२॥
आर्द्रां पुष्करिणीं पुष्टिं पिङ्गलां पद्ममालिनीम् ।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह ॥१३॥

आर्द्रां यः करिणीं यष्टिं सुवर्णां हेममालिनीम् ।
सूर्यां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह ॥१४॥

ता म आवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम् ।
यस्यां हिरण्यं प्रभूतं गावो दास्योऽश्वान्विन्देयं पुरुषानहम् ॥१५॥

यः शुचिः प्रयतो भूत्वा जुहुयादाज्यमन्वहम् ।
श्रियः पञ्चदशर्चं च श्रीकामः सततं जपेत् ॥१६॥

पद्मानने पद्मऊरू पद्माक्षि पद्मसम्भवे ।
तन्मे भजसि पद्माक्षि येन सौख्यं लभाम्यहम् ॥१७॥

अश्वदायी गोदायी धनदायी महाधने ।
धनं मे जुषतां देवि सर्वकामाँश्च देहि मे ॥१८॥

पुत्रपौत्रधनं धान्यं हस्त्यश्वादि गवे रथम् ।
प्रजानां भवसी माता आयुष्मन्तं करोतु मे ॥१९॥

दनमग्निर्धनं वायुर्धनं सूर्यो धनं वसुः ।
धनमिन्द्रो बृहस्पतिर्वरुणं धनमश्विनौ ॥२०॥

वैनतेय सोमं पिब सोमं पिबतु वृत्रहा ।
सोमं धनस्य सोमिनो मह्यं ददातु सोमिनः ॥२१॥

न क्रोधो न च मात्सर्यं न लोभो नाशुभा मतिः ।
भवन्ति कृतपुण्यानां भक्तानां श्रीसूक्तं जपेत् ॥२२॥

सरसिजनिलये सरोजहस्ते धवलतरांशुकगन्धमाल्यशोभे ।
भगवति हरिवल्लभे मनोज्ञे त्रिभुवनभूतिकरि प्रसीद मह्यम् ॥२३॥

विष्णुपत्नीं क्षमां देवीं माधवीं माधवप्रियां ।
विष्णोः प्रियसखीं देवीं नमाम्यच्युतवल्लभाम् ॥२४॥

महालक्ष्मीं च विद्महे विष्णुपत्नीं च धीमहि ।
तन्नो लक्ष्मीः प्रचोदयात् ॥२५॥

पद्मानने पद्मिनि पद्मपत्रे पद्मप्रिये पद्मदलायताक्षि ।
विश्वप्रिये विश्वमनोनुकूले त्वत्-पादपद्मं हृदि सन्निधत्स्व ॥
आनन्दः कर्दमःश्रीदश्चिक्लीत इति विश्रुताः ।
ऋषयः श्रियपुत्राश्च श्रीर्देवी देवता श्रिया ॥२७॥
श्रीर्वर्चस्वमायुष्यमारोग्यमाविधात् पवमानं महीयते ।
धनं धान्यं पशुं बहुपुत्रलाभं शतसंवत्सरं दीर्घमायुः ॥२८॥
ऋणरोगादि दारिद्र्यं पापक्षुदपमृत्यवः ।
भयशोकमनस्तापा नश्यन्तु मम सर्वदा ॥२९॥

ऋग्वेदोक्तं श्रीसूक्तं सम्पूर्णम् ॥

श्रीनवग्रह-स्तोत्रम्

जपाकुसुमसंकाशं काश्यपेयं महाद्युतिम् ।
तमोऽरिं सर्वपापघ्नं प्रणतोऽस्मि दिवाकरम् ॥१॥
दधिशङ्खतुषाराभं क्षीरोदार्णवसम्भवम् ।
नमामि शशिनं सोमं शम्भोर्मुकुटभूषणम् ॥२॥
धरणीगर्भसम्भूतं विद्युत्कान्ति-समप्रभम् ।
कुमारं शक्तिहस्तं तं मङ्गलं प्रणमाम्यहम् ॥३॥
प्रियङ्गुकलिकाश्यामं रूपेणाप्रतिमं बुधम् ।
सौम्यं सौम्यगुणोपेतं तं बुधं प्रणमाम्यहम् ॥४॥
देवानां च ऋषीणां च गुरुं काञ्चनसन्निभम् ।
बुद्धिभूतं त्रिलोकेशं तं नमामि बृहस्पतिम् ॥५॥
हिमकुन्दमृणालाभं दैत्यानां परमं गुरुम् ।
सर्वशास्त्रप्रवक्तारं भार्गवं प्रणमाम्यहम् ॥६॥

नीलाञ्जनसमाभासं रविपुत्रं यमाग्रजम् ।
छायामार्तण्डसंभूतं तं नमामि शनैश्चरम् ॥७॥
अर्द्धकायं महावीर्यं चन्द्रादित्यविमर्दनम् ।
सिंहिकागर्भसम्भूतं तं राहुं प्रणमाम्यहम् ॥८॥
पलाशपुष्पसंकाशं तारकाग्रहमस्तकम् ।
रौद्रं रौद्रात्मकं घोरं तं केतुं प्रणमाम्यहम् ॥९॥
इति व्यासमुखोद्गीतं यः पठेत् सुसमाहितः ।
दिवा वा यदि वा रात्रौ विघ्नशान्तिर्भविष्यति ॥१०॥
नरनारीनृपाणां च भवेद्दुः स्वप्ननाशनम् ।
ऐश्वर्यमतुलं तेषामारोग्यं पुष्टिवर्द्धनम् ॥११॥
ग्रहनक्षत्रजा पीडा तस्कराग्निसमुद्भवाः ।
ताः सर्वाः प्रशमं यान्ति व्यासो ब्रूते न संशयः ॥१२॥

श्री व्यासविरचितम् नवग्रह-स्तोत्रम् सम्पूर्णम् ।

गजेन्द्र-मोक्ष-स्तोत्रम्

श्रीशुक उवाच

एवं व्यवसितो बुद्ध्या समाधाय मनो हृदि ।
जजाप परमं जाप्यं प्राग्जन्मन्यनुशिक्षितम् ॥१॥

गजेन्द्र उवाच

ॐ नमो भगवते तस्मै यत एतच्चिदात्मकम् ।
पुरुषायादिबीजाय परेशायाभिधीमहि ॥२॥
यस्मिन्निदं यतश्चेदं येनेदं य इदं स्वयम् ।
योऽस्मात् परस्माच्च परस्तं प्रपद्ये स्वयंभुवम् ॥३॥

यः स्वात्मनीदं निजमाययार्पितं, क्वचिद्विभातं क्व च तत्तिरोहितम् ।
अविद्धदृक् साक्ष्युभयं तदीक्षते स आत्ममूलोऽवतु मां परात्परः ॥४॥

कालेन पञ्चत्वमितेषु कृत्स्नशो लोकेषु पालेषु च सर्वहेतुषु ।
तमस्तदाऽऽसीद्गहनं गभीरं यस्तस्य पारेऽभिविराजते विभुः ॥५॥

न यस्य देवा ऋषयः पदं विदुर्जन्तुः पुनः कोऽर्हति गन्तुमीरितुम् ।
यथा नटस्याकृतिभिर्विचेष्टतो दुरत्ययानुक्रमणः स मावतु ॥६॥

दिदृक्षवो सस्य पदं सुमङ्गलं विमुक्तसङ्ग मुनयः सुसाधवः ।
चरन्त्यलोकव्रतमव्रणं वने भूतात्मभूताः सुहृदः समे गतिः ॥७॥

न विद्यते यस्य च जन्म कर्म वा न नामरूपे गुणदोष एव वा ।
तथापि लोकाप्यय-सम्भवाय यः स्वमायया तान्यनुकालमृच्छति ॥८॥

तस्मै नमः परेशाय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ।
अरूपायोरुरूपाय नम अश्चर्यकर्मणे ॥९॥

नमः आत्मप्रदीपाय साक्षिणे परमात्मने ।
नमो गिरां विदूराय मनसश्चेतसामपि ॥१०॥

सत्वेन प्रतिलभ्याय नैष्कर्म्येण विपश्चिता ।
नमः कैवल्यनाथाय निर्वाण-सुख-संविदे ॥११॥

नमः शान्ताय घोराय मूढाय गुणधर्मिणे ।
निर्विशेषाय साम्याय नमो ज्ञानघनाय च ॥१२॥

क्षेत्रज्ञाय नमस्तुभ्यं सर्वाध्यक्षाय साक्षिणे ।
पुरुषायात्ममूलाय मूलप्रकृतये नमः ॥१३॥

सर्वेन्द्रियगुणद्रष्ट्रे सर्वं प्रत्ययहेतवे ।
असताच्छाययोक्ताय सदाभासाय ते नमः ॥१४॥

नमो नमस्तेऽखिलकारणाय निष्कारणायाद्भुतकारणाय ।
सर्वागमाम्नाय महार्णवाय नमोऽपवर्गाय परायणाय ॥१५॥

गुणारणिच्छन्न चिदूष्मपाय, तत्क्षोभविस्फूर्जितमानसाय ।
नैष्कर्म्यभावेन विवर्जितागम-स्वयं-प्रकाशाय नमस्करोमि ॥१६॥
मादृक्प्रपन्नपशुपाश-विमोक्षणाय, मुक्ताय भरिकरुणाय नमोऽलयाय ।
स्वांशेन सर्वतनुभृन्मनसि प्रतीत, प्रत्यग्दृशे भगवते बृहते नमस्ते ॥१७॥
आत्मात्मजाप्त-गृह वित्त-जनेषु सक्तैर्दुष्प्रापणाय गुण-सङ्ग-विवर्जिताय ।
मुक्तात्मभिः स्वहृदये परिभाविताय, ज्ञानात्मने भगवते नम ईश्वराय ॥१८॥
यं धर्मकामार्थ-विमुक्ति-कामाः भजन्त इष्टां गतिमाप्नुवन्ति ।
किं त्वाशिषो रात्यपि देहमव्ययं करोतु मेऽदभ्र दयो विमोक्षणम् ॥१९॥
एकान्तिनो यस्य न कञ्चनार्थं, वाञ्छन्ति ये वै भगवत्-प्रपन्नाः ।
अत्यद्भुतं तच्चरितं सुमङ्गलं, गायन्त आनन्दसमुद्र-मग्नाः ॥२०॥
तमक्षरं ब्रह्म परं परेशमव्यक्तमाध्यात्मिकयोग-गम्यम् ।
अतीन्द्रियं सूक्ष्ममिवाति-दूरमनन्तमाद्यं परिपूर्णमीडे ॥२१॥
यस्य ब्रह्मादयो देवो वेदा लोकाश्चराचराः ।
नाम-रूप-विभेदेन फल्व्या च कलया कृताः ॥२२॥
यथार्चिषोऽग्नेः सवितुर्गभस्तयो निर्यान्ति संयान्त्यसकृत्स्वरोचिषः ।
तथा यतोऽयं गुणसम्प्रवाहो बुद्धिर्मनः खानि शरीरसर्गाः ॥२३॥
स वै न देवासुरमर्त्य-तिर्यङ् न स्त्री न षण्ढो न पुमान्न जन्तुः ।
नायं गुणः कर्म न सन्न चासन्निषेधशेषा जयतादशेषः ॥२४॥
जिजीविषे नाहमिहामुया किमन्तर्बहिश्चावृतयेभयोन्या ।
इच्छामि कालेन न यस्य विप्लवस्तस्यात्मलोकावरणस्य मोक्षम् ॥२५॥
सोऽहं विश्वसृजं विश्वमविश्वं विश्ववेदसम् ।
विश्वात्मानमजं ब्रह्म प्रणतोऽस्मि परं पदम् ॥२६॥

योग-रन्धित-कर्माणो हृदि योग- विभाविते ।
योगिनो यं प्रपश्यन्ति योगेशं तं नतोऽस्म्यहम् ॥२७ ॥

नमो नमस्तुभ्यमसह्य-वेग-शक्ति-त्रयायाऽखिलधीगुणाय ।
प्रपन्न-पालाय दुरन्त-शक्तये कदिन्द्रियाणामनवाप्य वर्त्मने ॥२८ ॥

नायं वेद स्वमात्मानं यच्छक्त्याहं-धिया हतम् ।
तं दुरत्यय- माहात्म्यं भगवन्तमितोस्म्यहम् ॥२९ ॥

श्रीशुक उवाच

एवं गजेन्द्रमुपवर्णित-निर्विशेषं, ब्रह्मादयो विविधलिङ्गभिदा भिमानाः ।
नैते यदोप-ससृपुर्निखिलात्मकत्वा, त्तत्राखिलामरमयो हरिराविरासीत् ॥३० ॥
तं तद्वदार्त्तमुपलभ्य जगन्निवासः, स्तोत्रं निशम्य दिविजैः सह संस्तुवद्भिः ।
छन्दोमयेन गरुडेन समुह्यमान, श्चक्रायुधोऽभ्यगमदाशु यतो गजेन्द्रः ॥३१ ॥
सोऽन्तः सरस्युरुबलेन गृहीत आर्तो, दृष्ट्वा गरुत्मति हरिं ख उपात्तचक्रम् ।
उत्क्षिप्यसाम्बुजकरंगिरमाह कृच्छ्रा, न्नारायणाखिलगुरो भगवन् नमस्ते ॥३२ ॥
तं वीक्ष्य पीडितमजः सहसावतीर्य, सग्राहमाशु सरसः कृपयोज्जहार ।
ग्राहाद्विपाटित-मुखादरिणा गजेन्द्रं, संपश्यतां हरिरमूमुचदुच्छ्रियाणाम् ॥३३ ॥

श्रीमद्भागवते अष्टमस्कन्धे गजेन्द्रमोक्षस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

श्रीमच्छङ्कराचार्यविरचिता दशश्लोकी

न भूमिर्न तोयं न तेजो न वायु-
र्न खं नेन्द्रियं वा न तेषां समूहः ।

अनैकान्तिकत्वात् सुषुप्त्येकसिद्ध-
स्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥१ ॥

न वर्णा न वर्णाश्रमाचारधर्मा
न मे धारणाध्यानयोगादयोऽपि ।

अनात्माश्रयाहं ममाध्यासहानात्
तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥२ ॥
न माता पिता वा न देवा न लोका
न वेदा न यज्ञा न तीर्थं ब्रुवन्ति ।
सुषुप्तौ निरस्तातिशून्यात्मकत्वात्
तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥३ ॥
न साङ्ख्यं न शैवं न तत्पाञ्चरात्रं
न जैनं न मीमांसकादेर्मतं वा ।
विशिष्टानुभूत्या, विशुद्धात्मकत्वात्
तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥४ ॥
न चोर्ध्वं न चाधो न चान्तर्न बाह्यं
न मध्यं न तिर्यङ् न पूर्वाऽपरा दिक् ।
वियद्व्यापकत्वादखण्डैकरूप-
स्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥५ ॥
न शुक्लं न कृष्णं न रक्तं न पीतं
न कुब्जं न पीनं न ह्रस्वं न दीर्घम् ।
अरूपं तथा ज्योतिराकारकत्वात्
तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥६ ॥
न शास्ता न शास्त्रं न शिष्यो न शिक्षा
न च त्वं न चाहं न चायं प्रपञ्चः ।
स्वरूपावबोधो विकल्पासहिष्णु-
स्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥७ ॥

न जाग्रन्न मे स्वप्नको वा सुषुप्ति-
र्न विश्वो न वा तैजसः प्राग्यको वा ।
अविद्यात्मकत्वात् त्रयाणां तुरीय-
स्तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥८॥

अपि व्यापकत्वाद्धितत्वप्रयोगात्
स्वतस्सिद्ध-भावादनन्याश्रयत्वात् ।
जगत्तुच्छमेतत् समस्तं तदन्यत्
तदेकोऽवशिष्टः शिवः केवलोऽहम् ॥९॥
न चैकं तदन्यद् द्वितीयं कुतस्स्यात्
न वा केवलत्वं न चाऽकेवलत्वम् ।
न शून्यं न चाशून्य-मद्वैतकत्वात्
कथं सर्ववेदान्तसिद्धं ब्रवीमि ॥१०॥

इति श्रीशङ्कराचार्यविरचिता दशश्लोकी ॥

श्रीहनुमान-चालीसा

दोहा— श्रीगुरुचरन सरोज रज, निजमनमुकुर सुधारि ।
बरनौं रघुबर विमल जस, जो दायक फल चारि ॥१॥
बुद्धिहीन तनु जानिकै, सुमिरौं पवनकुमार ।
बल बुधि विद्या देहु मोहि, हरहु कलेस विकार ॥२॥
जय हनुमान ज्ञानगुनसागर । जय कपीस तिहुँलोक उजागर ॥३॥
रामदूत अतुलित बलधामा । अंजनिपुत्र पवनसुत नामा ॥४॥
महाबीर विक्रम बजरंगी । कुमति निवारि सुमति के संगी ॥५॥
कंचनबरन बिराज सुबेसा । कानन कुंडल कुंचितकेसा ॥६॥

हाथ बज्र अरु ध्वजा बिराजै । काँधे मूँज-जनेऊ साजै ॥७॥
संकरसुवन केसरीनंदन । तेज प्रताप महा जगबंदन ॥८॥
विद्यावान गुनी अतिचातुर । राम-काज करिबेको आतुर ॥९॥
प्रभुचरित्र सुनिबेको रसिया । राम लखन सीता मनबसिया ॥१०॥
सूक्ष्मरूप धरि सियहिं दिखावा । विकटरूप धरि लंक जरावा ॥११॥
भीमरूप धरि असुर सँहारे । रामचंद्रके काज सँवारे ॥१२॥
लाय सजीवन लखन जिआए । श्रीरघुबीर हरषि उर लाए ॥१३॥
रघुपति कीन्हीं बहुत बड़ाई । कहा भरतसम तुम प्रिय भाई ॥१४॥
सहस बदन तुम्हरो जस गावैं । अस कहि श्रीपति कंठ लगावैं ॥१५॥
सनकादिक ब्रह्मादि मुनीसा । नारद सारद सहित अहीसा ॥१६॥
जम कुबेर दिगपाल जहाँ तें । कविकोविद कहि सकैं कहाँ तें ॥१७॥
तुम उपकार सुग्रीवहिं कीन्हा । राम मिलाय राजपद दीन्हा ॥१८॥
तुम्हरो मन्त्र विभीषण माना । लंकेश्वर भए सब जग जाना ॥१९॥
युग सहस्र जोजन पर भानू । लील्यो ताहि मधुर फल जानू ॥२०॥
प्रभुमुद्रिका मेलि मुखमाहीं । जलधि लांघि गए अचरज नाहीं ॥२१॥
दुर्गम काज जगतके जेते । सुगम अनुग्रह तुम्हरे तेते ॥२२॥
राम दुआरे तुम रखवारे । होत न आग्या बिन पैठारे ॥२३॥
सब सुख लहैं तुम्हारी सरना । तुम रक्षक काहूको डरना ॥२४॥
आपन तेज सम्हारौ आपै । तीनों लोक हाँकते काँपै ॥२५॥
भूत पिचास निकट नहिं आवै । महावीर जब नाम सुनावै ॥२६॥
नासै रोग हरै सब पीरा । जपत निरन्तर हनुमत बलबीरा ॥२७॥
संकट ते हनुमान छुड़ावै । मन क्रम बचन ध्यान जो लावै ॥२८॥
सबपर राम तपस्वी राजा । तिनके काज सकल तुम साजा ॥२९॥
अवर मनोरथ जो कोई लावै । तासु अमित जीवन फल पावै ॥३०॥

चारों युग परताप तुम्हारा । है परसिद्ध जगत उजियारा ॥३१ ॥
साधु संतके तुम रखवारे । असुर निकन्दन रामदुलारे ॥३२ ॥
अष्टसिद्धि नवनिधि के दाता । अस वर दीन्ह जानकी मांता ॥३३ ॥
राम रसायन तुम्हरे पासा । सादर तुम रघुपति के दासा ॥३४ ॥
तुम्हरे भजन रामको भावै । जन्म जन्मके दुःख विसरावै ॥३५ ॥
अंतकाल रघुपति पुर जाई । जहाँ जनमि हरिभक्त कहाई ॥३६ ॥
अवर देवता चित्त न धरई । हनुमत सेइ सर्व सुख करई ॥३७ ॥
संकट कटै मिटै सब पीरा । जो सुमिरत हनुमत बलबीरा ॥३८ ॥
जय जय जय हनुमान गोसाईं । कृपा करौ गुरूदेवकी नाईं ॥३९ ॥
यह सतबार पाठ कर जोई । छूटहि बन्दि महा सुख होई ॥४० ॥

फलश्रुति—

जो यह पढ़ै हनुमान चालीसा । होय सिद्धि साखी गौरीसा ॥४१ ॥
तुलसीदास सदा हरि चेरा । कीजै नाथ हृदय महँ डेरा ॥४२ ॥

दोहा— पवन-तनय संकटहरन मंगलमूरति रूप ।
रामलखन सीतासहित, हृदय बसहु सुरभूप ॥
श्रीहनुमान चालीसा संपूर्ण ।

श्रीसंकटमोचन-हनुमानाष्टक

बाल समै रवि लीलि लियो तब, तीनहुँ लोक भयो अँधियारो ।
ताहि सो त्रास भयो जगको यह, संकट काहुसों जात न टरो ॥
देवन आय करी विनती तब, छाँड़ि दियो रवि कष्ट निवारो ।
को नहिं जानत है जगमें कपि, संकटमोचन नाम तिहारो ॥१ ॥
बालिके त्रास कपीस बसे, गिरि जात महाप्रभु पंथ निहारो ।
चौंकि महामुनि साप दियो तब, चाहिय कौन उपाय विचारो ॥

कै द्विजरूप लै आए महाप्रभु, सो तुम तासुको संकट टारो ।को० ॥२ ॥

अंगदके सँग कीस अनेक गये, सिय खोज कपीस उचारो ।
जीवित ना बचिहौं हमसों जु, बिना सुधि लै इतको पगु धारो ॥
हेरि थके तटसिन्धु सबै तब, लाय सिया सुधि प्रान उबारो ।को० ॥३ ॥

रावन त्रास दियो सियको तब, रक्षक ह्वै करि सोक निवारो ।
ताहि समै हनुमान महाप्रभु, जाय महा रजनीचर मारो ॥
माँगत सीय असोक सों आगि सु, दै प्रभुमुद्रिका सोक निवारो ।को० ॥४ ॥

बान लग्यो उर लछिमन के तब, प्रान तज्यो सुत रावन मारो ।
लै गृह वैद्य सुषेन समेत, तबै गिरिद्रोन सुबीर उपारो ॥
लाय सजीवन श्री हनुमान सु, लछमन के तुम प्रान उबारो ।को० ॥५ ॥

रावन जुद्ध प्रयान कियो तब, नाग कि फाँस सबै सिर डारो ।
श्रीरघुनाथ समेत सबै दल, देखिकै मोह भयो अतिभारो ॥
आनि खगेस तबै हनुमान, सुबंधन काटि कलेस निवारो ।को० ॥६ ॥

बन्धुसमेत जबै अहिरावन, लै रघुनाथ पताल सिधारो ।
देविहि पूजि भली विधि सों, बलिदेन दोऊ जन मंत्र विचारो ॥
जाय सहाय भये तबहीं, अहिरावन सैन्य समेत सँहारो ।को० ॥७ ॥

काज किये बड़ देवनके तुम बीर महाप्रभु देखि विचारौ ।
कवन सो संकट मोर गरीबको, जो तुमसों नहिं जात है टारो ॥
बेगि हरो हनुमान महाप्रभु, जो कछु संकट होय हमारो ।को० ॥८ ॥

दोहा—लाल देह लाली लसै, अरु धरि लाल लँगूर ।
बज्रदेह दानवदलन, जय जय जय कपिसूर ॥

श्रीसंकटमोचन हनुमानाष्टक संपूर्ण

सप्तश्लोकी गीता

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम् ॥१ ॥
स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च ।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसंघाः ॥२ ॥
सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥३ ॥
कवि पुराणमनुशासितारमणोरणीयां समनुस्मरेद्यः ।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥४ ॥
ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥५ ॥
सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च ।
वेदश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदांतकृद्वेदविदेव चाहम् ॥६ ॥
मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि युक्त्यैवमात्मानं मत्परायणः ॥७ ॥

श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे ।
श्रीकृष्णार्जुनसम्वादे सप्तश्लोकी गीता सम्पूर्णा ॥

चतुःश्लोकी भागवत

ज्ञानं परमगुह्यं मे यद्विज्ञानसमन्वितम् ।
सरहस्यं तदङ्गञ्च गृहाण गदितं मया ॥
यावानहं यथाभावो यद्रूपगुणकर्मकः ।
तथैव तत्त्वविज्ञानमस्तु ते मदनुग्रहात् ॥

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद्यत् सदसत्परम् ।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम् ॥

इति महात्म्यम् ॥

ऋतेऽर्थं यत्प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि ।
तद्विद्यादात्मनो मायां यथाऽऽभासो यथा तमः ॥१ ॥

तथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु ।
प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम् ॥२ ॥

एतावदेव जिज्ञास्यं तत्वजिज्ञासुनाऽऽत्मनः ।
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत्स्यात्सर्वत्र सर्वदा ॥३ ॥

एतन्मतं समातिष्ठ परमेण समाधिना ।
भवान्कल्पविकल्पेषु न विमुह्यति कर्हिचित् ॥४ ॥

श्रीमद्भागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे चतुःश्लोकी भागवतम् सम्पूर्णम् ॥

एकश्लोकी रामायण

आदौ रामतपोवनादिगमनं हत्वा मृगं काञ्चनं
वैदेहीहरणं जटायुमरणं सुग्रीवसम्भाषणम् ।
बालीनिग्रहणं समुद्रतरणं लङ्कापुरीदाहनं
पश्चाद्रावणकुम्भकर्णहननमेतद्धिरामायणम् ॥१ ॥

गरुड स्तुति

श्रीविष्णुवाहं प्रणमामि भक्त्या सर्पाशनं दुःखहरं खगेशम् ।
मनोहरं वायुसमानवेगं छन्दोमयं ज्ञानघनं प्रशान्तम् ॥

विष्णुपत्राय शान्ताय बलबुद्धियुताय च ।
पक्षीन्द्रायातिवेगाय गरुडाय नमोनमः ॥

श्रीहनुमत्स्तुतिः

मनोजवं मारूततुल्यवेगं जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम् ।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं श्रीरामदूतं शिरसा नमामि ॥
उल्लङ्घ्य सिन्धोः सलिलं सलीलं यः शोकवह्निं जनकात्मजायाः ।
आदाय तेनैव ददाह लङ्कां नमामि तं प्राञ्जलिराञ्जनेयम् ॥

अन्नपूर्णा-स्तुतिः

अन्नपूर्णे सदापूर्णे शङ्कर-प्राण-वल्लभे ।
ज्ञान-वैराग्य-सिद्ध्यर्थं भिक्षां देहि च पार्वती ॥

कालिका-स्तुतिः

काली काली महाकाली कालिके परमेश्वरी ।
सर्वानन्द-करे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥

शीतला-स्तुतिः

शीतले त्वं जगन्माता शीतले त्वं जगत्पिता ।
शीतले त्वं जगद्धात्री शीतलायै नमोनमः ॥

पीपल-स्तुतिः

अश्वत्थ हुतभुग्वाम गोविन्दस्य सदाप्रिय ।
अशेषं हर मे पापं वृक्षराज नमोऽस्तु ते ॥

तुलसी-स्तुतिः

देवैस्त्वं निर्मिता पूर्वमर्चितासि मुनीश्वरैः ।
नमो नमस्ते तुलसि पापं हर हरिप्रिये ॥

सरस्वती स्तुतिः

शुक्लां ब्रह्मविचारसारपरमामाद्यां जगद्व्यापिनीं
वीणापुस्तकधारिणीमभयदां जाड्यान्धकारापहाम् ।
हस्ते स्फाटिकमालिकां विदधतीं पद्मासने संस्थितां
वन्दे तां परमेश्वरीं भगवतीं बुद्धिप्रदां शारदाम् ॥१॥
या कुन्देन्दुतुषारहारधवला या शुभ्रवस्त्रावृता
या वीणावरदण्डमण्डितकरा या श्वेतपद्मासना ।
या ब्रह्माच्युतशङ्करप्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता
सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा ॥२॥
सुधासिंधोर्मध्ये सुरविटपवाटीपरिवृत्ते
मणिद्वीपे नीपोपवनवति चिंतामणिगृहे ।
शिवाकारे मंचे परमशिवपर्यङ्कनिलयां
भजन्ति त्वां धन्याः कतिचन चिदानंदलहरीम् ॥३॥

विष्णुस्तुतिः

शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं
विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभाङ्गम् ।
लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानगम्यं
वन्दे विष्णुं भवभयहरं सर्वलोकैकनाथम् ॥४॥
प्रातः स्मरामि भवभीतिमहार्तिशान्त्यै
नारायणं गरुडवाहनमब्जनाभम् ।
ग्राहाभिभूतवरवारणमुक्तिहेतुं
चक्रायुधं तरुणवारिजपत्रनेत्रम् ॥५॥

श्रीद्वादशज्योतिर्लिङ्ग स्तुति

सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम् ।
उज्जयिन्यां महाकालमोंकारममलेश्वरम् ॥
परल्यां वैद्यनाथं च डाकिन्यां भीमशङ्करम् ।
सेतुबन्धे तु रामेशं नागेशं दारुकावने ॥
वाराणस्यां तु विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमीतटे ।
हिमालये तु केदारं घुसृणेशं च शिवालये ॥
एतानि ज्योतिर्लिङ्गानि सायं प्रातः पठेन्नरः ।
सप्तजन्मकृतं पापं स्मरणेन विनश्यति ॥६ ॥

अमृत-संजीवन-स्तोत्रम्

अथापरमहं वक्ष्येऽमृत-संजीवनं स्तवम् ।
यस्यानुष्ठानमात्रेण मृत्युर्दूरात्पलायते ॥१ ॥
असाध्याः कष्टसाध्याश्च महारोगा भयंकराः ।
शीघ्रं नश्यन्ति पठनादस्यायुश्च प्रवर्धते ॥२ ॥
शाकिनी डाकिनी दोषाः कुदृष्टिः ग्रहशत्रुजाः ।
प्रेत-बेताल-यक्षोत्था बाधा नश्यन्ति चाखिलाः ॥३ ॥
दुरितानि समस्तानि नाना जन्मोद्भवानि च ।
संसर्गजविकाराणि विलीयन्तेऽस्य पाठतः ॥४ ॥
सर्वोपद्रवनाशाय सर्वबाधांप्रशान्तये ।
आयुः प्रवृद्धये चैतत् स्तोत्रं परममद्भुतम् ॥५ ॥
बालग्रहाभिभूतानां बालानां सुखदायकम् !
सर्वारिष्टहरं चैतद् बलपुष्टिकरं परम् ॥६ ॥

बालानां जीवनायैतत् स्तोत्रं दिव्यं सुधोपमम् ।
मृतवत्सत्वहरणं चिरंजीवित्वकारकम् ॥७ ॥
महारोगाभिभूतानां भयव्याकुलितात्मानाम् ।
सर्वाधि-व्याधिहरणं भयघ्नममृतोपमम् ॥८ ॥
अल्पमृत्युश्चापमृत्युः पाठादस्य प्रणश्यति ।
जलानि विषशस्त्रारि-नखि-शृङ्गि भयं तथा ॥९ ॥
गर्भरक्षाकरं स्त्रीणां बालानां जीवनप्रदम् ।
महारोगहरं नृणामल्पमृत्युहरं परम् ॥१० ॥
बालाः वृद्धाश्च तरुणाः नरा नार्यश्च दुःखिताः ।
भवन्ति सुखिनः पाठादस्य लोके चिरायुषः ॥११ ॥
अस्मात्परतरं नास्ति जीवनोपाय ऐहिकम् ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पाठमस्य समाचरेत् ॥१२ ॥
अयुतावृत्तिकं वाऽथ सहस्रावृत्तिकं तथा ।
तदर्धं वा तदर्धं वा पठेदेतच्च भक्तितः ॥१३ ॥
कलशे विष्णुमाराध्य दीपं प्रज्वाल्य यत्नतः ।
सायं प्रातश्च विधिवत् स्तोत्रमेतत् पठेत्सुधीः ॥१४ ॥
सर्पिषा हवि षाऽपि संयाबेनाथ भक्तितः ।
दशांशमानतो होमं कुर्यात् सर्वार्थसिद्धये ॥१५ ॥

नमो नमो विश्वविभावनाय
नमो नमो लोकसुखप्रदाय ।
नमो नमो विश्वसृजेश्वराय
नमो नमो मुक्तिवरप्रदाय ॥१६ ॥

नमो नमस्तेऽखिललोकपाय ।
नमो नमस्तेऽखिलकामदाय ।
नमो नमस्तेऽखिलकारणाय
नमो नमस्तेऽखिलरक्षकाय ॥१७॥

नमो नमस्ते सकलार्तिहन्त्रे
नमो नमस्ते विरुजप्रकर्त्रे ।
नमो नमस्तेऽखिलविश्वधर्त्रे
नमो नमस्तेऽखिललोकभर्त्रे ॥१८॥

सृष्टं देव चराचरं जगदिदं ब्रह्मस्वरूपेण ते ।
सर्वं तत्परिपाल्यते जगदिदं विष्णुस्वरूपेण ते ।
विश्वं संहृयते तदेव निखिलं रुद्रस्वरूपेण ते ।
संसिच्यामृतसीकरैर्हर महारिष्टं चिरंजीवय ॥१९॥

यो धन्वन्तरि संज्ञया निगदितः क्षीराब्धितो निस्सृतः
हस्ताभ्यां जनजीवनाय कलशं पीयूषपूर्णं दधत् ।
आयुर्वेदमरीरचज्जनरुजां नाशाय सत्वं मुदा
संसिच्यामृतसीकरैर्हर महारिष्टं चिरंजीवय ॥२०॥

स्त्रीरूपं वरभूषणाम्बरधरं त्रैलोक्यसंमोहनं
कृत्वा पाययति स्म यः सुरगणान् पीयूषमत्युत्तमम् ।
चक्रे दैत्यगणान् सुधाविरहितान् संमोह्य सत्वं मुद
संसिच्यामृतसीकरैर्हर महारिष्टं चिरंजीवय ॥२१॥

चाक्षुषोदधिसंप्लाय भूवेदय झषाकृते ।
सिञ्च सिंचामृतकणैः चिरंजीवय जीवय ॥२२॥

पृष्ठमन्दरनिर्घूर्णनिद्राक्षकमठाकृते ।
सिञ्च सिञ्चामृतकणैः चिरंजीवय जीवय ॥२३॥
याञ्चा छलवति त्रासमुक्तनिर्जरवामन ।
सिञ्च सिंचामृतकणैः चिरंजीवय जीवय ॥२४॥
धरोद्धारहिरण्याक्ष घातक्रोडाकृते प्रभो ।
सिंच सिंचामृतकणैः चिरंजीवय जीवय ॥२५॥
भक्तत्रासविनाशात्तु चण्डत्वनृहरे विभो ।
सिंच सिंचामृतकणैः चिरंजीवय जीवय ॥२६॥
क्षत्रियारण्यसंछेद कुठारकररैणुक ।
सिंच सिंचामृतकणैः चिरंजीवय जीवय ॥२७॥
रक्षोराजप्रताब्धिशोषणाशुगराघव ।
सिंच सिंचामृतकणैः चिरंजीवय जीवय ॥२८॥
भूभारासुरसंदोहकालाग्ने रुक्मिणीपते ।
सिंच सिंचामृतकणैः चिरंजीवय जीवय ॥२९॥
वेदमार्गरतानर्ह विभ्रान्त्यै बुधरूपधृक् ।
सिंच सिंचामृतकणैः चिरंजीवय जीवय ॥३०॥
कलिवर्णाश्रमास्पष्टं धर्मध्यैर्कल्किरूपभाक् ।
सिंच सिंचामृतकणैः चिरंजीवय जीवय ॥३१॥
असाध्याः कष्टसाध्या ये महारोगा भयंकराः ।
छिन्धि तानाशु चक्रेण चिरंजीवय जीवय ॥३२॥
अल्पमृत्युं चापमृत्युं महोत्पातानुपद्रवान् ।
भिन्धि भिन्धि गदाघातैश्चिरंजीवय जीवय ॥३३॥

अहं न जाने किमपि त्वदन्यत्
समाश्रये नाथ पदाम्बुजं ते ।
कुरुष्व तद्यन्मनसीप्सितं ते
सुकर्मणा केन समक्षमीयाम् ॥३४॥

त्वमेव तातो जननी त्वमेव
त्वमेव नाथश्च त्वमेव बंधुः ।
विद्याधनागारकुलं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देव देव ॥३५॥

न मेऽपराधं प्रविलोकय प्रभो-
ऽपराधसिन्धोश्च दयानिधिस्त्वम् ।
तातेन दुष्टोऽपि सुतः सुरक्ष्यते
दयालुता तेऽवतु सर्वदाऽस्मान् ॥३६॥

अहह विस्मर नाथ न मां सदा
करुणया निजया परिपूरितः ।
भुवि भवान् यदि मे नहि रक्षकः
कथमहो मम जीवनमत्र वै ॥३७॥

दह दह कृपया त्वं व्याधिजालं विशालं
हर हर करवालं चाल्पमृत्योः करालम् ।
निजजनपरिपालं त्वां भजे भावयालं
कुरु कुरु बहुकालं जीवितं मे सबालम् ॥३८॥

न यत्र धर्माचरणं न दानं
व्रतं न यागो न च विष्णुचर्चा ।
न पितृगोविप्रवरामरार्चा
स्वल्पायुषस्तत्र जना भवन्ति ॥३९॥

ॐ क्लीं श्रीं क्लीं श्रीं नमो भगवते जनार्दनाय
सकलदुरितानि नाशय क्षेमारोग्यं कुरु करु
ह्रीं दीर्घमायुर्देहि देहि स्वाहा ।
अस्य धारणतो जापादल्पमृत्युः प्रशाम्यति ।
गर्भरक्षाकरं स्त्रीणां बालानां जीवनं परम् ॥४० ॥
शतं पञ्चाशतं शक्त्याऽथवा पञ्चाधिविंशतिम् ।
पुस्तकानां द्विजेभ्यस्तु दद्याद्दीर्घायुषाप्तये ॥४१ ॥
भूर्जपत्रे विलिख्येदं कण्ठे वा बाहूमूलके ।
संधारयेदं गर्भरक्षा बालरक्षा च जायते ॥४२ ॥
सर्वे रोगाः विनश्यन्ति सर्वाबाधा प्रशाम्यति ।
कुदृष्टिजं भयं न स्यान्नच प्रेतादिजं भयम् ॥४३ ॥
मया कथितमेतत्तेऽमृतसंजीवनं परम् ।
अल्पमृत्यु हरं स्तोत्रं मृतवत्सत्वनाशनम् ॥४४ ॥

इति सुदर्शनसंहितायाममृतसंजीवनस्तोत्रम् ।

यह स्तोत्र पं. श्री मक्खनलालजी शर्मा ज्योतिषाचार्य द्वारा अनुभूत है ।

श्रीविष्णुअपामार्जन स्तोत्र

श्रीविष्णुअपामार्जन स्तोत्र, भविष्य पुराणान्तर्गत दाल्भ्य और पुलस्त्य ऋषि का संवाद है। जारण, मारण, भूत, प्रेत, पिशाच, डाकिनी, शाकिनी आदि एवं अन्य विविध प्रकार के रोगों से पीडित मनुष्यों के कष्ट निवारणार्थ दाल्भ्य ऋषि ने पुलस्त्य ऋषि से उपाय पूछा था। पुलस्त्य जी ने विष्णु अपामार्जन विधि संसार के कल्याण के लिए बतलाई। यह उपाय बहुत सरल और सद्यः फलदायक है इस विधि के अनुसार मार्जन करने से भयंकर रोगों से मनुष्य मुक्त होकर दीर्घायु पाता है। इसका माहात्म्य अवर्णनीय है। इसके पठन तथा श्रवण से सब प्रकार के शोक दुःखादि का नाश होता है और सब सौभाग्य ऐश्वर्यादि की बृद्धि होती है। हृदय रोगियों के लिए यह स्तोत्र अति उत्तम है। इसकी विधि इस प्रकार है—

धान्य के ढेर पर अब्रण कलश की स्थापना कर पूजन करे। तत्पश्चात् जलपूर्ण कलश के ऊपर एक साथ एक सौ दर्भा [कुशा] बांध कर रखे। फिर कलश के ऊपर पूर्ण पात्र एवं सुपारी रख कर वहां वराह, नृसिंह वामन और विष्णु इन चार नामों से षोडशोपचार पूजन करे। फिर मुष्टिबंध शत कुशाओं से, कलश के जल से रोगी का मार्जन करे। मार्जन विधि के पूर्व लिखे अनुसार दिग्बंध एवं न्यास विधि करे। पश्चात् स्तोत्र पठन करते हुये मार्जन करे। ११, २१, ५१, १०१, दिनों का प्रयोग करने से भयंकर से भयंकर रोग दूर हो जाते हैं। यह अनुभव सिद्ध उपाय है। आशा करता हूँ कि श्रद्धालु जन इससे लाभान्वित होंगे।

उपरोक्त प्रसंग ज्योतिषाचार्य पं. श्री मखनलालजी द्वारा कई बार का अनुभूत है।

— संपादक

दाल्भ्य उवाच ।

भगवन् प्राणिनः सर्वे विषरोगाद्युपद्रवैः ।
दुष्टग्रहोपघातैश्च सर्वकाल समुद्भवैः ॥१ ॥
आभिचारक कृत्यैश्च स्पर्शरोगैश्च दारुणैः ।
सदा संपीड्यमानास्ते तिष्ठंति मुनिसत्तम ॥२ ॥
येन कर्मविपाकेन ग्रहरोगाद्युपद्रवाः ।
न भवंति नृणां तन्मे यथावद्वक्तुमर्हसि ॥३ ॥

श्री पुलस्त्य उवाच

व्रतोपवासैर्यैर्विष्णुं नान्यजन्मनि तोषितः ।
ते नराः मुनिशार्दूल दुःख रोगादि भागिनः ॥४ ॥
यैर्व्रतं प्रणवं चित्ते सर्वदाहिकृतो नरैः ।
विषग्रहज्वराणां ते सर्वदा दाल्भ्य भागिनः ॥५ ॥
आरोग्यं परमामृद्धिं मनसा यद्यदिच्छति ।
तत्तदाप्नोत्यसंदिग्धं परत्राऽच्युत तोषकृत् ॥६ ॥
नाधिं प्राप्नोति न व्याधिं न विषं ग्रहबन्धनम् ।
कृत्यास्पर्शभयं वापि तोषिते मधुसूदने ॥७ ॥
सर्व दुष्टं समं तस्य सौम्यास्तस्य सदाग्रहाः ।
देवानामव्ययंधुर्यो तुष्टो यस्यः जनार्दनः ॥८ ॥
यः समः सर्व भूतेषु यथाऽत्मनि तथापरे ।
उपवासादिना येन तोषितो मधुसूदनः ॥९ ॥
तोषितेनैव जायंते नराः पूर्ण मनोरथाः ।
अरोगाः सुखिनो भोग भोक्तारो मुनिसत्तम ॥१० ॥

न तेषां शत्रवो नैव स्पर्श रोगाभिचारकाः ।
ग्रह रोगादिकं वापि पापकार्यं न जायते ॥११॥
अव्याहतानि कृष्णस्य चक्रादीन्यायुधानि च ।
रक्षंति सकलाऽपद्भ्यो येन विष्णुरुपासितः ॥१२॥

श्री दाल्भ्य उवाच

अनाराधित गोविन्दो ये नरा दुःख भागिनः ।
तेषां दुःखाभिभूतानां यत्कर्तव्यं दयालुना ॥१३॥
पश्यद्भिः सर्व भूतस्थं वासुदेवं महामुने ।
समदृष्ट्या हृषीकेशं तन्मम ब्रूह्यशेषतः ॥१४॥

पुलस्त्य उवाच

सौवर्णं राजतं ताम्रं मृण्मयं वा नवं दृढम् ।
अव्रणं कलशं शुद्धं स्थापयेत्तंडुलोपरि ॥१५॥
तत्रोदकं समानीय शुद्धं निर्मलमेव च ।
शतमेकं कुशानां च साग्रं तस्योपरिन्यसेत् ॥१६॥
वराहं नारसिंहं च वामनं विष्णुमेव च ।
पूजयेत्तत्र कलशे उपचारैः समंत्रकैः ॥१७॥
विरंचिना सहोत्पन्न परमेष्ठि निसर्गतु ।
दहंतु सर्वपापानि दर्भः स्वस्ति करो भवेत् ॥१८॥
कुशमूलेस्थितो ब्रह्मा कुशमध्ये जनार्दनः ।
कुशाग्रे शंकरं विद्यात्त्रयो देवाः कुशे स्थिताः ॥१९॥
गृहित्वा तु समूलाग्रान्कुशान्छुद्धान् नृप स्पृशेत् ।
मार्जयेत्सर्व गात्राणि कुशाग्रैर्दाल्भ्य शांतिकृत् ॥२०॥

शरीरे यस्य तिष्ठति कुशायाः जलबिन्दवः ।
तैर्नश्यंति च पापानि गरुडेनैव पन्नगाः ॥२१॥
विष्णु भक्ति विशेषेण शुचिस्तद्गतमानसः ।
रोगग्रह विनाशार्थं कुर्याच्छांतिमिमां शुभाम् ॥२२॥
नारसिंहं समभ्यर्च्य शुद्धौ देशे कुशासने ।
मंत्रैरेतैर्यथालिंगं कुर्याद्दिग्बंधमद्भुतम् ॥२३॥
पूर्वे नारायणः पातु वारिजाक्षस्तु दक्षिणे ।
प्रद्युम्नः पश्चिमे पातु वासुदेवस्तथोत्तरे ॥२४॥
ईशान्यां पातु श्रीविष्णुराग्नेयां तु जनार्दनः ।
नैऋत्यां पद्मनाभस्तु वायव्यां मधुसूदनः ॥२५॥
ऊर्ध्वं गोवर्धनो देवो ह्यधरायां त्रिविक्रमः ।
एताभ्यो दशदिग्भ्यस्तु शर्वतः पातु केशवः ॥२६॥
जले रक्षतु वाराहः स्थले रक्षतु वामनः ।
अटव्यां नारसिंहश्च सर्वतः पातु केशवः ॥२७॥
अंगुष्ठाग्रे तु गोविन्दं तर्जन्यां तु महीधरम् ।
मध्यमायां हृषीकेशमनामिक्यां त्रिविक्रमम् ॥२८॥
कनिष्ठिक्यां न्यसेद्विष्णुं करमध्ये तु माधवम् ।
एवं न्यासं पुराकृत्वा पश्चादंगेषु विन्यसेत् ॥२९॥
शिखायां केशवं न्यस्य मूर्ध्निनारायणं न्यसेत् ।
माधवं च ललाटे तु गोविन्दं वै भ्रुवोर्न्यसेत् ॥३०॥
चक्षुषोर्मध्ययोर्विष्णुं कर्णयोर्मधुसूदनम् ।
त्रिविक्रमं कपोले तु वामनं कर्ण मूलयोः ॥३१॥

नासारंध्रद्वये चैव श्रीधरं कल्पयेद्बुधः ।
उत्तरोष्ठे हृषीकेशं पद्मनाभं तथाधरे ॥३२॥
दामोदरं दंतपंक्तौ वाराहं चुबुके न्यसेत् ।
जिह्वायां वासुदेवं च तालौ तु गुरूडध्वजम् ॥३३॥
वैकुंठं कंठ मध्ये तु अनंतं नासिकोपरि ।
दक्षिणे तु भुजे विप्र विन्यसेत् पुरुषोत्तमम् ॥३४॥
वामे भुजे महायोगं राघवं हृदि विन्यसेत् ।
भुजांतरे तु विश्वेशं ग्रीवायामव्ययं न्यसेत् ॥३५॥
वक्षस्थले श्रीनिवासं कुक्षयोः कामदं न्यसेत् ।
जठरे देव देवेशं स्तनयोः परमेष्ठिनम् ॥३६॥
पार्श्वयोः पुष्कराक्षं च सर्वतो विश्वरूपिणम् ।
पीतांबरं सर्वतनौ हरिं नाभौ तु विन्यसेत् ॥३७॥
दक्षिणे तु करे विप्र ततः संकर्षणं न्यसेत् ।
वामे रिपुहरं विद्यात्कटि मध्येऽपराजितम् ॥३८॥
पृष्ठे क्षितिधरं विद्यादच्युतं स्कंधयोस्तथा ।
माधवं वामकुक्षौ तु दक्षिणे जलशायिनम् ॥३९॥
स्वयंभुवं मेढ्र मध्ये उर्वोश्चैव गदाधरम् ।
जानुद्वये चक्रधरं जंघयोरच्युतं न्यसेत् ॥४०॥
गुल्फयोर्नारसिंहं च पादपृष्ठेऽमितौजसम् ।
श्रीधरं चांगुलिषु च पद्माक्षं सर्व संधिषु ॥४१॥
न्यसेत्तु माधवं देहे न्यसेत्पादतलेऽच्युतम् ।
रोमकूपे गुडाकेशं कृष्णं मज्जासुरक्तके ॥४२॥

मनोबुद्धिरहंकारे चित्तेत्वथ जनार्दनः ।
एवं न्यासविधिं कृत्वा साक्षान्नारायणो भवेत् ।।४३ ।।
तनुर्विष्णु मयो यस्य यावत्किंचित्स भाषते ।
एवं न्यासं पुरा कृत्वा यत्कार्य शृणुतद्विज ।।४४ ।।
पादमूले तु देवस्य न्यसेच्छंखं तु निर्मलम् ।
वनमालां हृदि न्यस्य सर्व देवाभि पूजिताम् ।।४५ ।।

अथाङ्ग न्यासः

ॐ नमो भगवते विष्णवे सर्व क्लेशापहर्त्रे हृदयाय नमः
ॐ नमो भगवते विष्णवे सर्व क्लेशापहर्त्रे शिरसे स्वाहा
ॐ नमो भगवते विष्णवे सर्व क्लेशापहर्त्रे शिखायै वषट् ।
ॐ नमो भगवते विष्णवे सर्व क्लेशापहर्त्रे कवचाय हुम् ।
ॐ नमो भगवते विष्णवे सर्व क्लेशापहर्त्रे नेत्रत्रयाय वौषट् ।
ॐ नमो भगवते विष्णवे सर्व क्लेशापहर्त्रे अस्त्राय फट् ।

एवमेव करादिषडंग न्यासं कृत्वा पुनः हृदयादि षडंग न्यासं करणीयम् । तद्यथा—

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय हृदयाय नमः ।
ॐ नमो नारायणाय नरोत्तमाय शिरसे स्वाहा ।
ॐ नमो केशवायादि शार्ङ्गिणे शिखायवषट् ।
ॐ नमो दामोदराय देवाय कवचाय हुम् ।
ॐ नमो ऋग्यजुः साममूर्तये नेत्रत्रयायवौषट् ।
ॐ नमो पुरुषोत्तमाय हूँ फट् अस्त्राय फट् ।

आपाद मस्तके चैव विन्यसेत् पुरूषोत्तमम् ।
अपामार्जनको न्यासः सर्वपाप विनाशनः ॥४६ ॥
विष्णुरूर्ध्वमधः पातु वैकुंठस्तुविदिग्दिशि ।
पातु मां सर्वतो रामो धन्वी चक्री च केशवः ॥४७ ॥
अपामार्जनको न्यासः सर्वव्याधिविनाशनः ।
आत्मनश्च परस्यापि विधिरेषः उदाहृतः ॥४८ ॥
वैष्णवेन तु कर्तव्यं सर्वसिद्धि प्रदायकम् ।
पूजाकाले तु देवस्य जपकाले तथैव च ॥४९ ॥
होमारंभेषु सर्वेषु त्रिसंद्यासु च सर्वशः ।
यद्यच्छुभतरं लोके तत्सर्वं प्राप्नुयाद् ध्रुवम् ॥५० ॥
आयुरारोग्य मैश्वर्यमरिपक्षक्षयः सुखम् ।
अभयं सर्वभूतेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥५१ ॥

विनियोग—अस्य श्री अपामार्जनस्तोत्रमाला मंत्रस्य पुलस्त्य ऋषिः श्री वराह नृसिंह वामन देवताः अनुष्टुब्वृहत्तनुर्वृहती छंदांसि हरि मुकुन्देतिबीजं अच्युतानंद गोविन्देति शक्तिः तप्त हाटक केशांतेति बीजं ज्वलत्पावक लोचनेति कवचं वज्रायुध नखस्पर्शेंति व्यापकं ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूँ फट् स्वाहेति अस्त्रं मम पापक्षयार्थ क्षिप्रारोग्यावापत्यर्थ अपामार्जन जपे विनिगोगः ।

अथ ध्यानम्

अथ ध्यानं प्रवक्ष्यामि सर्वपापप्रणाशनम् ।
वराह रूपिणं देवं संस्मरन्नर्चयेज्जपन् ॥५२ ॥
बृहत्तनुं बृहद्गात्रं बृहद्दंष्ट्रा सुशोभितम् ।
समस्त देव देवांगैर्युक्तांगं भूषणैर्युतम् ॥५३ ॥

उद्धृत्य भूमिं पातालाद्धस्ताभ्यामनुगृहीतः ।
आलिंग्य भूमिः सहसा मूर्ध्निजिघ्रंतमच्युतम् ॥५४ ॥
रत्न वैदूर्य मुक्तादि भूषणैरुपशोभितम् ।
पीतांबरधरं देवं शुक्लगंधानुलेपनम् ॥५५ ॥
त्रयस्त्रिंशद्देवताभिस्तूयमानं दिवानिशम् ।
नृत्यद्भिरप्सरोभिश्च गीयमानं च किन्नरैः ॥५६ ॥
एवं ध्यात्वा समात्मानं जपेन्नित्यमतंद्रितः ।
सुवर्णमंडपे संस्थं पद्मं ध्यायेत्सकेशवम् ॥५७ ॥
सकर्णिक दलैः स्पष्टमष्टभिः परिशोभितम् ।
कलंक रहितं देवं पूर्णचन्द्र समप्रभम् ॥५८ ॥
तडित्समजटाशोभि स्कंधेनाति विशोभितम् ।
श्रीवत्सांकित वक्षं तं तीक्ष्णदंष्ट्रा सुशोभितम ॥५९ ॥
वनमालादि शोभाढ्यं मुक्ताहारोपशोभितम् ।
पंकजास्यं महाबाहुं तप्तहेमाभ लोचनम् ॥६० ॥
प्रातः सूर्यं समप्रेक्ष्य कुंडलाभ्यां विराजितम् ।
केयूरकांतिसंस्पर्द्धि मुद्रिका रत्नशोभितम् ॥६१ ॥
जपाकुसुम संकाशस्तुतहस्ततलान्वितम् ।
पद्मासन समारूढं हेमपट्ट समाश्रितम् ॥६२ ॥
पीतवस्त्रपरीधानं शुक्लवस्त्रोत्तरीयकम् ।
कटिसूत्रेण हेमेन नूपुरेण विराजितम् ॥६३ ॥
जानूपरि न्यस्तकरं चातिरक्त नखांकुरम् ।
मुक्ताभरण संयुक्तं रत्नकंकणकैर्युतम् ॥६४ ॥

चतुर्थी चंद्रसंकाश सुदंष्ट्र मुखपंकजम् ।
अतिरक्तोष्ठवदनं रक्तास्यमतिभीषणम् ॥६५॥
वामांकस्थश्रियं भक्त शांतिदं तुंग रोहिणीम् ।
अर्हिणीं रक्तपादां च सुनासां शुभ लक्षणम् ॥६६॥
सुभ्रं सुकेशीं सुश्रोणीं सुभुजां सद्विजाननाम् ।
सुप्रतिष्ठां सुदंती च चतुर्हस्तां विचिन्तयेत् ॥६७॥
दुकूले नाति चार्वंगीं हारिणीं सर्वकामदाम् ।
तप्त कांचन संकाशां सर्वाभरण भूषिताम् ॥६८॥
सुवर्ण कलश प्रख्य पीनोन्नत पयोधराम् ।
गृहीत मातु लुंगाभ्यामुद्बाहुभ्यामथान्ययोः ॥६९॥
गृहीत पद्मयुगुलां जांबूनद करान्विताम् ।
एवं देवी! नृसिंहस्य वामांके परिचिंतयेत् ॥७०॥
अतिसुललितगात्रं रुक्मपात्रस्थमन्नम् ।
सुललित दधिखंडं पाणिना दक्षिणेन ॥
कलशममृतपूर्णं वाम हस्ते दधानम् ।
तरति सकल दुःखं वामनं भावयेद्यः ॥७१॥
अभ्रश्यामः शुभ्रयज्ञोपवीती सत्कौपीनः पीतकृष्णाजिनश्रीः
छत्री दंडी पुंडरीकायताक्षी पायाद्देवो वामनो ब्रह्मचारी ॥७२॥
नीलोत्पलदलश्यामं पीतांबरधरं हरिम् ।
शंख चक्र गदा पाणिं ध्यात्वाऽपामार्जनं जपेत् ॥७३॥
ॐ नमः परमार्थाय पुरषाय महात्मने ।
अरूप बहु रूपाय व्यापिने परमात्मने ॥७४॥

निः कल्मषाय शुद्धाय ध्यातृपापहराय च ।
नमस्कृत्वा प्रवक्ष्यामि यत्तसिद्ध्यतुमेव च ॥७५ ॥
नारायणाय विश्वाय विश्वरूप धराय च ।
नमस्कृत्वा प्रवक्ष्यामि यत्तत्सिद्ध्यतुमेव च ॥७६ ॥
बराहाय नृसिंहाय वामनाय च विष्णवे ।
नमस्कृत्वा प्रवक्ष्यामि यत्तत्सिद्ध्यतुमेव च ॥७७ ॥
गोविंदं पद्मनाभाय वासुदेवाय शार्ङ्गिणे ।
नमस्कृत्वा प्रवक्ष्यामि यत्तत्सिद्ध्यतुमेव च ॥७८ ॥
त्रिविक्रमाय रामाय अनंताय महात्मने ।
नमस्कृत्वा प्रवक्ष्यामि यत्तत्सिद्ध्यतुमेव च ॥७९ ॥
दामोदराय देवाय अनंताय महात्मने ।
नमस्कृत्वा प्रवक्ष्यामि यत्तत्सिद्ध्यतुमेव च ॥८० ॥
हिरण्य गर्भपतये हिरण्यकशिपु च्छिदे ।
नमस्कृत्वा प्रवक्ष्यामि यत्तत्सिद्ध्यतुमेव च ॥८१ ॥
भक्तिप्रियाय विभवे विष्वक्सेनाय शार्ङ्गिणे ।
नमस्कृत्वा प्रवक्ष्यामि यत्तत्सिद्ध्यतुमेव च ॥८२ ॥
चक्र हस्ताय शूराय तार्क्ष्यपत्राय विष्णवे ।
नमस्कृत्वा प्रवक्ष्यामि यत्तत्सिद्ध्यतुमेव च ॥८३ ॥
दैत्यारये उपेंद्राय भूतानां जीवनाय च ।
नमस्कृत्वा प्रवक्ष्यामि यत्तत्सिद्ध्यतुमेव च ॥८४ ॥
हयग्रीवाय शर्वाय हृषीकेष हराय च ।
नमस्कृत्वा प्रवक्ष्यामि यत्तत्सिद्ध्यतुमेव च ॥८५ ॥

नारसिंह महासिंह तस्मैतुभ्यं नमो नमः ।
नमस्कृत्वा प्रवक्ष्यामि यत्तत्सिद्ध्यतुमेव च ॥८६ ॥
नमस्ते देवदेवेश सुरासुर नमस्कृत ।
नमस्कृत्वा प्रवक्ष्यामि यत्तत्सिद्ध्यतुमेव च्च ॥८७ ॥
योगेश्वराय रूढाय गुह्याय परमात्मने ।
नमस्कृत्वा प्रवक्ष्यामि यत्तसिद्ध्यतुमेव च ॥८८ ॥
विष्टरश्रवसे तुम्यं क्षीरांभोनिदिशायिने ।
नमस्कृत्वा प्रवक्ष्यामि यत्तत्सिद्ध्यतुमेव च ॥८९ ॥
जनार्दनाय कृष्णाय उपेंद्रश्रीधराय च ।
नमस्कृत्वा प्रवक्ष्यामि यत्तत्सिद्ध्यतुमेव च ॥९० ॥
अधोक्षजाय भद्राय श्रीधरायात्ममूर्तये ।
नमस्कृत्वा प्रवक्ष्यामि यत्तत्सिद्ध्यतुमेव च ॥९१ ॥
प्रद्युम्नं चानिरुद्धं च पुरुषोत्तम केशवम् ।
नमस्कृत्वा प्रवक्ष्यामि यत्तत्सिद्ध्यतुमेव च ॥९२ ॥
कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने ।
नमस्कृत्वा प्रवक्ष्यामि यत्तत्सिद्ध्यतुमेव च ॥९३ ॥
सच्चिदानंदरूपाय योगिने परमात्मने ।
नमस्कृत्वा प्रवक्ष्यामि यत्तत्सिद्ध्यतुमेव च ॥९४ ॥
गदिने पद्महस्ताय चक्रहस्ताय ते नमः ।
नमस्कृत्वा प्रवक्ष्यामि यत्तत्सिद्ध्यतुमेव च ॥९५ ॥
वाराहेश नृसिंहेश वामनेश त्रिविक्रमे ।
हयग्रीवेश सर्वेश ऋषीकेश हराऽशुभम् ॥९६ ॥

अपराजितश्च चक्राद्यैश्चतुर्भिः परमायुधैः ।
अखंडितानुभावस्त्वं सर्व दुःख हरोभव ॥९७॥
हरामुकस्य दुरितं दुष्कृतं दुरुपासितम् ।
मृत्युं बंधार्ति भयदं दुरितस्य च यत्फलम् ॥९८॥
परापध्यान सहितं प्रयुक्तं चाभिचारकम् ।
गरस्पर्श-महारोग प्रयोगं जरयाजर ॥९९॥
ॐ नमो वासुदेवाय नमः कृष्णाय शार्ङ्गिणे ।
नमः पुष्करनेत्राय केशवायादि चक्रिणे ॥१००॥
ॐ नमो नारसिंहाय विद्युज्वालाय खड्गिने ।
नमः कमल किंजल्क पीत निर्मल वाससे ॥१०१॥
महाहयरिपुस्कन्ध धृष्ट चक्राय चक्रिणे ।
दंष्ट्रोधृत क्षितिभृते त्रिमूर्तिपतये नमः ॥१०२॥
महायज्ञ वराहेश शेषभोगांश शायिने ।
गदिने पद्म हस्ताय वराहाय नमो नमः ॥१०३॥
बज्रायुध नखस्पर्श दिव्यसिंह नमोस्तु ते ।
महावीराय देवाय ऋग्यजुः साममूर्तये ॥१०४॥
नमोस्तु वटवे तुभ्यं बलिगर्वहराय वै ।
तुभ्यं वामनरूपाय क्रमते गां नमो नमः ॥१०५॥
वराहवेष दुष्टानि शर्वपापानि नो हर ।
मर्द मर्द महादंष्ट्र मर्द मर्द च यत्फलम् ॥१०६॥
नारसिंह करालास्य दंतप्रोत नकोज्वल ।
भंज भंज निनादेन दुष्टान्यस्यार्ति नाशय ॥१०७॥

ऋग्यजुः सामगर्भाभिर्योहि वामनरूप धृक् ।
प्रशमं सर्व दुःखानां नयत्याशु जनार्दनः ॥१०८॥

विनयोग—अथ ज्वरमंत्रस्य कालाग्नि ऋषिः महादेवो देवता
अनुष्टुप् छंदः सकलज्वर सांत्यर्थं जपे विनियोगः ॥
आद्यंतवंतश्च पुराण साराः सूक्ष्मा बृहंतो ह्यनुशासितारः ।
सर्वान् ज्वरान् ध्वन्तु ममानिसारः प्रद्युम्न संकर्षण वासुदेवः ॥१०९॥

ज्वर गायत्री

ॐ भस्मायुदाय विद्महे । एक दंष्ट्राय धीमहि । तन्नोज्वरः प्रचोदयात् ।
त्रिपात् भस्म प्रहरणो यो महादिव्य लोचनः ।
स मे प्रीतिसुखं दद्यात्सर्वामयपतिर्ज्वरः ॥११०॥

एकांहिकं द्वयांहिकं च तनोत्रिदिवसं ज्वरम् ।
चातुर्थकं तथात्युग्रं तथैव सततं ज्वरम् ॥१११॥

त्रिदोषो सन्निपातोत्थ तथैवागंतुक ज्वरः ।
शमनं यातु गोविंद छिंधि छिंध्यस्य वेदनाम् ॥११२॥

नेत्र दुःखं शिरो दुःखं दुःखं चोदर संभवम् ।
अतिश्वासमतिश्वास परितापस वेपथुः ॥११३॥

गुद्घ्राणांघ्रिरोगाश्च कुष्ठरोगस्तथाक्षयम् ।
कामलादि तथा रोगान् प्रमेहांश्चाति दारुणाम् ॥११४॥

येवात प्रभवाः रोगाः ये च पित्तसमुद्भवाः ।
कफोद्भवाश्च ये के चिदेचान्ये सान्निपातिकाः ॥११५॥

आगंतुकाश्च ये रोगाः लूत विस्फोटकादयः ।
ते सर्वे प्रशमं यांति वासुदेवायमार्जिताः ॥११६॥
विलयं यांति ते सर्वे विष्णोरुच्चारणेन तु ।
क्षयं गच्छंतिचाशेषश्चकेणापिहता हरे ॥११७॥
अच्युतानंत गोविंद नामोच्चारण भेषजम् ।
नश्यंति सकलारोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥११८॥
अच्युतेति नमः पूतमनंतेतिवचः पुनः ।
गोविंदेति तनोः पूतमज्ञानं ज्ञात पातकैः ॥११९॥
स्थावरं जंगमं वापि कृत्रिमं चापिया द्विषम् ।
दंतोद्भूतं नखोद्भूतं आकाशप्रभवं विश ॥१२०॥
भूतादिप्रभवंयच्च विषमत्यंत दुःखदम् ।
शमनं याति तत्सर्व कीर्तिते वै जनार्दनम् ॥१२१॥
ग्रहाः प्रेतग्रहाश्चैव तता वैनायकाः ग्रहा ।
वेतालाश्च पिशाचाश्च गंधर्वायक्ष राक्षसाः ॥१२२॥
शाकिनि पूतनाद्याश्च तता वै डाकिनी ग्रहाः ।
मुखमंडलिकान् क्रूरान् रेवती वृद्ध रेवतीन् ॥१२३॥
वृद्धिकाख्या ग्रहाश्चोग्रा तथा मातुग्रहा अपि ।
बालस्य विष्णोश्चरितं हंतु बालग्रहानपि ॥१२४॥
वृद्धानां ये ग्रहाः केचिद्देव बालग्रहाः क्वचित् ।
नारसिंहं तु ते दृष्ट्वा द्रुतं यांतु महावने ॥१२५॥
सटा कराल वदनो नारसिंहो महाबलः ।
महाग्रहानशेषान्निःशेषान्करोतु जगतांपतिः ॥१२६॥

नारसिंह महासिंह ज्वाला मालोज्वलानन ।
ग्रहानशेषान् खादध्व पाहि देवाग्निलोचन ॥१२७॥
ये रोगा: ये महोत्पाता: यद्विषं ये महाग्रहा: ।
चक्रुर्भूतानि यां पीडां गृहपीडां सुदारुणाम् ॥१२८॥
शस्त्रक्षिप्तेषु ये रोगा: ज्वालागर्दभकादय: ।
यान्श्चिक्रश्च भूतानि प्राण पीडा कराणि च ॥१२९॥
तानि सर्वाणि सर्वात्मन् परमात्मन् जनार्दन ।
किंचिद्रूपं समास्थाय वासुदेवाऽशुनाशय ॥१३०॥
क्षिप्त्वा सुदर्शनं चक्रं ज्वालामालाति भीषणम् ।
सर्वदुष्ट प्रशमनं कुरु देववराऽच्युत ॥१३१॥
सुदर्शनं महाचक्रं गोविंदस्य करायुधम् ।
तीक्ष्णधारं महातेजं सूर्यकोटि समप्रभम् ॥१३२॥
त्रैलोक्य रक्षाकर्तुश्च दुष्ट दानव दारुणम् ।
सुदर्शन महाज्वाल छिंधि छिंधि महाज्वरम् ॥१३३॥
छिंधि छिंधि महाव्याधीन् छिंधि छिंधि महाग्रहान ।
छिंधि वातं च भूतं च घोरं छिंधि महद्विषम् ॥१३४॥
रूजं दाहं च शूलं च नाशय ज्वालगर्दभम् ।
हा हा हुं हुं फट् फट् द्वयं हन हन द्विष: ॥१३५॥

सुदर्शनचक्र महामंत्र

ॐ नमो भगवते भो भो सुदर्शन दुष्टं दारय दारय दुरितं हन हन पापं मथ मथ आरोग्यं कुरु कुरु हा हा हुं हुं फट् स्वाहा ठं ठं हन हन द्विष: ।

तैलोक्यरक्षा कर्तात्वमरयापय जनार्दन ।
सर्व दुष्टानि रक्षांसि क्षयं यांत्वति भीषणाः ॥१३६ ॥
प्राच्यां रक्ष प्रतीच्यां च दक्षिणोत्तरयोस्तथा ।
रक्षां करोतु भगवान् नारसिंहः स्वगर्जितैः ॥१३७ ॥
दिवि भुम्यंतरिक्षे च पार्श्वतः पृष्ठतस्तथा ।
रक्षां करोतु भगवान् बहुरूपी जनार्दनः ॥१३८ ॥
यथा विष्णुर्जगत्सर्वं सदेवासुरमानुषैः ।
तेन सत्येन सकलं दुष्टं यत्तत्प्रशाम्यतु ॥१३९ ॥
यथा विष्णुस्मृतौ सत्यां संक्षयं याति पातकम् ।
तेन सत्येन सकलं यन्मयोक्तं तथास्तु तत् ॥१४० ॥
अपामार्जनकं शस्त्रं विष्णोः नामाभिमंत्रितम् ।
एतत्समस्तरोगेषु भूतग्रहभयेषु च ॥१४१ ॥
ये ते कुशाः विष्णु शरीर संभवाः जनार्दनोहं स्वयमेव चागतः ।
हंतुं महादुष्टमशेषशेषं सत्यो भवत्वेषवच्चो यथा हरिः ॥१४२ ॥
शांतिरस्तु शिवंचास्तु दुष्टमस्य प्रशाम्यतु ।
यदस्य दुरितं किंचित्प्रक्षिप्तं लवणार्णवे ॥१४३ ॥
स्वास्थ्यमस्तु सदैवास्तु हृशीकेशस्य कीर्तनात् ।
यत एवागतं पापं तत्रैव प्रतिगच्छतु ॥१४४ ॥
एतद्रोगादि पीडाषु जंतूनां हितकाम्यया ।
विष्णुभक्तेन कर्तव्यं अपामार्जनकं जपम् ॥१४५ ॥
अनेन सर्वदुःखानि प्रशमं यांत्यशेषतः ।
सर्वभूत हितार्थाय कुर्यात्तस्मात्सदैव हि ॥१४६ ॥

कुर्यात्तस्मात्सदैवत्यो पाठोऽयं दुःखनाशनम् ।
विष्णुभक्तेन सततं ब्रह्महत्यादि नाशनम् ॥१४७॥
विष्णोः प्रीतिकरं चैव यः पठेन्नियमेन तु ।
विष्णुलोकमवाप्नोति सत्यं सत्यं न चान्यथा ॥१४८॥
य इदं श्रावयेद्विद्वान् श्रध्दाभक्ति समन्वितः ।
ग्रहास्तस्यापसर्पन्ति न रोगो न च राक्षसा ॥१४९॥
धन्यो यशस्वी शत्रुघ्नस्तवोयं मुनिसत्तम ।
पठतांश्रृण्वतां चैव ददाति परमां गतिम् ॥१५०॥

इति श्री भविष्योत्तर पुराणे दाल्भ्य पुलस्त्य संवादे श्रीविष्णुधर्मोत्तरं अपामार्जनस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

विविध-विषय

(१) चारवेद—

ऋग्वेद, यजुर्वेद, (शुक्ल तथा कृष्ण यजुर्वेद) सामवेद, अथर्ववेद, यही चार वेद कहे जाते हैं।

(२) चार उपवेद—

आयुर्वेद, धनुर्वेद, गन्धर्ववेद, तथा तंत्रशास्त्र या अर्थशास्त्र, ये चार उपवेद कहे जाते हैं।

(३) मुख्य १० उपनिषद्—

ईषावास्योपनिषद, केनोपनिषद्, कठोपनिषद, प्रश्नोपनिषद, मुण्डकोपनिषद्, माण्डूक्योपनिषद्, तैत्तिरीयोपनिषद्, ऐतरेयोपनिषद्, छान्दोग्योपनिषद, तथा बृहदारण्यकोपनिषद्।

यही १० मुख्य उपनिषद् कहे गये हैं।

(४) अष्टादश पुराण—

ब्रह्मपुराण, पद्मपुराण, विष्णुपुराण, शिवपुराण, भागवतपुराण, नारदपुराण, मार्कण्डेयपुराण, अग्निपुराण, भविष्यपुराण, ब्रह्मवैवर्त्तपुराण, लिंगपुराण, वाराहपुराण, स्कन्दपुराण, वामनपुराण, कूर्मपुराण, मत्स्यपुराण, गरुड़पुराण, तथा ब्रह्माण्डपुराण।

ये अठारह पुराण कहे गये हैं।

(५) अष्टादश उपपुराण—

सनत्कुमार, बृहन्नारद, नरसिंह, शिवधर्मोत्तर, दुर्वासा, कपिल, मानव, उशनस, वारुण, ब्रह्माण्ड, कालिका, वशिष्ठ, माहेश्वर, साम्ब, सौर, पाराशर, मारीच, तथा भार्गव, यही अठारह वेदमय उपपुराण कहे गये हैं।

(६) षड्दर्शन तथा उनके प्रवर्त्तक—

१ सांख्यशास्त्र-कपिलमुनि
२ योगशास्त्र-महर्षि पतञ्जलि
३ वैशेषिकशास्त्र-कणाद
४ तर्क (न्याय) शास्त्र-गौतम
५ पूर्वमीमांसा- जैमिनी
६ वेदान्तशास्त्र (उत्तरमीमांसा) भगवान वेदव्यास

(७) बीस स्मृतियाँ—

वैसे स्मृतियाँ अनेक हैं, किन्तु मुख्य इस प्रकार हैं—

याज्ञवल्क्य, उशना, अंगिरा, यम, आपस्तम्ब, संवर्त, मनु, अत्रि, विष्णु, हारीत, कात्यायन, बृहस्पति पाराशर, व्यास, शङ्ख लिखित, दक्ष, गौतम, शातातप और वशिष्ठ ।

(८) पञ्च ज्ञानेन्द्रिय तथा उनके विषय—

१ तैजस चक्षु रूप (काला पीला आदि)
२ आकाशीय कान शब्द (वर्णात्मक एवं ध्वन्यात्मक)
३ पार्थिव नाक गन्ध (सुगन्ध एवं दुर्गन्ध)
४ जलीय जीभ रस (खट्टा, मीठा, आदि षड्रस)

(९) अष्टाङ्गयोग—

यम, नियम आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि ।

(१०) अष्ट सिद्धियाँ—

१. अणिमा (छोटे से छोटा होना), २. महिमा (बड़े से बड़ा होना), ३. लघिमा (अत्यधिक हल्का होना), ४. गरिमा (अत्यधिक भारी होना), ५. प्राप्ति (जहाँ इच्छा हो वहाँ पहुँचना), ६- प्राकाम्य (सभी

तरह पूर्णता का अनुभव), ७. ईशित्व(अत्यधिक सामर्थ्यवान होना), ८. वशित्व (सबको वश में कर लेने की क्षमता)

(११) नव निधियाँ—

महापद्म, पद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील, खर्व ।

(१२) नवरस—

शृंगार, वीर, करुण, अद्भुत, हास्य, भयानक, बीभत्स, रौद्र, शान्त ।

(१३) नवग्रह—

सूर्य,चंद्र,मंगल, बुध, गुरु, शुक्र शनिश्चर,राहु, केतु ।

(१४) नवधाभक्ति—

श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य, आत्मनिवेदन ।

(१५) त्रिलोक—

स्वर्गलोक, मर्त्यलोक, पाताललोक ।

(१६) चौदहलोक—

१ भूर्लोक, २-भुवर्लोक, ३-स्वर्लोक, ४-महर्लोक, ५-जनलोक, ६-तपोलोक,७ -सत्यलोक, (यह सात ऊपर के लोक हैं)

१- अतल, २-वितल, ३-सुतल, ४-तलातल, ५-महातल, ६-रसातल, ७-पाताल, (यह सात अधोलोक हैं)

(१७) दशदर्भ—

कुश, काश, शर (सरकण्डा) , दूर्वा, यव (जौ), गेहूँ, बलवज, स्वर्ण, रजत, ताम्र ।

(१८) दशमहादान—

सुवर्ण, तिल, हाथी, दासी, रथ, पृथ्वी, भवन, कन्या, कपिलागाय, दुग्धवती गाय ।

(१९) चार पुरुषार्थ—

धर्म, अर्थ, काम , मोक्ष ।

(२०) तीन ताप—

आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक ।

(२१) पञ्च कर्मेन्द्रिय और उसके कार्य—

१. वाग (बोलना), २. हाथ (लेना देना) , ३. पाँव, (चलना फिरना), ४. मूत्रेन्द्रिय, (पेशाब करना), ५. गुदा (मलत्याग करना) ।

(२२) द्वादश आदित्य—

धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, अंश, भग, सविता, विवस्वान, पूषा, त्वष्टा, रुद्र, विष्णु ।

(२३) सप्तर्षि—

गौतम, भारद्वाज, विश्वामित्र, कश्यप, जमदग्नि, वशिष्ठ, अत्रि ।

(२४) पञ्चोपचार—

ध्यान, आवाहन, निवेदन, नीराजन, प्रणाम ।

(२५) सप्त नदियाँ—

गंगा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिन्धु, कावेरी ।

(२६) सप्त मोक्षपुरियाँ—

अयोध्या, मथुरा, माया (हरिद्वार), काशी, काञ्ची, (शिवकाञ्ची, विष्णुकाञ्ची), अवन्तिका (उज्जैन), द्वारिका ।

(२७) चारधाम—

बद्रिकाश्रम, द्वारिका, जगन्नाथपुरी, सेतुबन्धरामेश्वर ।

(२८) चार प्रकार के जीव—

स्वेदज, अण्डज, जरायुज, उद्भिज ।

(२९) शंख, गोमतीचक्र, सुदर्शनचक्र, नर्मदेश्वर, सूर्ययन्त्र, वाणलिंग, शालग्राम, इनकी प्रतिष्ठा नहीं होती है ।

(३०) शिवजी को विल्वपत्र, विष्णु को तुलसी, गणेश को दूर्वाङ्कुर। दुर्गा को गुडहल (जवाकुसुम), सूर्यको लाल कनेर के पुष्प बहुत प्रिय होते हैं।

(३१) देवपूजन में जिस द्रव्य की कमी हो उस द्रव्य का स्मरण करके अक्षत से काम ले सकते हैं।

(३२) जिन्हें खल्वाट दोष के कारण शिखा नहीं हो, उन्हे ब्रह्मग्रन्थि के सहित कुशाकी शिखा धारण करा सकते हैं।

(३३) जिसकी तीन पीढ़ियों के नाम गोत्र की जानकारी नहीं हो उन्हें कन्यादान, पितृश्राद्ध, आदि में सम्मिलित नहीं करना चाहिये।

हमारे शास्त्रों में अतिथि सत्कारके लिये बहुत आग्रह किया गया है। विष्णु,दक्ष, यम, व्याघ्रपाद आदि अनेक महर्षियोंने अपनी अपनी स्मृतियों में अतिथि सेवा का बड़ा महत्व बताया है। अत: गृहस्थ को 'अतिथि देवोभव' की श्रद्धा करके अतिथि सत्कार करना ही चाहिये। लिखा है:—

अतिथिः पूजितोयेन पूजिता:सर्वदेवता: ।
अतिथिर्यस्य सन्तुष्टस्तस्य तुष्टो हरिः स्वयम् ॥

(३४) पवित्र पर्वत —

हिमालय, विन्ध्याचल, पारिजात, मलयगिरि, महेन्द्राचल, शुक्तिमान चित्रकूट, ऋक्षवान, सह्यगिरि, ऋष्यमूक, माल्यवान, श्रीशैल या मल्लिकार्जुन, अरुणाचल, रैवतगिरि, कामगिरि या कामाख्या, रामगिरि या रामटेक, गोवर्धन।

(३५) सप्त बदरी —

आदिबदरी, ध्यानबदरी, बृद्धबदरी, भविष्यबदरी, योगबदरी, नृसिंह बदरी, श्रीबदरीनाथधाम।

(३६) पञ्च केदार—

श्री केदारनाथ, श्री मध्यमेश्वर, श्री तुङ्गनाथ, श्री रुद्रनाथ, श्रीकल्पेश्वर।

(३७) पञ्चसरोवर—

मानसरोवर, विन्दुसरोवर, नारायण सरोवर, पम्पासरोवर, पुष्कर सरोवर।

(३८) सप्त क्षेत्र —

कुरुक्षेत्र, हरिहरक्षेत्र, प्रभास क्षेत्र, भृगुक्षेत्र, पुरुषोत्तमक्षेत्र, नैमिष क्षेत्र, गया क्षेत्र ।

(३९) द्वादश अरण्य —

दण्डकारण्य, विन्ध्यारण्य, पुष्करारण्य नैमिषारण्य, कुरुजाङ्गल, उत्पलावर्तकारण्य, जम्बुकारण्य, अर्बुधारण्य, हिमवदारण्य, धर्मारण्य, वेदारण्य, सैन्धवारण्य ।

(४०) स्त्रियों को अपने हाथ से शालग्राम का पूजन नहीं करना चाहिये । ब्राह्मण द्वारा करा लेना उचित है ।

अन्त्यवेला निर्देश

(४१) अन्तवेला में गोदान कराना, रुद्राक्ष धारण कराना, मुँह में तुलसी-गंगाजल डालना और प्राणहीन होने पर दक्षिण की ओर सिर करके शव को लिटाना । मृत्युबेला में उपनिषद्, गीता या धर्मग्रंथ का पाठ करने का विधान है, मंत्रों की ध्वनि से तादात्म में मृत्यु आसान हो जाती है ।

इसके लिए विहित दो प्रसिद्ध मंत्र हैं:

(१)सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति उपासीताथ खल क्रतुमयः पुरुषों यथाक्रतुरस्मिल्लोके पुरुषो भवति ।तथेतः प्रेत्य भवति स क्रतुं कुर्वीत ।

यह सब कुछ ब्रह्म है । उसी को प्रारम्भ, मध्य और अंत मानते हुए उसका ध्यान करना चाहिए, मनुष्य अपनी इच्छा का स्वामी है, वह जो अंतिम समय में चाहेगा, वही आगे होगा । इसलिए वह इच्छा करे कि में ब्रह्मभूत हो जाऊँ । छान्दोग्य उपनिषद् ३/१४/१

(२) ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम् ॥

जो ओमरूप एकाक्षर ब्रह्म का उच्चारण करता हुआ और मुझे स्मरण करता हुआ प्राण छोड़ता है, वह परम गति को प्राप्त होता है ।

पूजा की सामान्य सामग्री

पंच पल्लव— बड़, पीपल, आम, पाकड़, गूलर ।

पंच रत्न— स्वर्ण, हीरा-मोती, पुखराज, नीलम ।
अथवा—स्वर्ण, चाँदी, ताँबा, भूँगा, मोती ।

पंच गव्यमू १ भाग गोबर, २ भाग गोमूत्र, ४ भाग दूध, २ भाग घृत, २ भाग दही ।

पंचामृत— गाय का दूध (यथेच्छ) तथा दही, घृत, मधु, चीनी (समभाग)

पञ्चधान्य— तिल, मूँग, जौ, उड़द, चावल ।

सप्तधान्य— चावल, जौ, गेहूँ, मूँग, तिल, काँगनी, उड़द ।

सप्तमृत्तिका— घोड़ा, हाथी, राजद्वार, गौ, नदी संगम चौरास्ता तालाब बाल्मीक । इन स्थानों की मृत्तिका ।

सर्वौषधि— मुरा, जटामांसी, वच, कूट, शिलाजीत, हल्दी, दारुहल्दी, आमला, श्वेत चंदन, नागरमोथा ।

नवसमिधा— आक, ढाक, खैर, ऊँगा, पीपल, गूलर, जांट, दूर्बा, कुश ।

नव रत्न — माणिक, मोती, मूँगा, पन्ना, पुखराज, हीरा, नीलम, गोमेद, लहसुनिया । नवग्रहों के क्रमशः यही रत्न हैं ।

सांकल्पिक श्राद्ध— कुशा २, कुशाकी पवित्री १, तीन कुशाओं की पवित्री १, तीनकुशाओं का मोटक १, चावल, तिल, पीली सरसों, चंदन, श्वेत पुष्प, पान, सुपारी, लवंग, इलायची, यज्ञोपवीत, धोती-अंगोछा, मधु, दक्षिणा, भोजन सामग्री ।

तर्पण— आसन १, जलपात्र १, टोपिया १, तिल, जौ, चावल, पवित्री २, मोटक १, कुश, पुष्प, चंदन, अर्घा ।

देवपूजा— शंख, घंटा, पंचपात्र १, आचमनी १, अर्घ पात्र, जलकलश १, आसन १, दीपक १, धूपदानी १, धूप, रोली, मोली (नाल) चंदन, घृत, चीनी, यज्ञोपवीत, चावल, काजल, गेहूँ, सफेद-लालकपड़ा, दूध, दही, रूई, दियासलाई, मिठाई, पुष्प, पुष्पमाला, दूर्वा, पंचपल्लव, तुलसी, शहद, सिन्दूर, अबीर, गुलाल, सुपारी, पान, सप्तधान्य, सर्वौषधि, सप्तमृत्तिका, पंचरत्न, पीली सरसों, कपूर, केशर, अतर, लौंग, इलायची, नारियल, सकोरा, कलश ।

1658

परमहंस पण्डित गणेशनारायण जी का संस्मरण

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुः साक्षात्परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

राजस्थान के मरुस्थल ने अद्भुत शूरवीर योद्धा, सती, विद्वान, कवि, विश्व प्रमुख उद्योगपतियों को जन्म दिया। इसी क्रम में चिडावे के प्रसिद्ध परमहंस महात्मा गणेश जी महाराज का जन्म जयपुर राज्य के अन्तर्गत नवलगढ़ के पास 'बुगाला' ग्राम में खण्डेलवाल ब्राह्मण वंश में हुआ। आप के पिता का नाम पं. घडसीराम (घनश्यामदयन) जी था। बाल्यकाल में ही आपके पू. पिता श्रीघनश्याम दास जी सपरिवार नवलगढ़ चले आये और यहीं पण्डित रुड़ेन्द्र जी शास्त्री से आपने अध्ययन किया। आप परिश्रमी एवं मेधावी होने के साथ ही अलौकिक प्रतिभा के धनी भी थे। अल्पकाल में ही आपने व्याकरण, ज्योतिष एवं वेद की विभिन्न शाखाओं का सम्यक् अभ्यास कर लिया था। अभी शिक्षा का कार्य पूर्ण नहीं हो सका था कि वैवाहिक संस्कार भी करा दिया गया। परन्तु आप अत्यन्त विरक्त जीवन व्यतीत करते रहे। विवाह के कुछ काल के उपरान्त ही आप गृहस्थाश्रम से विरक्त होकर चिडावा चले आये। आप सदैव नीला वस्त्र धारण करते। एक लगुड़ (डंडा) तथा हांडी सदैव साथ रखते थे। अपने इन दो साधनों के बल से वे त्रैलोक्य की सत्ता का सुख अपने भक्तों को दिया करते थे। इसके अनेक संस्मरण, प्रत्यक्षदर्शियों द्वारा कथा के रूप में सुनने को मिलते रहते हैं। अपने भक्तों के स्मरण मात्र से उनके पास आप ही आप पहुँच जाना सामान्य सी बात थी। एक बार का प्रसंग है, चिडावा पाठशाला के प्रधान आचार्य पं. रामजी लाल जी शास्त्री अपने शिष्यों को ज्योतिष विषयक कोई प्रसंग पढ़ा रहे थे। कुछ पदों का अध्यापन पूर्ण होने के बाद किसी एक पद के सन्दर्भ में आचार्य रामजी लालजी शास्त्री ने कहा— इस पद का सन्दर्भ पं. गणेश जी महाराज से विचार करेंगे। इतना कहा ही था कि अप्रत्याशित रूप से पं. गणेशनारायण जी महाराज विद्यालय में पहुँच गये और कहा, पण्डित ! क्या विचार करना है और स्वतः

658

ज्योतिष का एक प्रसंग सुनाना शुरु कर दिया जो मौलिक प्रसंग का उत्तरार्ध ही था। आचार्य जी ने अपने शिष्यों को सम्बोधित करते हुए कहा—ऋषियों, यही सिद्ध योग तथा इसी को सिद्ध पुरुष कहते हैं। ज्ञातव्य हो कि आचार्य जी अपने विद्यार्थियों को ऋषियों से सम्बोधित करते थे।

आपके आशीर्वाद से आंज विश्व के कोने-कोने में अनेक लोग फलित पूरित जीवन व्यतीत कर रहे हैं। बिरला परिवार की वैभवसाधना भी पं. गणेशनारायण जी महाराज की कृपा का प्रत्यक्ष फल है।

स्व. सेठ जुगलकिशोरजी बिडला से आपका विशेष प्रेम था। वे उनसे बहुत ही घुल मिलकर बातें करते थे। एक बार श्री बिडलाजी उनके पास गये तब पंडितजी ने कहा—'रे जुगल ! आज तो तेरा शुभ दिन है।' सेठजी ने यह सुनकर अच्छा मुहूर्त जान कलकत्ता के लिए सीधे प्रस्थान कर दिया, उन दिनों नारनौल रेलगाड़ी लगती थी। सेठजी ने अपना रथ नारनौल वाले रास्ते पर डाल दिया। चाँदनी रात थी। रास्ते में दायीं तरफ उनको काला सर्प फन उठाये बैठा मिला जो उनके लिए अच्छा शकुन था, परंतु सेठजी उसे अपशकुन समझ कर वापस गये। उन्हें देखते ही पंडितजी ने वापिस आने का कारण पूछा तो उन्होंने सर्प वाली घटना कह सुनाई। पंडित जी बोले "जुगल किशोर ! तूने गलती करी। चला जाता तो चक्रवर्ती बनता, जा अब भी तेरी कीर्ति सर्वत्र फैलेगी।"करणी बरणी चालू रखना भाग जा।

एक बार नवलगढ़ का सेठ पाटोदिया संयोग से रुग्ण हो कर पंडितजी की सेवा में लाभ के लिए आ गया। आपको खोजने का प्रयास किया लेकिन आप पहले दिन तो मिले नहीं। दूसरे दिन आपका पता लगा तो सेठजी नीले रंग का थान लेकर आपकी सेवा में पहुँचे। पण्डितजी कुछ देर तक तो मौन धारण किये बैठे रहे, परन्तु सेठजी के विशेष आग्रह करने पर आपने थान ले लिया और पैर पर लपेटने लगे। मलमल बहुत बढ़िया थी, जिसका दुरुपयोग देख कर सेठजी से न रहा गया और कह उठे कि महाराज यह सिर पर बाँधने के लिए है। पैर पर लपेटने के लिए नहीं। पण्डित जी ने सुनते ही कहा मैं तो तेरी मौत बाँध रहा था इतना सुनते

ही सेठजी के होश उड़ गये और उसके कुछ ही समय बाद वे काल के गाल में समा गये ।

एक बार डा. गुलझारी लालजी ऊँट पर बैठ कर किसी रोगी को देखने जा रहे थे । सँकरे रास्ते के बीच में पंडित जी बैठे थे । डॉ॰ गुलझारीलाल ने ऊँट से उतर कर परमहंसजी का पैर पकड़ा और खेंच कर एक तरफ कर दिया और कुछ बुरा भला भी कहा । परमहंसजी ने उस समय तो कुछ कहा नहीं परन्तु साधु को तिरस्कार की भावना से देखने वाले डाक्टर साहब को सबक सिखाने की दृष्टि से पेट में फोड़ा कर दिया । डाक्टर फोड़े से परेशान होकर अपनी भुआ को साथ लेकर जयपुर इलाज के लिए चले गये । ४ मास इसी पीड़ा में निकल गये । जयपुर के डाक्टर भी इस पीड़ा को दूर करने में असमर्थ रहे । डाक्टर गुलझारीलालजी कृषकाय हो गये । जीने की भी आशा छोड़ दी । एक रोज जब डाक्टर अपने जीवन से पूर्ण निराश हो गये तो रात्रि में पंडितजी स्वप्न में दिखाई दिये, बोले "गुलझारीलाल क्या हाल चाल है" । गुलझारीलालजी को स्वप्न देखते ही याद आया, कि यह परमहंसजी के अपमान का दंड है । वे प्रायश्चित्त स्वरूप खाट पर से उठकर जमीन में धोक लगाने लगे । उनकी सेवा में बैठी भुआजी ने सोचा कि कहीं सन्निपात हो गया हो । उसी में उठकर भाग रहा है अन्यथा तो उठने की शक्ति बची ही नहीं थी भुआजी के बोलते ही आँखें खुल गईं । डॉ॰ शर्मा ने यह कथा अपनी भुआजी से कही तथा बारबार पेट के फोड़े के पास हाथ लगाकर देखने लगे परन्तु न फोड़ा था और न तो दर्द ही था । डाक्टरों ने भी यह देख बड़ा आश्चर्य किया । शीघ्र ही डाक्टर शर्मा पथ्य लेने लगे तथा ठीक हो गये । जयपुर से आते ही परमहंसजी के पास आये और उनके पैरों पड़ गये । पंडित जी ने हांडी में से निकाल कर बाजरे की रोटी के कुछ टुकड़े उनको दिये और बोले— "जा गुलझारी मज़ा कर " । उस दिन के बाद डा. शर्मा उनकी सेवा में रहने लगे और इतना यश कमाया कि जिस रोगी को भी हाथ लगाया वह तुरन्त ठीक हो गया । वे रोटी के टुकड़े आज भी डाक्टर गुलझारीलालजी की पारिवारिक तिजूरी में पड़े हैं ।

एक पद्य उन्हीं की लेखनी से लिखित प्राप्त हो सका उसका मूल चित्र प्रस्तुत है:—

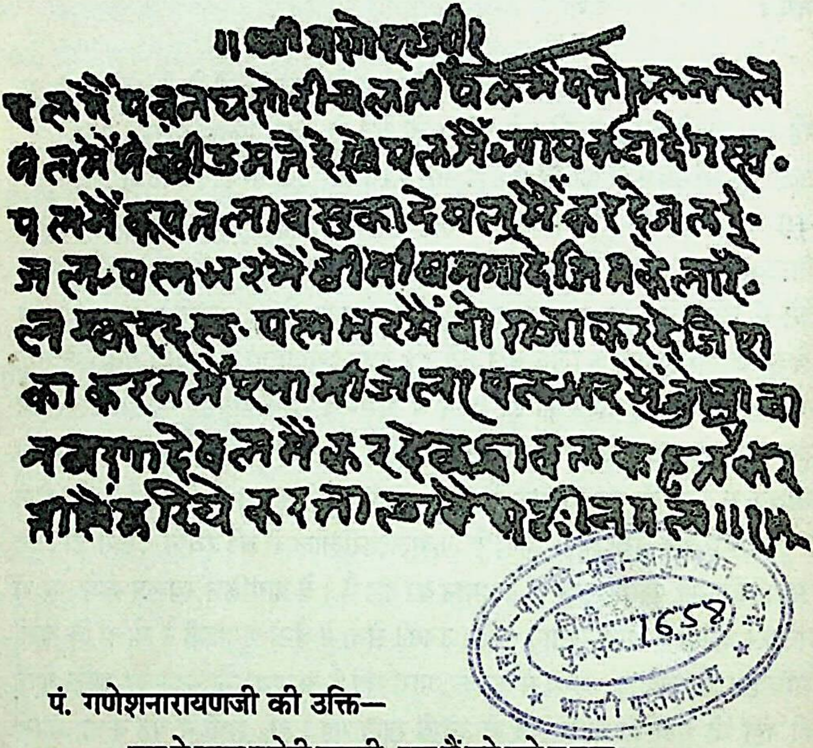

पु०सं० 1658
भारती पुस्तकालय

पं. गणेशनारायणजी की उक्ति—

पल मे पवन घणेरी चलती, पल मैं पत्ते हले न चल
पल मैं पंछी उडतो देख्यो, पल में आय कटा दे गल ।
पल मैं कूप तलाब सुका दे पल मैं कर दे जल ही जल ।
पलभर मैं वो भीख मँगा दे जिसके लारे लश्कर दल ।
पलभर मैं वो राजाकर दे जिसके पल्ले पड़े न खल ।
पल भर में जो ज्वान बणा दे, पल में कर दे वृद्धाबल ।
कहतै हैं करता सैं डरिये, करता ल्यावै घड़ी न पल ॥

पूज्य पं. गणेशजी महाराज का सम्पूर्ण जीवन अपने भक्तों के बीच एक पारिवारिक सदस्य की भाँति ही व्यतीत होता था। भक्तों की भलाई के लिये प्रायः विनोदपूर्ण प्रसंग वे स्वतः उपस्थित किया करते थे। स्व. पं. रामचन्द्रजी शर्मा प्रफुल्ल की माता जी ने एक अद्भुत प्रसंग इस प्रकार सुनाया कि एकबार जब श्रीप्रफुल्लजी के पिता जी व्यवसाय हेतु बम्बई गये थे उसी दिन संयोग से पूज्य परमहंस जी उनके आवास पर आये और प्रफुल्लजी की माताजी को उन्होंने कहा कि बेटी कुछ खाने को दो। स्मरण रहे राजस्थान की कतिपय मान्यताओं के अनुसार परिवार का कोई सदस्य जिस दिन यात्रा पर जाता है उस दिन किसी भी याचक को कुछ देने की परम्परा नहीं है। अतः श्री प्रफुल्ल जी की माता जी यदि उन्हें कुछ देती तो अपशकुन का भय था और यदि नहीं देती तो परमहंस जी की अप्रसन्नता का भय था। इसी धर्म संकट में वह कमरे में चली गयीं। परमहंस जी ने दो तीन बार आवाज लगाई और बाद में उन्होंने कहा कि बेटी ! यदि तू खाने को नहीं देती है तो ले मैं तुझे रोटी दे रहा हूँ। जब प्रफुल्ल जी की माता ने ऐसा सुना तो वे कमरे से बाहर आयीं और देखा कि परमहंस जी के संकेत पर एक कौवा साबुत बाजरे की रोटी चोंच में दबाये हुए आकर दीवार पर बैठ गया और उसने वह रोटी परमहंस जी के तरफ डाल दी। परमहंस जी ने रोटी उठाकर श्री प्रफुल्लजी की माता को दिया और कहा तुमने तो हमे खाने को कुछ नहीं दिया परन्तु मैं तुझे रोटी देता हूँ। श्री प्रफुल्लजी की माता ने बताया कि उस दिन से हमारे घर में दाल रोटी की कमी बाबा की कृपा से नहीं हुई। इसी प्रकार अनेक घटनाएँ लोगों की मुहबोली में सुनने को मिलती हैं, जिनकी अभिव्यक्ति को विषय विस्तार के भय से संकुचित करना पड़ रहा है। स्मरण रहे अभी पूज्य परमहंसजी की स्मृति में संस्थापित पं. गणेशजी मेमोरियल ट्रस्ट ने आपका जीवन चरित्र तथा उस पर आधारित कैसेट तैयार कराये हैं, जो बंबई कार्यालय में उपलब्ध हैं। शुभमस्तु

कार्यालय का पता— **परमहंस श्री गणेशजी पण्डित मेमोरियल ट्रस्ट**
४३, दूसरा भोइवाड़ा, भुलेश्वर, बंबई—४०० ००२

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्ति मा कश्चिद् दुःख भागभवेद् ॥

महर्षि
सं. 1658
भारती पुस्तकालय